विषय सूची

दो शब्द

पाठकगण !

थोड़े समय पेस्तर मैंने पुन्याश्रव कथा कोषका सम्पादन किया था, उसमें जैन समाजने एक शिकायत की थी अर्थात लाइन ब्लाकोंकी जगह हाफटोन चित्रोंको छापें अतएव हाफ-टोन ब्लाक बनवा कर यह आराधना कथाकोष (प्रथम भाग) जैसा कुछ मुझसे हो सका सेवामे प्रेषित कर रहा हूं।

इसके सम्पादनमे, हमारे मित्र "स्वतन्त्र" जीने बहुत कुछ सहायता दी है अतएव उनको धन्यवाद दिये बगैर नहीं रह सकता।

आगामी इसके दो भाग और बाकी हैं सो धीरे २ लिख रहा हूं वे शीघ्रही प्रकाशित किये जांयगे।

इसके अतिरिक्त मैं और भी कई जैन कथा पुस्तकों को देख रहा हूं जो अप्राप्य है उनको लिखनेका प्रयत्न करूंगा।

सम्भव है मुझसे इस पुस्तकमें भूल हुई हो। विज्ञ पाठक मुझे बालक जान क्षमा ही करेंगे।

निवेदकः—

परमानन्द जैन

सम्पादक—"दूध बताशा"

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

* श्री वीतरागाय नमः *

आराधना-कथा कोष

प्रथम भाग

मंगलाचरण ।

भव्य पुरुष रूपी कमलोंको सूर्य प्रफुल्लित करते हैं ।
लोक अलोक प्रकाशक जो हैं, ज्ञान-रश्मिको भरते हैं ॥
प्रभु नेमनाथके चरण-कमलमें, नमस्कार मैं करता हूं ।
शुभ-आराधना कथा-कोषका प्रथम-भाग यह लिखता हूं ॥

सरस्वती-पूजा ।

"शुभ सरस्वती जिनवाणीको, सादर नमस्कार करता ।
जगत-तत्वके ध्यान-प्रकाशनमें निशि-दिन तत्पर रहता ॥
जिसके नाम-मात्रसे प्राणी, भव-समुद्र तर जाते हैं ।
वाचक ! उस सर्वज्ञ देवको, मस्तक सदा नमाते हैं ॥

मुनिराज वन्दना ।

सम्यग्दशन-ज्ञान चरित्रसे, जो पवित्र नित रहते हैं ।
क्षमा, सत्य, शुचि, आर्जव-मार्दव ब्रह्मचर्य व्रत रखते हैं ॥

ज्ञान-सिन्धु, उत्तम गुण-भूषित, महा तपस्वी कहलाते।
उन्हीं मुनीश्वर के चरणमें, नत मस्तक हम हो जाते॥
मूलसंघ गण वलात्कार मे, प्रभाचन्द्र नामक मुनि थे।
स्वामी कुन्द-कुन्दाम्नाय में, महामुनी अति ज्ञानी थे॥
जिनकी पूजा इन्द्रादिक अरु चक्रवर्त्ति भी करते हैं।
आज उन्हींकी मूलकथा पर कथा-कोप हम लिखते हैं॥

आराधनाका अर्थ।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित-तप, भव-बन्धनको छेदत हैं।
जिनसे स्वर्ग-मोक्षको जाते नरक पशूगति भेदत हैं॥

पांचोंका अर्थ।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चरित-तप ही उद्योत कहाते हैं।
अन्त-बाह्य-रूप उनके पालन उद्यमन सुहाते हैं।
भीपण कष्ट सहन कर उनको तर्जन, निर्वाहण कहते।
महाशास्त्र तत्वार्थ पठनमें, राग-हीन साधन लहते॥
दर्शनादि का आजीवन जो विघ्न रहित पालन करते।
हम 'स्वतंत्र' निरतरण कहेंगे, जिसकी कथा निम्न लिखते॥

पाठकोंसे।

"वाचक पढ़लो भक्ति-भावसे, आराधना-कहानी।
स्वर्ग-मोक्षका जो साधन है पढ़लो हे प्रिय! ज्ञानी॥

पात्र केसरीकी कथा।

(१)

पात्र केसरीने दर्शनका कैसा है उद्योत किया।
जिनके आगे विद्वानोंने अपना मस्तक झुका दिया॥

जो श्रद्धासे जैन-धर्मपर, निज विश्वास प्रकट करते।
यश-भाजन बन कर वे दुर्लभ, मोक्ष-धाम सुखसे लहते॥

प्रिय पाठकगण! आचार्य पात्र केसरीजीने किस प्रकार सम्यग्दर्शनका उद्योत कर उसकी प्राप्तिके लिये, मार्ग सुलभ किया है उसका वर्णन मैं करता हूं। पृथ्वी मण्डलके समस्त देशोंमें, आर्य्यावर्त एक ऐसा पवित्र एवं महान देश है जो भगवान्‌के पाँच कल्याणोंसे ओत-प्रोत है। उसी देशमें मगध नामक एक प्रदेश है जहाँके समस्त जीव सुखसे अपना जीवन विताते हैं। सच पूछिये तो मगध अपने यश, वैभव, कला तथा कीर्त्तिमें संसारके समस्त देशोंमें अपना एक खास स्थान रखता है। जिसके वैभवके आगे सभी देश अपना मस्तक झुका देते हैं। उसी वैभव सम्पन्न मगध प्रदेशान्तर्गत अहिछत्र नाम का एक नगर है। नगरकी सुन्दरता समस्त संसारके नगरोंके लिये, स्पर्धाकी चीज है। उस नगरका राजा अवनिपाल था। यह प्रजाका सौभाग्य था कि उसने अवनिपालके सदृश गुण-ग्राहक, राजनीति-निपुण तथा प्रजा रंजक राजा प्राप्त किया था। राजा अवनिपाल अपनी प्रजाके ऊपर प्रेम-पूर्वक सुशासन करता था। वह एक अच्छा शासक ही नहीं था वरन् विद्याप्रेमी भी था। उसके राजसभामें पाँच सौ विद्वान्, वेद-वेदांग ज्ञाता ब्राह्मण रहते थे जो राजाको अपनी अच्छी सलाह दिया करते थे। यद्यपि राजसभाके ब्राह्मण प्रकाण्ड पंडित थे किन्तु उनमें जात्याभिमानकी मात्रा कूट २ कर भरी थी जिससे वे अपने सामने किसीको भी कुछ नहीं समझते थे। उनमें एक विशेषता थी कि वे जब राजसभामें जाते थे तब वे भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्त्तिका दर्शन कर लेते थे।

वे नियमसे संध्या-वन्दन किया करते थे। एक दिन ऐसी घटना घटी कि वे संध्योपासनासे निवृत्त होकर भगवान्‌के दर्शनार्थ जिनालयमें पहुंचे। उसी समय वहांपर, चारित्रभूषण नामक एक मुनिराज भगवान्‌के आगे देवागमका पाठ कर रहे थे। मुनिको पाठ करते देखकर पात्रकेसरी नामक एक ब्राह्मणने उनसे पूछा— मुनिराज! आप जिस स्त्रोत्रका पाठ कर रहे है क्या उसका अर्थ जानते हैं? मुनिराजने कहा, "नहीं, मेरे लिये इसका अर्थ अज्ञात है।" अर्थ सम्बन्धी मुनिकी अनभिज्ञताकी बात सुनकर पात्रकेसरी ने कहा, "साधुवर्य्य! कृपाकर इस स्त्रोत्रको एक बार फिरसे सुनाइये।" मुनिराजने पुनः स्त्रोत्र पढ़कर सुना दिया जिसे सुनकर सबके हृदयमे आनन्दकी धाराएं बहने लगीं। इधर पात्रकेसरीने मुनिराजके मुंहसे देवागमका पाठ सुनकर कण्ठस्थ कर लिया। उनकी विलक्षण बुद्धि थी। वह किसीके मुंहसे कोई बात सुनकर तुरन्त याद कर लेते थे। उनकी स्मरण शक्तिकी क्षमता थी कि उनने देवागमका सम्पूर्ण पाठ एक वार सुनकर याद कर लिया। उसने पाठके अर्थपर गम्भीरता पूर्वक मनन करना प्रारम्भ किया। पाठके अर्थ-गांभीर्य्यपर विचार करते २ उनके हृदयमे यह बात पैठ गयी कि जीव-अजीव पदार्थोंके सम्बन्धमे भगवान् का कथन ही सत्य है। उनके हृदयसे दर्शन मोहनी कर्मके नाश होनेसे शान्ति उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने अपने घर आकर दिन भर वस्तुके स्वरूपपर मनन किया। परिणाम स्वरूप उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जैन-धर्ममें समस्त जीव पदार्थोंके सम्बन्धमें प्रमेय माना गया है और सम्यग्ज्ञानको प्रमाण स्वरूप। ऐसा विचार

करते २ उनके हृदयमें एक बातकी आशंका उठी कि क्या कारण है कि जैन-धर्ममें अनुमान प्रमाणका लक्षण नहीं मिलता है ? इस प्रकार सोचते २ उनके चित्तमें जैन धर्मके सम्बन्धमें कुछ सन्देह प्रकट होने लगा। वे घबड़ा गये, ठीक उसी समय पद्मावती देवी वहाँ प्रकट होकर कहने लगी, क्या आपके हृदयमें जैन-धर्मके विषयमें कुछ सन्देह है ? यदि है तो आपका सन्देह दूर हो जायगा। आप भगवान् के पास जाकर अपना सन्देह दूर कर लीजिये। मैं आपको विश्वास देती हूं कि प्रातःकाल होते ही आपके मनका सन्देह जिन भगवान् के मन्दिरमें जानेसे अवश्य मिट जायगा।" इस प्रकार कहकर उक्त देवी जिनालयमें जाकर भगवान पार्श्वनाथके फण मण्डलपर निम्न श्लोक लिखकर अन्यत्र चली गयी।

"अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेणकिम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेणकिम्॥"

देवी पद्मावतीके ऊपर पात्रकेसरीकी श्रद्धा हो गयी। प्रातःकाल होते ही उनने जिन मन्दिरमें जाकर भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्तिपर अपनी शंकाका उत्तर देखा। उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। जिस प्रकार सूर्यके उगते ही अन्धकारका नाश हो जाता है उसी प्रकार भगवानके सम्मुख जाकर अपने सन्देहका उत्तर लिखा हुआ देखकर पात्रकेसरीके हृदयसे जैन-धर्मके प्रति समस्त सन्देह दूर हो गया। उसी समय उसके हृदयमें इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि जिन भगवान ही भवसागरसे पार करने वाले एकमात्र देवाधिदेव हैं। वे दोष रहित हैं। जैन-धर्मसे ही लोक-परलोकका सुख मिल सकता है। इस प्रकार उन्हें सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गयी जिससे उनके हृदयमें अपार आनन्द हुआ।

अब पात्रकेसरीका सम्पूर्ण समय जैन सिद्धान्तके गूढ़ तत्वोंके मननमें व्यतीत होने लगा। उनको ऐसी हालत देखकर उनके मुख्य विद्वान सहयोगी ब्राह्मणोंने उत्सुकताके साथ पूछा, हम देख रहे हैं कि कुछ दिनोंसे आपने मीमांषा, न्याय-दर्शन तथा वेदान्तोंका अध्ययन करना एकदम छोड दिया है, हमारी समझमें यह बात नहीं आती कि आपने जैन-धर्मके सिद्धान्तमें ही अपना अध्ययन क्यों जारी रखा है ? उनकी जिज्ञासा भरी बात सुनकर पात्रके-सरीने गम्भीर मुद्रासे उत्तर दिया—हे भाइयो ! मैं जानता हूं कि आप वेदोंके ऊपर मिथ्या विश्वास रखकर असत्यका पालन कर रहे हैं, आपने वेदोंपर ही अन्ध-विश्वास रखकर सत्यासत्यकी विवे-चना करना छोड़ दिया है किन्तु ठीक इससे विपरीत मैं जैन-धर्मके सत्य सिद्धान्तपर विश्वास रखनेके कारण, आप लोगोंसे भी सादर प्रार्थना करूंगा कि आप लोग असत्यका पथ भूलकर सत्यका मार्ग ग्रहण करें। मैं दावेके साथ कहता हूं कि संसार भरके धर्मोंमे एक जिन-धर्म ही ऐसा है जिसके सिद्धान्त सत्यकी पूर्ण मात्रासे ओत-प्रोत है। अतः क्या मैं आशा करूं कि सत्यासत्यकी समीक्षा-परीक्षाके लिये, आप लोग जैन-धर्मकी शरणमें आकर सत्यकी रक्षा करेंगे ?

पात्र केसरी द्वारा जैन-धर्म-सिद्धान्तकी प्रशंसा सुनकर, अन्य ब्राह्मणोंके हृदयमें उसके प्रति ईर्षा-डाह उत्पन्न हो गया। वे पात्र केसरीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हो गये। ब्राह्मणों ने राजाके पास जा कर, पात्र केसरीसे शास्त्रार्थ करनेकी अपनी उत्कट अभि-लाषा प्रकट की। राजाने ब्राह्मणोंकी अभिलाषा स्वीकृत कर ली।

पात्र केसरी उक्त ब्राह्मणोंके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये राज-सभामें बुलाये गये। उन्होंने समस्त ब्राह्मणोको शास्त्रार्थमें हराकर सबके सामने ही अपने अकाट्य प्रबल तर्कों द्वारा जैनधर्मकी महत्ता सिद्ध कर दी। इसी समय सम्यग्दर्शन की अखण्ड महिमा प्रकट हो गई। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने जैन-धर्म-सिद्धान्तके पोषण में एक जिन-स्तोत्रकी रचना कर, अन्य मत-मतान्तरोंके सिद्धान्तों का पूर्ण विवेचनासे खण्डन किया। उनके विद्वता पूर्ण कार्यसे, तथा प्रकाण्ड पांडित्यसे मुग्ध हो कर राजा अवनिपाल एवं अन्य ब्राह्मणोंने कायल हो कर प्रसन्नतापूर्वक जैन-धर्म ग्रहण कर लिया। पात्र केशरीके सारगर्भित- उपदेशका ऐसा प्रभाव पड़ा कि राजा तथा अन्य लोगोंने जैन सिद्धान्तको भव-सागरसे पार करने वाला तथा जैन-धर्मको स्वर्ग-मोक्षका दाता समझ पात्रकेसरीसे विनम्र शब्दोंमें कहा, "हे ब्राह्मण कुलके अनमोल रत्न ? आपने अपने गहन अन्वेषण द्वारा, जैनधर्म सिद्धान्तको सत्य रूपमे सिद्ध कर जिन-भगवानकी सच्ची उपासना की है। आप ही जिन भगवानके सदुपदेशोंके सच्चे जानकार हैं। आपकी अनन्य सेवाने हम लोगोंके सामने सेवाका ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिया है। जैनधर्मके प्रति आपकी जैसी सची सेवा प्रगाढ़-भावना तथा दृढ़-विश्वास है उसे वर्णन करना मनुष्यसे परे है"। समस्त लोगोंने इस प्रकार पात्रकेसरीका यशोगान कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। उनके पाण्डित्य तथा अनमोल गुणोंपर सब लोग मंत्र मुग्ध हो गये। उस समय लक्ष २ मुखोंसे एक ही महान् शब्दकी गूंज नभमें फैल रही थी वह थी श्री पात्रकेसरीका यश-गान। अतएव, हे पाठक वृन्द ?

आपलोग निश्चय पूर्वक विश्वास रक्खें कि श्री पात्रकेसरी परम आदरणीय सम्यग्दर्शनका उद्योत कर राजा-प्रजा तथा विद्वानों द्वारा दुर्लभ सम्मान प्राप्तकर यशके भाजन हुए। यदि, अन्य जन श्रद्धा भक्तिके साथ, उसी मार्गका अवलम्बन करेंगे तो निश्चय ही वे इस लोक-परलोकमें सुख-साधन प्राप्त कर स्वर्ग-मोक्षाधिकारी होंगे। सच पूछिये तो मैंने (ग्रन्थकार) श्रुतसागरकी आज्ञासे ही श्रीसिंहनन्दी मुनिके सन्निकट रहकर उपरोक्त कथाकी रचना की है जिसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकूं। श्री मल्लिभूषण भट्टारक, कुन्दपुष्पचन्द्रके समान ही निर्दोष, कीर्तिवान थे। वे श्री कुन्द-कुन्दाचार्यकी आम्नायमें विद्यमान थे, उन्हींके गुरु भ्राता श्रुतसागर थे जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

भट्टाकलंक देवकी कथा।

(२)

प्राणिमात्रके सुख-निर्माता! सृष्टि-जगतके ईश महान्।
जिन-ईश्वरके शुभ चरणोंमें, नमस्कार करता प्रभु जान॥
वही कथा भट्टा कलंक की, सम्यक्-ज्ञान रत्न की खान।
लिखता भक्ति भावसे भाई, पढ़लो पाठक! वह आख्यान॥

दो बालब्रह्मचारी।

इसी आर्यावर्त्तके मान्यखेट नामक नगरमें शुभतुङ्ग राजा राज्य करते थे। उनके मन्त्री महोदयका नाम पुरुषोत्तम था। उनकी, पद्मावती नामकी स्त्री थी। मन्त्रीके दो पुत्र थे जिन्हें अक-लंक और निकलंक नामसे पुकारा जाता था वे गुणोंके भण्डार थे,

तथा बुद्धिमत्ताके आगार। एक समय, एक छोटीसी घटनाने आगे चल कर एक वृहत् रूप धारण कर लिया। बात यह हुई कि मंत्री महोदय, अपनी स्त्री तथा दोनों लड़कोंके साथ अष्टान्हिका पर्वके शुभ अवसर पर श्री चित्रगुप्त मुनिके दर्शनार्थ गये। युगल दम्पतिने मुनिराज की वन्दना कर आठ दिनोंके लिये ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करलिया साथ ही स्वभावत: अपने दोनों लड़कोंको भी ब्रह्मचर्य-व्रतसे वचन बद्ध कर दिया। मंत्रीने स्वप्नमें भी यह ख्याल नहीं किया था कि हमारे लड़के सचमुचमे आजन्म ब्रह्मचारी हो जायेंगे। उन्होंने सहज-स्वभाववश एकप्रकार की हंसीकी थी जो आगे चल-कर सत्य सिद्ध हुई। समय बीतते देर नहीं लगती मंत्रीके दोनों पुत्र जवान हो चले।

विवाहसे इन्कारी।

तब मन्त्रीने उनके विवाहकी तैयारी की। जिस समय बाल-ब्रह्मचारी दोनों भाइयोंने देखा कि उनके विवाहका प्रबन्ध हो रहा है उसी समय उन्होंने निर्भीकता पूर्वक विनय युक्त शब्दोंमें पितासे कहा "पूज्य पिताजी हमें नहीं मालूम है कि आप क्या कर रहे हैं?" पिताने प्रिय पुत्रों की सहज सीधी बात सुनकर हँसते हुए कहा, "प्रिय पुत्र, क्या तुम्हें नहीं ज्ञात है कि यह सब धूम-धाम तुम्हारे विवाह कार्य्यके लिये की जा रही है।" चौंकते हुए पुत्रोंने कहा, "क्या हमारा विवाह होने जा रहा है? पिताजी! असम्भव है, आपने हमें आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतकी दीक्षा दिला दी है, क्यों याद है न? पिताने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा अरे क्या सचमुचमें मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य-व्रत दिलाया था? हरगिज नहीं, मैंने तो हंसीमें

वैसाही कहा था।" चतुर पुत्रोंने जवाब दिया, पिताजी ! सच है आपने हंसीमें ही हमें व्रत दिलाया है किन्तु, हम तो उसे सत्य जानकर ही पालन करेंगे। आप विश्वास रक्खें, धर्मके पंथमें हँसीका गुजारा कहां।" पिताने कहा, "तुम्हारा कहना मैं मानता हूं किन्तु, उस समय हमने केवल आठ दिनोंके लिये व्रतका नियम रक्खा था, अब वह बीत गया।" पिता की बात सुनकर उन्होंने कहा, "किन्तु पिताजी, आपने या आचार्य महोदयने ही उक्त दिनोंके सम्बन्धमें हमसे स्पष्टतः एक शब्द नहीं कहा था। अतः हमारा निश्चय है कि हम वह व्रत अपने जीवन भर पालन करेंगे। आप, हमारे-विवाह करने की इच्छा छोड़ दें, इस जीवनमें हम लोग विवाह करेंगे यह असम्भव बात है।" दोनों भाइयोंने उसी समय गृह-परिवारसे अपना मन खींचकर शास्त्राध्ययन की तरफ लगा दिया। वे दोनों शास्त्रोंके गहन-अध्ययनसे, थोड़े समयमें पूर्ण पण्डित हो गये। प्रिय पाठक गण। हम जिस समय का चर्चा लिख रहे हैं, उस समय, सारे भारतवर्षमें बौद्ध मतका दौर-दौरा था, उस समय उसी को तूती बोलता थी। दोनो भाइयोंके हृदयमें बौद्ध-धर्मके विषयमें जानकारी हासिल करनेकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। किन्तु, वहांपर उनको मनोभिलाषा को पूर्त्ति होना असम्भव था।

छद्म वेषमें बौद्ध धर्मकी पोल जानी।

अतः उन्होंने महाबोधि नामक स्थानमें जाकर बौद्ध-धर्मके अध्ययन करनेकी ठानी। दोनोंने अपठित विद्यार्थीके रूपमें वहांके धर्माचार्यके पास जाकर विद्याध्ययन की प्रार्थना की किन्तु, उस

समय बौद्ध-सम्प्रदायवाले कड़ी जांच कर हो विद्यादान दिया करते थे। अतः महाबोधिके धर्माचायने दोनों भाइयोंकी कड़ी परीक्षा लेकर, अन्य विद्यार्थियोंके साथ बौद्ध-सम्प्रदायके ग्रन्थ अध्ययन करने की आज्ञा दे दी ! उस समय, धर्मके सम्बन्धमें बौद्धोंने इतनी धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता एवम् अनुदारता धारण कर ली थी कि वे विना, जांच-पड़ताल किये सबको नहीं पढ़ाते थे। अब, दोनों भाइयोंने मूर्ख बन कर विद्यारम्भ किया। उनके हृदयमें जैन-धर्मके प्रति अटल प्रेम तो था ही किन्तु बाहरमे वे बौद्ध बने रहे। दोनों भाइयोंकी स्मर्ण शक्ति इतनी तेज़ थी कि अकलंकदेव तो केवल एक बार की सुनी हुई बातको याद कर लेते थे। निक-लंकके सामने यदि कोई अपनी बात दो बार कहे तो वह उसे याद कर लेते थे। इस प्रकार, दोनों भाई बौद्ध-धर्मकी बात सुन २ कर कंठस्थ कर लिया करते थे। अकलंक तो संस्थ और निकलङ्क दो संस्थ को पदवीसे विभूपित हो गये एक संस्थ उसे कहते हैं जिसे एक वारकी सुनी हुई वात याद हो जाय, जो दो वार कहनेसे स्मर्ण कर ले उसे दो संस्थ कहते हैं। इस प्रकार दोनों भाइयोंने छद्म वेपमें रहते हुए बौद्ध-धर्मके विपयमें पूर्ण जानकारी हासिल कर ली। साथ ही वहांका कोई भी मालूम नहीं कर सका कि ये दोनों छद्मवेपी बने हुये विद्यार्थी हमारे धर्म-शास्त्रोंकी पोलोंका अध्ययन कर रहे हैं। किन्तु, निम्नलिखित घटनाओंके लिये खतरे की घण्टीका काम किया वह यों हैं—

सन्देह कैसे हुआ ?

बात यों है कि एक दिन आचार्य महोदय विद्यार्थियोंको शिक्षा

दे रहे थे, शिक्षाके विषयमें ही एक स्थानपर प्रसंगवश जैन-धर्मके सप्तभङ्गी-तत्वके अशुद्ध प्रकरण आ जानेसे बौद्ध गुरुकी समझमें नहीं आया कि वह किसप्रकार विद्यार्थियोंसे कहे। वे पढ़ाना छोड़ कर बाहर चले गये।' किन्तु अकलङ्क देव बौद्ध गुरुकी कमजोरी ताड़ गये। आचार्यके बाहर जाते ही उनने चुपचाप बिना किसीसे कुछ कहे पाठ शुद्ध कर दिया। आचार्य महोदयने थोड़ी देरमें आकर शुद्ध पाठ देखा अब उनके दिमागमें सब बातें साफ साफ आ गयीं। किन्तु, थोड़ी देरके बाद उन्होंने अपने मनमें विचार किया, "क्या बात है? किसने पाठ शुद्ध किया, यहां पर जैन-धर्मका अभ्युदय चाहनेवाला कोई छद्म वेषो विद्यार्थी गुप्त रीतिसे बौद्ध-धर्मकी हानि करनेके प्रयत्नमें लगा हुआ है नहीं तो जैन-धर्मके तत्वको कौन शुद्ध करता? अतः, ऐसे गुप्त शत्रुका शीघ्रही नाश कर देना उचित है।" ऐसा विचार कर आचार्य-महोदयने समस्त विद्यार्थियोंसे कसमें लीं? परन्तु, जान-बूझ कर ऐसा कौन मूर्ख होगा जो जान देनेके लिये तैयार हो जाय? तब, आचार्यने भगवान की जैन प्रतिमा मंगाकर सबको लांघनेके लिये कहा। आचार्य की आज्ञा होते ही दोनों भाइयोंके अतिरिक्त सब जल्दा लांघ गये। अब, अकलङ्कके सामने कठिन समस्या थी। एक तरफ व्यर्थमें हठ कर (मूर्त्ति न लांघ कर) प्राण गंवाना, दूसरी तरफ उपायसे मूर्त्ति लांघकर गुप्त रह बौद्ध-मतकी पोल जान कर जैन-धर्मकी सेवा करनेके विचारसे गुप्त रहना ही श्रेयस्कर समझा ऐसा सोचकर अकलङ्कने पतला सूत प्रतिमा पर डाल कर उसे परिग्रही समझ झट पार कर गये। उनने इतनी तेजीसे सब

कुछ काम किया जिसे किसीने नहीं देखा। इस प्रयत्नमें आचार्य असफल रहे। अब उनने तीसरी तरकीब सोची जो सफल सिद्ध हुई। उनने कांसेके वर्त्तन, विद्यार्थियोंके सोनेके पास ही रखवा दिये वहां अपना एक गुप्तचर रख छोड़ा। समस्त विद्यार्थी नींदमें खुर्राटे लेने लगे। उन्हे क्या पता था कि उनके विरुद्ध कोई गुप्त कार्यवाही हो रही है। जिस समय समस्त विद्यार्थी प्रगाढ़ निद्रामें सो रहे थे, एकाएक एक भयानक शब्द हुआ जिससे सबके सब घबड़ा कर उठ बैठे। समस्त विद्यार्थियोंने किसी भावी विपत्ति की आशंकासे भयभीत होकर अपने २ इष्टदेवका स्मरण करना प्रारम्भ कर दिया। आचार्यका जासुस सबकी पुकार ध्यानसे सुन रहा था वह दोनों भाइयोंके मुखसे पंच नमस्कार-मंत्रका उच्चारण सुनकर चौंक उठा। वह, दोनों भाइयोंको पकड़ बौद्ध-गुरुके पास ले जाकर कहने लगा, गुरु देव! हमारे धर्मके दुश्मन पकड़े गये? येही धूर्त हैं जिन्होंने अपने इष्टदेव जिन भगवानका नाम लिया है अब आज्ञा दीजिये, इनके साथ कैसा वर्ताव किया जाय। बौद्ध गुरु सामने ही अपने दुश्मनको देखकर क्रोधित हो चिल्ला उठा, "प्राणदत्त? इन धूर्तोंको कारागारमें बन्द कर दो, आधी रात्रिके समय इसका वध होगा" दोनों भाई, कैदखानेमें बन्द हुए।

दोनों भाई कैदसे भागे।

दोनों भाई, कैदखानेमें मृत्युके घाट उतरनेके लिये ठूस दिये गये। निकलङ्कने गिड़गिड़ाकर अपने भाई अकलङ्कसे कहा, "भाई, देखता हूं कि हमारा सारा प्रयत्न बेकार हो रहा है, हम लोगोंने अपनी विद्याका कुछ भी उपयोग नहीं किया। हमारी समस्त विद्या

निरर्थक सिद्ध हो रही है; हमने जैन-धर्मकी सेवा भी नहीं की, और मुफ्तमें जान जा रही है।" अकलङ्क तो परिस्थितिसे घबड़ा जाने वाले मनुष्योंमेंसे नहीं थे। वे धीरताकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति थे, उन्होंने साहस कर निकलङ्कसे कहा, "भाई, घवड़ाते क्यों हो? देखो, मेरे पास छत्री है, इसीके द्वारा हम अपने प्राणकी रक्षा कर जैन-धर्मकी सेवा कर सकेंगे। उठो, हम लोग इसके द्वारा यहाँसे भाग निकले।" वस दोनों भाई, धीरे २ वहाँसे निकल पड़े और बड़ी तेजीसे भाग चले।

शत्रुओंने पीछा किया!

उधर, बौद्ध-गुरुने आधी रात्रिका समय जान दोनों भाइयोंको कारागारसे लाकर मारनेकी आज्ञा दी। गुरुकी एक जवानपर कितने लोग कैदखानेकी तरफ चल पड़े। किन्तु उनके आश्चर्यकी सीमा न रही जव उन्होंने कारागारमें मनुष्य क्या उनकी छायातक नहीं देखी, सभी हैरान हो गये। उस समय सबकी जवानपर एक ही वात थी, पाजी भाग गये। कोई कहता कहाँ गये, किधरसे भागे दूसरा कहता अरे, देखो, कहीं वे दोनों आस-पासके स्थानोंमें छिपे होंगे। चारों ओर कोलाहल मच गया। चारों ओर लोग उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ पड़े। वातकी वातमें जंगल, पहाड़का कोना-कोना छान डाला गया मगर वे न मिल सके। तब वे और क्रोधित होकर कहने लगे देखो, वे भागने नहीं पावे, घोड़ेपर चढ़कर उन्हें पकड़ लिया जाये। वे कहां भागकर जांयगे। हाय! मनुष्य होकर मानवता छोड़ वे दानव वन गये। उस समय उनके हृदयमें प्रतिहिंसाकी दुर्भावना काम कर रही थी। क्रूरता ताण्डव नृत्य कर रही थी।

दानवता अठखेलियाँ कर रही थी और दया सिसक-सिसककर रो रही थी। बातकी बातमें कितने अश्वारोही तेजीके साथ दोनों भाइयोंका पीछा करने लगे। उधर दोनों भाई सशंकित हृदयसे जल्दी २ भागते जा रहे थे, वे पीछे फिर कर देखते भी थे कि कहीं हमारा पीछा तो नहीं किया जा रहा है। इसी बीचमें निकलङ्कने पीछे आकाश मण्डलमें गर्दा उड़ते देखा। वह समझ गया कि निर्दई बौद्ध हमें पकड़नेके लिये हमारा पीछा कर रहे हैं।

भाइयोंमें वियोग।

एकने चौंककर अपने दूसरे भाई अकलङ्कसे कहा, "आह भाई हम लोगोंके प्रति दैव ही प्रतिकूल मालूम होते हैं—देखो, आकाशमें धूल उड रही है शत्रु हमारा पीछा कर रहे हैं? भैया, हमारा उद्देश्य असफल रहा। अफसोस, हमने अपने प्रिय जैन-धर्मकी कुछ भी सेवा नहीं की? मौत हमारा सामना कर रही है, दैव प्रतिकूल है। अब, मृत्यु निश्चित है—दुष्ट पापियोंके हाथोंसे बचना असम्भव है किन्तु एक उपाय है जिससे जैन धर्मकी कुछ सेवा हो सकेगी वह यह है -देखो, सामने तालाबमें कमलके पुष्प भरे हुए हैं। तुम कमलमें छिपकर अपनी जान बचाओ। जानते हो, किसके लिये जैन धर्मकी सेवाके लिये। तुम स्वस्थ हो, साथ ही विद्वान। यदि तुम बचे रहोगे तो तुम्हारे द्वारा प्रिय पवित्र जैन-धर्मका अभ्युदय होगा। मुझे प्राण देने दो। कुछ परवाह नहीं। मैं हँसते २ अपनी जान दे दूंगा, मुझे मरनेमें भी सन्तोष तथा सुख प्राप्त होगा कि मेरे भाईने जैन-धर्मका झण्डा गौरवके साथ ऊंचा फहराया है। भाई, जल्दी करो, तालाबमें जाकर छिप रहो, देर मत करो, देखो,

पापियोंकी फौज नजदीक आ रही है। बस, आखिरी विदा—भाई, मैं भी जाता हूं, तुम भी जाओ। ऐसा कहकर निकलंक तेजीके साथ चल पड़ा—उधर अकलङ्क अपने प्रिय भाईसे अन्तिम विदाई भी नहीं ले सके—कुछ क्षणतक वे जहांके तहाँ खड़े रहे उनका गला भर आया।—भ्रातृ-वियोगके कारण उनका हृदय, भ्रातृ-प्रेमसे आन्दोलित हो उठा। अकलङ्कके मुंहसे यह बात निकल पड़ी, मैं अपने लिये नहीं बल्कि पवित्र जैन-धर्म सिद्धान्तके लिये जिन्दा रहूंगा। पाठकगण! अकलङ्कके लिये कमलपत्रोंमें आश्रय लेना नाम मात्रका था। सच पूछिये तो उन्होंने जिन शासनकी शरणमें आश्रय लिया था। उधर निकलङ्क जो छोड़ कर बेतहाशा भागे जा रहे थे। पासही उन्हें कपड़ा धोता हुआ एक धोबी दिखा। धोबी निकलङ्कको भागता देख, साथ ही आकाशकी धूलि देख कर बोला, "हे भाई, तुम भागे क्यों जा रहे हो? क्या बात है? और आकाशमें इतनी धूल क्यों उड़ रही है?" अकलङ्कने भागते हुए कहा, "अरे! तुम भी भागकर अपनी जान बचाओ, पीछे शत्रुओंकी फौज तेजीके साथ आ रही है, उसे रास्तेमें जो मिलता है वह उसका खातमा कर देती है। अब, धोबीरामका डरके मारे होश गायब हो गया, वह भी कपड़े वहीं छोड़ निकलङ्कके साथ जी छोडकर भाग चला। परन्तु वे भागकर कहा जाते? अश्वारोहियोंने बातकी बातमे दोनोंको पकड़ लिया। पापियोंने वहाँ क्रूरताकी पराकाष्ठा कर दी। वे दोनों तलवारके घाट उतार दिये गये। ठीक ही है जिस धर्मके अनुयायियोंमें दया, अहिंसाका भाव नहीं रहता, उनके पापी अनुयायी जो न दुष्कर्म करें वह थोड़ा है। जिसके पंथमे मिथ्यात्वका प्रचार है

आडम्बरका व्यापार है उसके अनुयायी यदि अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ, क्रूरता, वर्बरता तथा जघन्य-पूर्ण बर्ताव करते हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? पापियोंने निर्दोष व्यक्तियोंको हत्यासे अपना मन सन्तोष करा लिया। वे हर्षके मारे फूले नहीं समाये। जब वे चले गये तब अकलङ्क सरोवरसे निकल तेजीसे एक ओर चल दिये। इस प्रकार भ्रमण करते वे कलिंग देशके रत्नसंचयपुर नामक एक नगरमे जा पहुंचे।

बौद्ध गुरु हराये गये।

उन दिनों रत्नसंचयपुरमे हिमशीतल नामक राजा राज्य करते थे। उनकी मदनसुन्दरी नामक स्त्री थी। रानी मदनसुन्दरी को जैन-धर्मपर बड़ी आस्था थी। उसने जिन भगवानका मन्दिर बनवाया था। रानी जिन भगवानकी श्रद्धा-भक्तिके साथ पूजा किया करती थी। ठीक उसी समय, फाल्गुण शुक्ल अष्टमीसे रथ-यात्राका उत्सव आरम्भ हुआ था। रानीने उस महोत्सवको सफल बनानेमें बहुत द्रव्य खर्च किया था। उसी नगरमें संघ श्री नामक बौद्धोंका एक आचार्य था। वह जैन धर्मावलम्बियोंसे ईर्षा रखता था। उसने महाराजके पास जाकर निवेदन किया कि आप रानी-की रथ यात्रा बन्द करा दें। महाराजने उसकी बात मान रथयात्रा बन्द करा दी। संघश्री अपनी सफलतापर फूला नहीं समाया, उस का हौसला बढ़ गया। उसने देखा कि यहांपर जैनियोंमें कोई विद्वान नहीं है, शास्त्रार्थ करनेकी घोषणा प्रकाशित की। इधर रानी रथयात्राके ऊपर राजाकी निषेधात्मक आज्ञा सुन बहुत दुखित

हुई। महाराजने रानीसे कहा, "जबतक, जैन धर्मका अनुयायी कोई विद्वान बौद्ध गुरुको शास्त्रार्थमें हराकर अपने उत्कृष्ट धर्मका झण्डा नहीं उड़ायेगा तबतक तुम्हारा महोत्सवका होना असम्भव है। रानीने दुःखित हृदयसे जिनालयमे जाकर जैन मुनियोंको श्रद्धासे नमस्कार कर निवेदन किया, "मुनिराज! आज हमारा महोत्सव रुका हुआ है। बौद्ध गुरुने शास्त्रार्थकी घोषणा कर मेरा महोत्सव रुकवा दिया है। मुनिराज, आज ही धर्म परीक्षाका दिन है। क्या कोई जैन सम्प्रदायमे ऐसा प्रसिद्ध विद्वान है जो धर्म गुरु को शास्त्रार्थमे पराजित कर जैन धर्मकी श्रेष्टता सिद्ध कर दे? प्रभो! एक पन्थ दो काजके अनुसार मेरी मनोभिलाषाकी पूर्त्ति हो जायगी साथ ही पवित्र जैन धर्मकी उत्कृष्टता भी साबित हो जायगी।" रानीकी विनम्र प्रार्थना सुनकर मुनिने कहा, "यहांपर कोई ऐसा विद्वान नहीं है जो बौद्ध गुरुको शास्त्रार्थमे जीत सके। हां मान्यखेट नगरके विद्वान यदि आवे तो आपकी मनोकामना सिद्ध हो सकती है। मुनिराजका इस प्रकार उत्तर सुनकर रानीका हृदय विषादसे खिन्न हो गया। उसने ओजपूर्ण शब्दोंमें कहा, मुनि-राज! भला आपके मुंहसे ऐसी निराशायुक्त बातें? आह, बलवान सामने गर्जन-तर्जन कर रहा है और आप कहते हैं कि उससे लड़ने वाला तो यहां नहीं वहां है। कितने दुःखकी बात है कि आप सदृश मुनिराजके रहते हुए जैन धर्मका इस प्रकार अपमान हो। इससे तो यही ज्ञात हो रहा है कि आप हमारे पवित्र जैन-धर्मसे प्रतिकूल जा रहे हैं? हाय, जब मेरा प्रिय पवित्र जैनधर्मका अस्तित्व ही नहीं रहेगा तब मैं इस संसारमें जिन्दा रहकर क्या करूंगी?

इस प्रकार अपने मनमे अत्यन्त दुखित होकर रानी मदन सुन्दरीने जिन मन्दिरमें आकर अपने मनमे दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक यह वौद्ध गुरू हटाया नहीं जायगा और मेरा रथोत्सव धूम-धामसे न निकलेगा तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूंगी ? यह कैसे हो सकता है कि अपनी आँखोंके सामने ही जैन-धर्मका पतन देखूं, मैं उसकी दुर्दशा देखनेके स्थानपर अपना बलिदान कर दूंगी मगर अपने पवित्र धर्मकी दुर्दशा नहीं देख सकती। वह ऐसा निश्चय कर निराहार रहकर पंच नमस्कार मंत्रका पाठ करने लगी। जिस प्रकार सुमेरु पहाड़ अपनी निश्चल चूलिकाके लिये सुविख्यात है उसी प्रकार रानी मदनसुन्दरी अखण्ड ध्यानस्थ अवस्थामें सुन्दर दिखाई देने लगी। जो जन निश्चल हो श्रद्धा-भक्तिसे, भगवानकी आराधना किया करते हैं उनका मनोरथ अवश्य ही सफल होता है, तब रानीकी मनोकामना क्यों नहीं पूरी होगी ? उनके निष्कपट ध्यानसे प्रसन्न होकर प्रभावती देवीका आसन कांप उठा। आधी रात्रिके समय देवी, रानीके पास आकर कहने लगी—रानी, जब तुम्हारे हृदयमे भगवानके चरण रूपी कमलका निवास है तब तुम चिन्तित क्यों हो, मैं निश्चय पूर्वक कहती हूं कि तुम्हारी मनो-कामना अवश्य सफल होगी। कल सुबह होते २ भगवान अकलंक-देव आयेंगे, वे बड़े भारी उद्भट विद्वान हैं, वे वौद्ध गुरुको शास्त्रार्थमे हराकर तुम्हारा रथोत्सव निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त करायेंगे। देवी इस प्रकार कहकर चली गई। उधर रानी मदनसुन्दरीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। प्रसन्नतामें ही रात्रि बीत गई, सुबह होते ही रानीने भक्ति भावसे भगवानकी पूजा की। इसके बाद उसने अपने

कई नौकर अकलंकदेवका पता लगानेके लिये भेजे। चारों दिशा-ओंमें सेवक अकलंकदेवको ढूंढ़नेके लिये चले। जो सेवक पूर्व दिशाकी ओर गया था उसने अशोक वृक्षके नीचे एक महात्मा को वैठे हुए देखा। महात्माके पास शिष्योंकी मंडली थी। सेवकने महात्माजीका परिचय पूंछकर रानीके पास जाकर सूचना दी। भगवानके आगमनका सुसम्वाद सुनकर, रानीके हर्षका पारा-वार नहीं रहा, उसने भोजनकी सामग्री लेकर भगवान अकलंकदेवके पास प्रस्थान किया। रानी उनके पास जाकर नमस्कार कर अत्यंत प्रसन्न हुई। प्रिय पाठक ! जिस प्रकार सूरजको देखकर कमलिनी प्रसन्न होती है (विकसती है) जिस प्रकार मुनियोंके तत्त्व-ज्ञान देखकर बुद्धि प्रसन्न होती है, उसी प्रकार भगवान अकलंकदेवके शुभ दर्शनसे रानी मदनसुन्दरी अत्यन्त प्रसन्न हुई। इसके बाद रानीने वड़ी भक्तिसे उनकी पूजा-अर्चना की। तत्पश्चात नमस्कार कर हाथ जोड़ वैठ गयी। रानीके भक्ति-भावसे प्रसन्न होकर महा-त्मा अकलंकदेवने उसे शुभाशीर्वाद देकर कहा, "देवी, कहो, कुशल तो है न ? संघकी दशा अच्छी है न।" भगवान अकलंकदेवकी विनम्र वाणी सुनकर रानी की आँखोंसे आँसुओंकी धारा बरसने लगी, उसका गला रुंध गया। उसने लड़खड़ाती हुई जवानमें कहा. "देव ! संघके विषयमें क्या कहूं, आज उसकी बड़ी दुर्दशा हो रही है, जिसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। ऐसा कहकर रानीने बौद्ध-गुरु-संघश्रीके काले कारनामे कह सुनाये। रानीके मुंहसे जैन-धर्मके अपमानकी बात सुनकर श्री अकलङ्क क्रोधित हो उठे। उन्होंने उत्तेजित होकर कहा,—"देवी, मैं देखूंगा कि संघ श्री

कितनी विद्वत्ता रखता है। तुम सच जानो उसका सारा घमण्ड चूर हो जायगा ? उसमें कितनी ताकत है कि वह मेरे सामने शास्त्रार्थमें ठहर सके। मैं निश्चय पूर्वक कहता हूं कि यदि बुद्ध स्वयं आकर मुझसे शास्त्रार्थ करें तो मैं उसे भी पराजित कर सकता हूं, यह धर्मश्री किस खेतकी मूली है, देवी, तुम निश्चिन्त रहो। इस प्रकार रानीको सान्त्वना देकर श्री अकलङ्कने बौद्ध गुरु के पास शास्त्रार्थ करनेका आवाहन स्वीकार का पत्र भेजा। इसके बाद वे बड़ी धूम-धामसे जिनालयमें गये। इधर जब संघश्रीने श्री अकलङ्क देवका शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्र पढ़ा तब उसके चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं। पत्रकी लेखन-शैली पढ़कर वह समझ गया कि श्री अकलङ्क देव किस कोटिके विद्वान हैं। किन्तु उसके लिये अब कोई चारा नहीं था, लाचार होकर वह शास्त्रार्थ करनेके लिये उद्यत हो गया। राजा हिमशीतलने श्री अकलङ्कदेवके आगमन-का सम्बाद सुनकर उन्हें आदरके साथ राज सभामें बुलाकर, संघ-श्रीके साथ शास्त्रार्थ करनेकी व्यवस्था की। संघश्री भी शास्त्रार्थ करनेके लिये राज सभामें आया। प्रथम दिन श्री अकलङ्कदेवके प्रश्नोत्तरने संघश्रीके सामने कठिन समस्या उपस्थित कर दी। वह समझ गया कि इनके साथ शास्त्रार्थमें मेरा ठहर सकना अस-म्भव है। किन्तु वह बहाना ढूढ़ने लगा। उसने थाड़ी देरके बाद महाराजसे निवेदन किया, "महाराज, यह कोई साधारण वाद-विवाद नहीं है, धार्मिक विषयके ऊपर शास्त्रार्थ है। मेरी इच्छा है कि शास्त्रार्थ नियमित रूपसे चले, साथही जबतक निरन्तर चलता रहे जबतक कोई पक्ष निरुत्तर होकर बैठ न जाय। महाराजने श्री

अकलङ्कदेवसे सलाह लेकर उस दिनकी शास्त्रार्थ सभा बन्द कर दी। उस दिन तो किसी प्रकार संघश्रीको इज्जत बच गई। दूसरे दिनके लिये सभा विसर्जित हो गई। इधर संघश्री अपने संघमें आकर बड़ा चिन्तित हुआ उसने उसी रात्रिमें अपने कई शिष्य, बौद्ध-विद्वानोंको बुलानेके लिये भेजे। इसके बाद वह अपनी इष्ट देवीकी आराधना करने लगा। उसको देवी आकर कहने लगी, "संघश्री तुमने किसलिये मुझे आवाहन किया है। संघश्रीने बेचैनोसे हाथ जोड़कर कहा, "देवी, आज बड़ी विकट समस्या है ? बौद्ध धर्मपर संकटके घन-घोर बादल घिर आये हैं। अकलङ्क बड़ा भारी विद्वान है, इस समय उसके साथ शास्त्रार्थ करना कठिन है। देवी, तू मेरे नामपर उससे शास्त्रार्थ कर, बौद्ध-धर्मकी मर्यादा-की रक्षा करो, बड़ा नाजुक समय है। देवीने कहा, 'संघश्री, मैं अकलङ्कके साथ शास्त्रार्थ करूंगी, किन्तु आमने-सामने नहीं। मैं परदेमे रहकर करूंगी।" इस प्रकार कहकर देवी तो चली गई। अब संघश्री अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन, वह अपनी नित्य क्रियासे निवृत्त होकर राजसभामे जा पहुंचा। उसने महाराजसे सादर निवेदन किया, "महाराज! मैं परदेके भीतरसे शास्त्रार्थ करूंगा ? आप, स्वीकार करें। यदि इस समय मुझसे इसका कारण पूछा जायगा तो मैं प्रार्थना करूंगा कि शास्त्रार्थके अन्तमे इसका कारण बता दिया जायगा।" महाराजने संघश्रीकी बात स्वीकृत कर ली, उन्हें क्या पता था कि दालमें कुछ काला है। महाराजने संघश्रीके कथनानुसार परदेका प्रबन्ध करा दिया। वह परदेके भीतर गया, वहा उसने बौद्ध भगवानकी पूजा की। कुछ

देरके बाद उसने एक घड़े में देवीका आवाहन किया। जो लोग छल-कपटसे अपनी धाक जमाना चाहते हैं उनकी कलई खुल जाती है। जैसे किसीने कहा है:—

"फेर न होइ हैं कपटसे जो कीजे व्यापार।
जैसे हांडी काठकी चढ़े न दूजी बार॥

इधर संघश्रीने घड़ेमें अपनी इष्ट देवीका आवाहन किया। उधर उसकी देवी अपनी समस्त शक्तिके साथ घड़ेमें उपस्थित होकर श्री अकलङ्क देवसे शास्त्रार्थ करने लगी। दोनों तरफसे खण्डन-मण्डन चलने लगा। देवीके प्रतिपादित विषयको श्री अकलङ्क देव अपने पूर्ण पाण्डित्यसे खण्डन करने लगे। वे अत्यन्त विद्वतासे परम पवित्र अनेकान्त-स्याद्वाद मतके पक्षका समर्थन करते थे। इस प्रकार दोनों पक्षमें खण्डन-मण्डन होते २ छः महीने बीत चले। तब; श्री अकलङ्क देवने अपने मनमें विचार किया कि संघ श्रीके समान साधारण व्यक्ति छः महीनेतक कैसे शास्त्रार्थमें ठहरा हुआ है। इस प्रकार वे चिन्ता-सागरमें डूबने उतराने लगे। एक दिन उन्हें चिन्तित देख जिन-शासनकी इष्ट देवी चक्रेश्वरी उनके पास आकर कहने लगी, "देव! आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं। मनुष्य-में भला इतनी ताकत कहां जो आपके समक्ष शास्त्रार्थमें ठहर सके। आप क्या समझते हैं कि आपके साथ संघश्री शास्त्रार्थ कर रहा है? नहीं, प्रभो! उसकी अधिष्ठात्री देवी छ. महीनेसे आप-के साथ वाद-विवाद कर रही है। संघश्रीने आराधना कर देवीको शास्त्रार्थ करनेके लिये आवाहन किया है। उस देवीका नाम तारा है। आप निश्चिन्त रहें। हां, कलके शास्त्रार्थमें आप एक कार्य

कीजिये जिससे देवी निरुत्तर होकर चली जायगी। जब देवी अपने पक्षका प्रश्न करे तब आप उससे अपने प्रश्नको दुवारा कहने के लिये कहियेगा, फल स्वरूप देवी अपना प्रश्न दूसरी बार नहीं कहेगी और शास्त्रार्थका सहजमें ही अन्त हो जायगा। इस प्रकार श्री अकलङ्क देवको सजग कर देवी चली गई। अब, श्री अकलङ्क देवकी चिन्ता दूर हुई। दूसरे दिन, सुबह होते ही श्री अकलङ्क देव ने स्नानकर जिन मन्दिरमें जाकर भगवानको आराधना की। इसके बाद उन्होंने राज सभामें जाकर महाराजसे कहा—महाराज आज मैं चाहता हूं कि शास्त्रार्थका अन्त हो जाय। महाराज, इतने दिनोंतक शास्त्रार्थ करनेका यह मतलब नहीं था कि मैं संघ श्रीको शास्त्रार्थमें हरानेमें असमर्थ रहा वरन् इतने दिनोंतक मैंने जैन-धर्मके सिद्धान्तका महत्त्व प्रकट किया है। किन्तु, आज मैं निश्चय पूर्वक कहता हूं कि शास्त्रार्थका अन्त कर ही भोजन ग्रहण करूंगा। इस प्रकार महाराजसे निवेदन कर श्री अकलङ्क देव परदे की तरफ अपना मुँह कर कहने लगे,—क्या जैन धर्मके विषयमें कुछ कहना बाकी है या मैं शास्त्रार्थका अन्त करूं? श्री अकलङ्क देवके पूछते ही परदेके भीतरसे देवी अपने पक्षके समर्थनमें अपना वक्तव्य देकर चुप हो गयी। कुछ क्षणके बाद श्री अकलङ्क देवने पूछा,—"आप कृपाकर अपना प्रश्न फिरसे कहिये, मैंने आपका प्रश्न नहीं सुना।" बस, देवीकी बोलती बन्द हो गयी। कारण यह है कि देवता एक बार ही बोलते हैं दूसरी बार नहीं बोलते। इस प्रकार श्री अकलङ्क देवका नया प्रश्न सुनकर देवी किंकर्तव्य, विमूढ़ होकर बिना कुछ उत्तर दिये ही वहांसे रफफू-चक्कर हो गई।

जिस प्रकार भास्करके उदय होते ही अन्धकार भाग जाता है उसी प्रकार उस देवीकी दशा हुई। जब परदेके भीतरसे श्रीअकलङ्क देव के कथनानुसार किसीने उत्तर नहीं दिया तब उन्होंने परदेके भीतर घुसकर घड़ा फोड़ कर संघ श्रीका मान-मर्दन कर दिया। संघ श्री किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। उसकी पोल खुल गई। इतनेमें श्री अकलङ्कदेवने जैन-धर्मकी विजय पताका फहरा कर अपूर्व चमत्कार दिखलाया। समस्त उपस्थित जन समुदाय जैन-धर्मकी विजयपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मदनसुन्दरीके हर्षका ठिकाना नहीं था, उसी समय अकलङ्क देवने कहा,—"सज्जनो! आप लोगोंने बौद्ध गुरुकी चाल देखी। आप विश्वास रक्खे कि मैं प्रथम दिन ही संघ श्र.को शास्त्रार्थमें विचलित कर देता, परन्तु छह महीनेतक देवीसे लगातार शास्त्रार्थ कर जैन-धर्मका माहात्म्य तथा सम्यग्ज्ञानके प्रभाव प्रदर्शित करनेके लिये ही किया था। अब, आप लोग समझ गये होंगे कि किसका धर्म सत्य एवं उत्कृष्ट है।

विजय।

राज-द्वार में बौद्ध गुरुको कैसे नीचे दिखलाया।
किन्तु, आप निश्चय जानें नहिं द्वेष भाव निज प्रकटाया !!
नास्तिक जनके महा पतनपर मुझे दया जब हो आई।
क्या करता, लाचार हुआ, मैंने निज-महिमा प्रकटाई ॥

पाठकगण, तभीसे बौद्ध-धर्म, सर्व साधारणकी नजरोंसे गिर गया। क्या राजा, क्या प्रजा सभी उससे घृणा करने लगे। नतीजा यह हुआ कि आज इस भारतवर्षसे बौद्ध-धर्मका जड़ ही नाश हो

गयी। तभीसे उस सम्प्रदायके लोग विदेशमें जाकर अपना अस्तित्व बचा पाये। उधर महाराज हिमशीतलकी श्रद्धा जैन-धर्म पर जम गई। उन्होंने प्रसन्नतासे जैन-धर्म स्वीकार कर लिया। उनकी (महाराज) देखा-देखी अधिकांश प्रजा, जैन धर्मकी शरण में चली गई। सब लोगोंने श्री अकलङ्क देवकी विद्वतासे चमत्कृत होकर उनका सम्मान किया। उस समय चारों ओर उनकी प्रशंसा होने लगी। इसमें तनिक भी सन्देहकी गुंजाइश नहीं है कि पवित्र सम्यग्ज्ञान अपना प्रभाव न दिखावे। जिन भगवान्‌के महत्वसे कौन इन्कार कर सकता है जिसके द्वारा सुख स्मृद्धिकी प्राप्ति होती है।

महारानीकी इच्छा पूर्ण हुई।

जब श्री अकलङ्क देवके प्रभावसे जैन धर्मकी व्यापकता फैल गई तब महारानी मदनसुन्दरीने दूने उत्साहके साथ, रथयात्राकी सवारी निकाली। रथ, इस प्रकार सजाया गया जिसका क्या वर्णन किया जाय? उसमे बहुमूल्य वस्त्र लगाया गया था। उसमें घण्टियोंकी टन-टनकी आवाज सुनाई देती थी। बीचमें बड़ा घण्टा टंगा था। रथके चारों ओर मणि-मुक्ताओंसे झालर लटककर शोभा बढ़ा रही थी। रथके बीचमें स्वर्ण सिंहासनपर जिसमें रत्नोंकी राशि लगी थी, भगवानकी भव्य मूर्ति विराजमान थी। जिसके ऊपर क्षत्र, चंवर, भामण्डल इत्यादि लग रहे थे। इस प्रकार भगवानका दिव्य रथ धीरे २ आगे चला जाता था, पीछेसे उत्तम पुरुष भगवानका जयजयकार बोलते जाते थे, वे भगवानके सिंहासनके ऊपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करते थे जिसकी सुगन्ध चारों ओर

फैल रही थी। रथके पीछे २ चारणगण भगवानका यशोगान गाते थे। गृहदेवियां मंगल गीत गाती थीं। अनेक प्रकारके बाजे बजनेसे रथोत्सव महत्वपूर्ण वन रहा था। नाचने वाली स्त्रियां अपने सुनृत्य से उसकी शोभा द्विगुणित कर रही थीं। इस प्रकार रथका उत्सव ऐसा सर्व व्यापक वन गया था जिससे ज्ञात होता था कि पुण्य स्वरूप रत्न प्रदान करने वाला कोई अन्य रोहण पहाड़ ही हो। उस समय वह रथ चलने वाला कल्पवृक्ष ही वन रहा था, कारण उसके पीछे दानी रत्न,वस्त्रादिका दान मुक्त हस्त होकर देते थे। पाठकगण! यह रथ महोत्सवका यत्किंचित वर्णन है, पूरा वर्णन करना असम्भव है। आप इतनेसे ही अनुमान कर सकते हैं कि जब अन्य धर्मावलम्बी जनने महान रथोत्सव देखकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया,तब उनके महत्वका क्या वर्णन किया जाय? महारानी मदनसुन्दरीने रथोत्सव इतना सज-धजकर निकाला था जिसे देखकर यही ज्ञात होता था कि देवीका यश प्रत्यक्ष मूर्त्तिमान होकर रथोत्सवके रूपमें सर्वव्यापी वन गया हो। वह रथ सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंके हृदयमें नित-प्रति सुख देने वाला था। हम आज भी श्रद्धा-भक्तिके साथ उस परम पवित्र रथकी आराधना करते हैं, उसमें अपना सद्भाव रखते हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि वह सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति करावे। पाठकगण, श्री अकलङ्क देवने सम्यग्ज्ञानकी प्रभावना, उसके महत्वसे सर्व साधारण जनोंके हृदयमें प्रभावित की। उसी तरह अन्य श्रेष्ठ जन परम पावन जिन धर्मके अभ्युदयमें अपना तन, मन, धन, समर्पित कर यशके भाजन वनेंगे। आशा है, जैन धर्मके प्रति उनका जो कर्त्तव्य धर्म है उसे सम्यक् प्रकारेण पालन कर

अपने सच्चे कर्त्तव्यका पालन करेंगे। हम जिन भगवानसे प्रार्थना करते हैं कि आपकी समग्र भूमण्डलमें जय हो। हे भगवन्! इन्द्र धरणेन्द्र तक आपकी वन्दना करते हैं। आपका ज्ञान रूपी चिराग सारे संसारको सुख-समृद्धिका प्रदाता है। अतः श्री प्रभाचन्द्र जो ज्ञान, गुण-रत्नके आगर हैं हमारा सर्वदा कल्याण करें, यही विनम्र प्रार्थना है।

सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी कथा।

(३)

स्वर्ग, मोक्ष-सुख, देने वाले अर्हंतोंका वन्दन कर।
साधु, सिद्ध, आचार्य-चरणमें, बार बार निज शिरको धर॥
सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी आगे लिखी कहानी है।
पाठक! जिनका वर्णन जगमें, अतिविचित्र लासानी है॥

यश-वर्णन।

इसी भारतवर्षमें, वीतशोक नामक एक नगरमें महाराज अनन्त वीर्य राज्य करते थे। उनको सीता नामक रानी थी। महाराजके पुत्रका नाम सनत्कुमार था वे इतने प्रतापी थे कि उन्होंने समस्त भूमण्डल अपने आधीन कर चक्रवर्त्तीका पद ग्रहण कर लिया था। सम्यग्दृष्टियोंमें उनकी खास गणना थी। उनके ऐश्वर्यका क्या वर्णन किया जाय। चक्रवर्त्ती सनत्कुमारके यहां नवनिधियां, चौदह रत्न, चौरासी लाख हाथी तथा उतने ही रथ थे। घोड़ोंकी

संख्या १८ करोड़ थी। चौरासी करोड़ योद्धा थे। उनके राज्यके अन्तर्गत छानवे करोड़ गाव थे जो धन-धान्यसे परिपूर्ण थे। उनके राज महलमे छानवे हजार अनुपम सुन्दरियां थीं। चक्रवर्त्तीके आधीन वत्तीस हजार ऐश्वर्य-सम्पन्न प्रतापी राजा राज्य शासन करते थे। वे सुन्दरतामे अपना सानी नहीं रखते थे। भाग्यवान् ऐसे थे कि देव विद्याधर उनकी सेवा करते थे। श्री सनत्कुमार पवित्र जैन धर्मपर अटल श्रद्धा भाव रखते थे। वे नियमानुसार प्रति दिन अपना दैनिक धर्म-कार्य सम्पन्न किया करते थे। इस प्रकार चक्रवर्त्ती सनत्कुमार प्रजाके ऊपर प्रेमसे शासन कर अपना समय सुखसे विताते थे।

एक समयकी वात है कि सौधर्म स्वर्गके इन्द्र अपनी सभामें मनुष्योंकी रूपकी प्रशंसा कर रहे थे, उनके आस-पास अनेक देव विद्यमान थे। उनमेंसे एक देवने हँसीमें पूछा, "प्रभो, आपने जिस मनुष्यके रूपकी प्रशंसा की है, क्या उस तरहका कोई मनुष्य मिल सकता है या आपने प्रशंसा भर की है।"

चक्रवर्त्तीके पास देव आये।

देवकी आश्चर्ययुक्त वात सुनकर देवेन्द्रने कहा, "मैं मनुष्योंके केवल रूपकी ही प्रशंसा नहीं करता, उसका प्रमाण सुनो। भारतवर्षमें श्री सनत्कुमार नामक एक चक्रवर्त्ती सम्राट हैं जो अपने अतुलनीय रूप-सौन्दर्यके लिये प्रसिद्ध हैं। उनके रूपके सामने मनुष्य क्या देवतक अपना सिर झुका लेते हैं।" देवेन्द्रकी प्रशंसा भरी वात सुन मणिमाल और रत्नचूल नामक दो देव चक्रवर्त्तीका

रूप देखनेके लिये अपना गुप्त भेष धरकर आर्य्यावर्तमें पहुंच गये। उस समय सम्राट सनत्कुमार स्नान कर रहे थे। दोनों देव उनका रूप-सौन्दर्य्य देखकर आश्चर्य चकित हो गये। वे आपसमें कहने लगे कि भाई ठीक है इनके रूपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी उससे अधिक देख रहे हैं। अहा, ये कितने सुन्दर हैं, जिसके लिये देव-तक तरसते हैं इस प्रकार कहकर दोनों देवोंने अपना असली रूप प्रकटकर सम्राटके पहरेदारसे निवेदन किया कि तुम सम्राटसे जा-कर कहो कि आपके रूप-सौन्दर्यको देखनेके लिये स्वर्गसे दो देव आये हैं। पहरेदारने श्री सनत्कुमारसे देवोंके आनेकी सूचना दी। सम्राट उसी समय अपने शृङ्गार-भवनमें जाकर सज-धजकर आये उनकी आज्ञा पाकर स्वर्गके देव सभामें आये। वे आते ही बोल उठे सम्राट! हम लोगोंने आपका स्नान करते हुए जो रूप देखा था, वह क्षणमात्रमें ही बदल गया। प्रभो! आपके इस रूपमें, और क्षण भर पहिलेके रूप-सौन्दर्यमें कितना अन्तर हो गया। अतः जैन-धर्मका यह सिद्धान्त कितना सत्य और मौजू हैं, संसार क्षण-भंगुर है।" देवोंकी विस्मय कारिणी बात सुन कर, सभामें उपस्थित समस्त मण्डली आश्चर्य प्रकट करने लगी। उसमेंसे कई सभासदोंने कहा, "आप यह क्या कह रहे हैं, सम्राटके रूपमें पहिलेसे अब क्या परिवर्तन हो गया है? हम लोग तो सम्राटके रूप-सौन्दर्यमें रञ्च-मात्र भी कमी नहीं पाते।" देवोंमेंसे एकने कहा, "मैं आप लोगोंके सामने सिद्ध कर देता हूं कि किस प्रकार अपने सम्राटके रूपमें परि-वर्तन होनेपर भी तुम नहीं जान पाये।" इस प्रकार कहकर उसी समय उन्होंने जलसे भरा हुआ एक घड़ा सभामें लाकर रख दिया

सबके सामने भरे घड़े मेंसे तृणसे एक बूंद जल निकाल लेनेपर भी घड़े के जलमें कोई अन्तर नहीं हुआ।" सब लोगोंने एक स्वरमें कहा, "कभी नहीं, घड़ा तो ज्योंका त्यों भरा पड़ा है।" इस पर उक्त देवने कहा, "महाशयो! यही आपके दृष्टि-कोणमें अन्तर है अब आप जान लें कि जिस प्रकार इस घड़ासे एक बूंद जल निकाल लेनेपर भी नजरोंमें यह ज्योंका त्यों दिखाई देता है उसी प्रकार सम्राटके रूपमें स्वल्प परिवर्तन हो जानेपर भी आप नहीं जान सके, किन्तु, वह हमारी दृष्टिमें नहीं छिप सकता, इस प्रकार कहकर दोनों देव स्वर्ग लोकको चले गये।

सम्राट त्यागी बनें

यद्यपि स्वर्गके दोनों देव चले गये, किन्तु वे महाराज सनत्कुमारके हृदयमें, वैराग्यके भाव बोते गये। महाराज अपने मनमें सोचने लगे, "संसारकी सभी वस्तुयें क्षण भंगुर हैं। वह दुःखका समुद्र है। इस शरीरके ऊपर हम इतना मोह करते हैं जो घृणास्पद दुःखप्रद तथा मल मूत्रोंका आगार है। बुद्धिमान मनुष्य इस क्षणभंगुर शरीरसे कभी भी प्रेम नहीं करते। इस अधम शरीरकी पांचो इन्द्रियां कितनी धोखेबाज हैं जिसका कोई ठिकाना नहीं। इनके पंजे में फँसकर मनुष्य अपना सर्वस्व गँवा देता है। ये जिस प्रकार चाहती हैं नाच नचाती हैं। मिथ्या आचार ही प्राणीका भयंकर दुश्मन है जो प्राणी उसके भ्रममें पड़ जाता है वह भवसागरसे पार करने वाले, आत्म कल्याण-कर्त्ता, सुख-निर्माता पवित्र जैन-धर्मसे विमुख हो जाता है। यह कथन सच है कि ज्वरके रोगी जिसे पित्त

का प्रकोप रहता है। उसे दूध भी कड़वा लगता है। अतः मैं आज हीं मायाबन्धनसे मुक्त हो जाऊँगा। इस प्रकार निश्चय कर चक्रवर्ती सनत्कुमारने हृदयमें वैराग्यका भाव ग्रहण कर, जिनालयमें जा जिन भगवानकी पूजा की। उन्होंने भिखारियोंको दान दिया इसके बाद वे अपने पुत्रको राज्य-भार देकर, वन चले गये। सम्राटने श्री चारित्रगुप्त मुनिराजके पास जाकर मुनि दिक्षा लेली। इसके अनन्तर वे कठिन तपमें संलग्न हो गये। उन्होंने पंचाचार आदि मुनि व्रतोंका पालन किया। उसकी भीषण तपस्याका क्या वर्णन किया जाय ?

पाठकगण, सम्राट, तपस्यामें इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें न शीतके प्रकोपका डर था और न गर्मीका भय। वे सम-भावसे शीतोष्ण सहन करने लगे। उन्हें भूख-प्यासकी क्या चिन्ता थी। जंगलके जीव उन्हें दुःख देते थे परन्तु वे उसे सहन करते थे। सच पूछिए तो जैन-धर्मके मुनियोंका धर्म-मार्ग बड़ा दुरूह है। यह उन्हीं का काम है जो शांति पूर्वक अविचल-भावसे कठिन-तपस्यामें तल्लीन रहते हैं। भला, साधारण मनुष्य क्योंकर उस मार्गमें जा सकता है जिसपर धीर-वीर महा मुनि अपना जीवन तक उत्सर्ग कर देते हैं। अतः सम्राट इस प्रकार आत्मोन्नतिके दुरूह-मार्गसे अग्रसर होने लगे।

पुनः देवने परीक्षा ली

एक दिन सम्राट् आहार लेनेके विचारसे नगरमें चले गये। सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे उनके आहारमें कोई ऐसी वस्तु मिल गई

कुमारी अनतमती का हरण पृष्ठ ८०

जिसके खानेसे उनके शरीरमें कुष्ट रोग हो गया। जिससे दुर्गन्ध आने लगी। यद्यपि, उसका समग्र शरीर व्याधि युक्त हो गया, किन्तु सम्राट्ने तनिक भी परवा नहीं की। उनका सारा शरीर कोढ़से फूट गया। मानो, उनके सदृश धर्मध्वजीके लिये शरीरका रोग क्या चीज़ है? वे जानते थे कि:—

कठिन व्याधियां औ अनन्त दुख वाल न बांका कर सकते।
जो दृढ़ व्रत ले तप-साधनमें, सदा बद्ध परिकर रहते॥
कंटक-शूल मार्गमें उनके, शुभ्र सुमन बन जाते हैं।
आते हैं तो आवें बाधक, नहिं साधक घबड़ाते हैं॥

इस प्रकार वे अपने शरीरके सम्बन्धमें सर्वथा निश्चिन्त रह कठिन तपस्यामे लीन रहे। एक दिनको बात है कि सौधर्म स्वर्गके देवेन्द्रने देवताओंकी सभामें मुनियोंके पाँच तरहके चरित्रका वर्णन किया। भरी सभामे मदनकेतु नामक एक देवने देवेन्द्रसे पूछा, "नाथ! आपने मुनियोंके चरित्रके सम्बन्धमें जो वर्णन किया है, क्या उस प्रकारका चरित्रवान् कोई पुरुष भारतवर्षमें आज कल मौजूद है?" देवेन्द्रने कहा, हाँ, ठीक उस प्रकारका आदर्श व्यक्ति एक पुरुष-रत्न है जो सनत्कुमार चक्रवर्त्तीके नामसे पुकारा जाता है। उनके त्यागका वर्णन करना असम्भव है। समग्र भूमण्डलका एकाधिपत्यता छोड़, देव-दुर्लभ ऐश्वर्य-भोग-सुखके ऊपर लात मारकर इस समय पांच तरहके चरित्रका पालन कर रहे हैं।" देवेन्द्रकी आश्चर्य भरी बातको सुनकर उक्त देवके मनमे उनकी परीक्षा करने की इच्छा हुई। वह जल्दी ही जहां वे अपनी भीष्म-तपस्यामें तल्लीन थे, पहुंच गया। वह वहांपर क्या देखता है कि उनका समस्त शरीर

भयङ्कर रोगसे आक्रान्त हो रहा है किन्तु वे अटल हिमालयकी तरह अपनी तपस्यामे लीन हैं। उनके शरीरकी दुःखप्रद व्याधियां उन्हे तपस्याके ध्येयसे विचलित नहीं कर सकतीं। सम्राटकी कठिन तपस्या देखकर मदनकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुआ किन्तु उन्होने विचार किया कि इनकी परीक्षा करनी चाहिये ? देहके प्रति इनको मोह-ममता है या नहीं ? इस प्रकार सोचकर उसने वैद्यका वेष बनाकर वनमे भ्रमण करना शुरू किया। वह उच्च स्वरमें बोलता जाता था, "मैं वैद्य हूं कठिनसे कठिन असाध्य रोग क्षण भरमें आराम कर देता हूं।" इस प्रकार पुकारता हुआ छद्मवेषी वैद्य महान तपस्वीके पाससे गुजरा। उसे देखकर सनत्कुमार महामुनिने उससे पूछा, "अजी तुम कौन हो ? अभी क्या चिल्ला रहे थे, किसलिये इस सुनसान जंगलमें घूम रहे हो ?" उसने उत्तर दिया, "मुनिराज, मैं एक प्रसिद्ध वैद्य हूं, मेरे पास ऐसी अमोघ औषधियां मौजूद हैं जिन से भयंकरसे भयङ्कर असाध्य रोग पल भरमें आराम हो सकते हैं। यदि आपको आजमाना हो तो अपने शरीरके रोगपर आजमावें, मैं तुरन्त आपका शरीर स्वर्ण समान किये देता हूं।" मुनिराजने हंसते हुए कहा, "वैद्यराजजी, अच्छे मौकेपर आये। मैं तो ऐसे ही वैद्यराजकी प्रतीक्षामें था जो मेरा असाध्य रोग दूर कर दे जिसके लिये मैंने कितना परिश्रम किया है परन्तु असफल रहा।" मुनि-राजकी बात सुनकर बने हुए वैद्यने प्रसन्न होकर कहा, "महामुनि, कहिये, आपके शरीरमें कौन असाध्य रोग है जो दूर नहीं होता। देखिये आपके कुष्ट रोगको मैं अभी बातकी बातमें जड़से दूर कर देता हूं।" महामुनिने कहा, "अजी वैद्यराजजी, आप किस घपलेमें

पड़े हैं मुझे कुष्ट रोगकी तनिक भी चिन्ता नहीं है, मैं उस भयङ्कर रोगकी चर्चा कर रहा हूं जिसके सामने यह कुष्ट रोग कुछ भी नहीं है।" अब देव चकराया, किन्तु डरते २ पूछा, कहिये वह कौन असाध्य रोग है।" मुनिराजने कहा, "वैद्यराजजी, संसारमें आवागमन ही एक ऐसा रोग है जिसे दूर करनेकी आवश्यकता है, क्या आप कृपाकर उसे दूर कर सकते हैं ?" अब उस देवकी बोलती बन्द हो गयी। उसने लज्जासे अपना मस्तक झुका लिया, तथा विनम्र शब्दोंमें कहा—मुनिराज ! आपके रोगको दवा मेरे पास नहीं है, आप स्वयं अपने रोगका इलाज कर सकते हैं, भला मैं क्या कर सकता हूं।" महामुनिने गम्भीरतासे उत्तर दिया, 'तब वैद्यराज, मुझे आपकी आवश्यकता नहीं है जो मेरे आन्तरिक रोग दूर नहीं कर सकता वे इसके बाद कहते ही गये:—यह शरीर क्षण भंगुर है, यह कितना अपवित्र है, गुण रहित है। यदि तुम ऐसे निकम्मे शरीरके रोग दूर कर दोगे तौभी मुझे स्वीकार नहीं जो रोग केवल वमन मात्रके संसर्गसे दूर हो सकता है उसके लिये उद्भट वैद्यराजों तथा उत्कृष्ट औषधिकी आवश्यकता क्या है ? इस प्रकार कहकर महान तपस्वीने वमन द्वारा अपने एक हाथका रोग दूर कर निर्मल बना दिया। मुनिराजकी अपूर्व शक्ति देखकर वह देव आश्चर्य चकित हो रहा। उसने अपना असली रूप प्रकट कर हाथ जोड़ निवेदन किया, महामुनि ! आप, धन्य हैं, देवेन्द्रने आपके अतुलित तप, योग, तथा देह सम्बन्धी निर्मोहकी जैसी प्रशंसा की थी, मैं उससे अधिक पा रहा हूं। नाथ, आप हीका जीवन सफल है, मैं किन शब्दोंमें आपका यशोगान करूं, आप

धन्य हैं। इस प्रकार महामुनि सनत्कुमारको प्रशंसा कर वह देव स्वर्गलोक चला गया। इसके वाद श्रीसनत्कुमारने कठिन तप द्वारा शुक्ल ध्यानस्थ होकर अपने समस्त घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्द्र महेन्द्रतक श्रद्धासे उनकी पूजा करने लगे। इसके अनन्तर मुनिराजने अपने सद्धर्म कार्य द्वारा दुःखी संसारी जीवोंको मुक्तिका रास्ता दिखाकर अन्तमें अपने अघातिया कर्मका नाश कर मोक्ष-सदृश परम पवित्र अक्षय धामके अधिवासी हुए। हम भी श्रद्धा-भक्तिसे प्रातः स्मरणीय भगवान् सनत्कुमार केवलीकी पूजा करते हैं कि वे हमें भी केवल ज्ञान दें।

हे पाठक! जिस तरह श्री सनत्कुमार महामुनिने सम्यक् चरित्रका प्रकाशन किया उसी प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुषको करना चाहिये। कारण उससे लोक-परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है। श्री मल्लिभूषण भट्टारकके प्रधान चेला सिंहनन्दी मुनि थे। वे श्री मूल-संघ-सरस्वती गच्छमें चरित्र वालोंमें सबसे श्रेष्ठ थे। वे सबको आत्म कल्याणका पथ बता गये हैं अतः मैं प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे भव-सागरसे अवश्य ही पार कर देंगे।
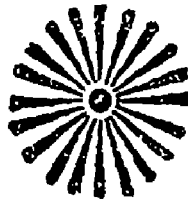
समन्त-भद्राचार्य की कथा।

(४)

श्री समन्त-भद्राचार्य की सुन्दर कथा सुनाता हूं।
जिसमें शुभ चरित्रका दर्शन सहज भावसे पाता हूं॥

प्रिय पाठक, आज मैं एक ऐसे महात्मा की जीवनी का वर्णन कर रहा हूं जिनकी कठिन तपस्या, विद्वता तथा लोक हितैषिता संसार भरमें मशहूर थी! उनका नाम भगवन् समन्तभद्र था। उनका जन्म भारतके दक्षिण प्रान्तके कांची नामक नगरीमें हुआ था वे बड़े तत्वदर्शी थे। न्याय, व्याकरण तथा साहित्य-शास्त्रमें उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनका आचार एवम् तपस्याका साधन अनुपमेव था। वे अपने जीवनका अधिकांश समय शुद्धाचार, आत्मचिंतन ग्रन्थ-निर्माण, एवम् ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें बिताते थे।

आचार्यने रोगके पंजेमें क्या २ किया?

कर्म प्रधान विश्वकरि राखा, जो जस करै सो तस फल चाखा।

की उक्ति ठीक ही है। प्राणी को अपने कर्मके अनुसार फल भोगना ही पड़ता है। वह किसीके साथ रियायत नहीं करता। इसके चक्रके नीचे सबको पिसना पड़ता है। चाहे चक्रवर्ती हो या दर-दर ठोकर खानेवाला भिखारी सभीको कर्म महाराज मजा चखाते हैं। अतः एक समय भगवान् समन्तभद्र भी अपने कर्म-फलके अनुसार भस्म व्याधि नामक भयंकर रोगके चंगुलमें फँस

गये। देखिये, इतने बड़े तपस्वी उच्चकोटिके विद्वान भी कर्म-फल भोगनेसे नहीं बँच सके।, वे जो कुछ खाते थे सब जलकर खाक हो जाता था, फिर भूख की ज्वाला जलाने लगती थी। अर्थात् भोजन करनेके थोड़ी देर बाद वे क्षुधासे व्याकुल हो जाते वे कभी कभी अपने विचित्र रोगके सम्बन्धमे सोचा करते—मैं समग्र शास्त्रों का विद्वान हुआ, संसार भरमें जैन-धर्मके प्रचार करनेमे तत्पर हुआ, किन्तु, आश्चर्य है कि मैं अपने इस भयङ्कर रोगका इलाज भी न कर सका। एक उपाय है जिससे इस रोगसे छुटकारा मिल सकता है। यदि मैं अच्छे २ पौष्टिक उत्कृष्ट भोजन का उपयोग कर सकूं तो रोगसे मुक्ति हो सकती है, अन्यथा इससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। किन्तु, इन स्थानमें वैसा उत्तम भोजन मिलनेका नहीं। तब क्या हो अच्छा हो कि मैं जहां उत्तम भोजन मिलने का प्रबन्ध हो वहाँ जाऊँ ? इस प्रकार अपने मनमें विचार कर, आचार्य महोदय कांची नगरी छोड उत्तर प्रदेश की तरफ उत्तम २ भोजन प्राप्त करनेके लिये चल पड़े। वे कुछ दिनोंमें पुण्ड्र नामक नगरमें जा पहुंचे। उक्त नगरमें बौद्धोंका मठ था, उसमे सदावर्त्त दिया जाता था। आचार्य महोदय उत्तम भोजन पानेके विचारसे बौद्ध साधुका वेष बनाकर उक्त दानशालामे गये। किन्तु, वहाँ उनके रोगके शमन लायक भोजन नहीं मिला तब वे वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए इस प्रकार देश भ्रमण करते वे दशपुर-मन्दोसोर नामक स्थानमें जा पहुंचे। उक्त स्थान पर वैष्णव सम्प्रदायका मठ था। उक्त मठमें भागवत मतके साधु रहते थे। वहां साधु लोग खूब तर माल उड़ाया करते थे। आचार्य

महोदय बौद्ध-वेष छोड़ कर भागवत सम्प्रदायका वेष बना कर उक्त मठमें प्रविष्ट हो गये। यद्यपि इस स्थानमें उन्हे पहिले से अच्छा भोजन मिलता था किन्तु, ऐसा बढ़िया भोजन न मिलता था जिससे उनका रोग शांत हो। आचार्य वहाँ से चल पड़े। अनेक नगरमे भ्रमण करते वे बनारस नामक प्रसिद्ध नगरमें गये। पाठक गण! यद्यपि आचार्य महोदयका वहिरङ्ग वेष जैन मुनियोंके प्रतिकूल था तथापि उनके अन्तस्तलमें सम्यग्दर्शनका पवित्र भाव पूर्णरूपेण विद्यमान था। अतः जिसप्रकार कीचड़में पड कर मूल्यवान रत्न अपना अस्तित्व नहीं गँवाता ठीक उसी तरह हमारे आचार्य महोदय हो रहे थे। वे योगलिंगका वेष धार कर नगरमे भ्रमण करने लगे। उन दिनों बनारस नगरका अधिपति शिवकोटी नामक राजा था। वह, शिवका अनन्य भक्त था। उसने भक्ति-भावसे प्रेरित हो कर शिवका एक बड़ा मन्दिर बनवाया था जिसमें उत्तम २ व्यञ्जनों का भोग लगता था। जिस समय आचार्य महोदय उस मन्दिरमें पहुंचे उस समय शिवका भोग लगने जा रहा था। उत्तम २ भोजन की चीजें देखकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया यदि किसी तरह इस मन्दिरपर अपना अधिकार हो जाय तो रोग निवारण होने योग्य भोजनका सुयोग हाथ लगे। उसी समय शिवके पुजारियोंने भोग लगाकर उत्तम पदार्थ मण्डपमें बाहर लाकर रख दिये आचार्यने पुजारियोंसे कहा, "क्या आप लोगोंमे इतनी क्षमता नहीं है कि महाराजके भेजे हुए भोजन पदार्थ शिवजीको खिला दें?" पुजारियोंने विस्मययुक्त होकर आचार्यसे पूछा, 'नहीं, हम लोग तो ऐसा नहीं कर सकते ? क्या आप ये पदार्थ भगवान शङ्करको

खिला सकते हैं ? आचार्य महोदयने स्पष्टतः उत्तर दिया, "हाँ महाशयो ! मैं शिवजीको खिलानेको क्षमता रखता हूं।" पुजारियों के आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। उन्होंने आचार्यके विषयमें महाराजसे जाकर निवेदन किया, "महाराज ! आज शिवालयमें एक विचित्र योगो आया है। हम लोग जिस समय शंकरजीका भोग लगाकर ज्योंही सब सामान बाहर ले आये, उक्त योगो भोग लगाया हुआ पदार्थ देखकर बोल उठा—भला, देवताको भोग लगाने से क्या लाभ जब आप लोग अपने देवताको खिला नहीं सकते। जिस देवताके लिये इस प्रकारके उत्तम २ भोजन पदार्थ बन कर आते हैं, उन्हें देवताके स्थानपर दूसरे हड़प जाते हैं। यह अच्छी बात नहीं है। महाराज, उसने दावेके साथ कहा कि मैं देवताको भोजन खिला सकता हूं। उसने यहांतक कह दिया कि जिसके लिये इतना व्यय किया जाता है, उत्तम २ पदार्थ बनाया जाता है, उनके स्थानपर अन्य लोग मौज करते हैं इसे भक्तके पदार्थके साथ दुरुपयोग करनेके सिवाय क्या कहा जायगा ?" महाराजने पुजारियोंके मुँहसे आगत योगीके विषयमे चमत्कारपूर्ण बात सुनकर उनकी परीक्षाके लिए उत्तम २ भोजन पदार्थ लेकर उसी समय किया। योगीके पास जाकर उन्होंने प्रस्थान पूछा,"क्या आप वही व्यक्ति हैं जिसने हमारे पुजारियोंसे शिवको खिलानेकी बात कही है ? आचार्यने महा, "हां, महाराज मैं ही वह व्यक्ति हूं जो देवता को खिलानेका साहस रखता हूं। महाराजने चौंककर कहा, अच्छा, यह भोजनका सामान आपके सामने मौजूद है, आप शिवजीको भोजन कराइये तब मैं जानूं कि आपका कहना कहांतक सत्य है।

शिवके बदले स्वयं खा गये।

आचार्य महोदयने महाराज द्वारा लाये हुए भोजनके उत्तम २ पदार्थ मन्दिरके भीतर रखवा दिये। वहांसे पुजारी, नौकर सबके सब हटा दिए गये। महाराज भी मंदिरसे दूर एक स्थानपर योगीराजके चमत्कार पूर्ण कार्यका परिणाम देखनेके लिए प्रतीक्षा करने लगे।

आचार्य महोदय मंदिरमे चले गये। वे मंदिरमें निश्चिन्त बैठकर भोजनके उत्तम २ पदार्थ चट कर गये। वे कई दिनोंके भूखे थे, थोड़ी देरमें सबका सब खा गये। मंदिरसे निकलकर उन्होंने नोकरोंसे जूठा वर्तन निकालनेकी आज्ञा दी। महाराज योगीराजके चमत्कार पूर्ण इस कार्यसे आश्चर्य-सागरमे गोता खाने लगे। वे राजमहलमें लौट आये। रास्तेमे अनेक तर्क-वितर्क करनेपर भी वे बोती हुई आश्चर्य मई घटनाके रहस्योद्धारन करनेमें असमर्थ रहे। अब, आचार्य महोदयके लिये उत्तम २ भोजन करनेका अच्छा मौका हाथ आया। वे प्रति दिन शिवजीको खिलानेके नामपर स्वयं बढ़िया २ भोजनके पदार्थ खाने लगे। इस प्रकार छः महीनेमें वे रोगसे मुक्त हो गये।

भण्डा फोड़ कैसे हुआ।

एक दिन भोजनका समूचा सामान बच गया। उसे देखकर पुजारियोने कहा, क्या आज शिवजीने भोजन नहीं किया ? भोजनके बचे रहनेका क्या कारण है ? आचार्यने कहा, "महाराजके उत्तम २ भोजनसे प्रसन्न होकर भगवान शंकर तृप्त हो गए हैं।

किन्तु पुजारियोंके मनमें शंकाका भाव उदय हो गया उन्होंने महाराजके पास जाकर योगीराजकी कही हुई बातें कहीं। महाराजने पुजारियोंसे कहा, "अच्छी बात है, सबसे पहिले इस बातका पता लगाना चाहिये कि वह किवाड़ बन्दकर क्या करता है? इसके बाद, उससे इस सम्बन्धमें पूछा जायगा, अभी नहीं। एकदिन आचार्य महोदय कहीं बाहर गये हुये थे। पुजारियोंने उसी समय एक चालाक लड़केको शिवजीकी पिण्डीके आगे फूल पत्तियोंमें योगिराजकी करतूत देखनेके लिए छिपा रक्खा था। सर्वदाकी तरह उसदिन आचार्यदेवने भोजनका सामा मंदिरके भीतर रखवाकर किवाड बन्द कर दिया। वे डटकर भोजन करने लगे। भर पेट खा लेनेके बाद भी कुछ सामान बच गया तब आचार्यने किवाड़ खोलकर ज्यों ही मंदिरसे बाहर पैर रक्खा त्यों ही वे सामने ही महाराज तथा पुजारियोंको किसीकी प्रतीक्षामें खड़े पाते हैं। योगिराज तो समझ गये कि मेरा भंडाफोड हुआ। इसी बीचमें पुजारियोंने बचा हुआ भोजनका सामान देखकर आचार्यसे पूछा—योगिराज? क्या आज भी शिवजीने भोजन नहीं किया? क्या वे तृप्त हो गये हैं? आचार्यके कुछ कहनेके पहिले ही मन्दिरमें छिपा हुआ लडका सामने आ गया उसने कहा, "महाराज! मैंने अपनी आंखोंसे इन्हें भोजन करते देखा है। शिवजीने कहाँ भोजन किया है, येही महाशय स्वयं खाये हैं।" आपने बड़ी चालाकीसे अपना उल्लू सीधा किया है। महाराज! ये शिवजीके खिलानेके बदले धूर्तताका काम करते थे। इन्हे कौन योगी कहता है, ये तो धूर्तराज हैं।" लड़केकी भेद भरी बात सुनकर पुजारियोंने उनकी हांमें हां मिलाया उन्होंने महाराजसे

निवेदन किया, "प्रभो! मालूम होता है कि ये शिव-भक्त भी नहीं है, नहीं तो ये ऐसा गर्हित कार्य कैसे करते। अतः इनकी परीक्षा ली जाय। सबसे पहिले ये शिवजीके सामने हाथ जोड़ें तभी सत्या-सत्यका निर्णय हो जायगा। महाराजने योगीराजसे कहा, "अच्छा, जो हो गया सो हो गया। 'बीतो ताहि बिसारि दे आगेकी सुधि लेय' के अनुसार योगिराज! आप शिवजीको नमस्कार करें जिस से आपके धर्मका पता चल जाय। अब आचार्य बड़े असमंजसमें पड़े, वे करें तो क्या करें? कुछ सोचकर उन्होने निर्भीकतासे उत्तर दिया,—महाराज! मैं शिवजीको नमस्कार कर लूंगा मगर व मेरा नमस्कार स्वीकार करनेके योग्य नहीं है। इसका कारण यह है कि वे संसारी विकारोंसे युक्त हैं। उन्हे मोह, माया, ममता, ईर्षा, द्वेष, काम, मत्सर तथा क्रोध व्याप्त हैं। जैसे पृथ्वीको रक्षाका उत्तर-दायित्व एक साधारण मनुष्य नहीं ले सकता, वैसे ही मेरे परम पवित्र नमस्कारको संसारी मायासे युक्त देव नहीं सहन कर सकता मेरे पवित्र नमस्कारको केवल जैन-दिगम्बर मूर्ति ही स्वीकार कर सकती हैं जो संसारके अठारहों विकारोंसे परे हैं, जो परम पवित्र केवलज्ञानके समान प्रखर तेजके धारण कर्त्ता है जिनके ज्ञान-प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता है। यदि आप लोग दुराग्रह कर मुझे शिवकी मूर्त्तिके सामने नमस्कार करनेके लिये बाध्य करेंगे तो मैं आप लोगोंको चेतावनी देता हूं कि शिवकी मूर्त्ति फट जायेगी। महाराजने योगिराजकी बात सुनकर व्यङ्ग-विनोदमे कहा, "योगि-राज! आप क्यों चिन्तित हो रहे हैं, कुछ परवा नहीं है। शिवजी की मूर्त्ति बलासे फट पड़े मगर आपको नमस्कार करना पड़ेगा,

समझे न। आचार्यने गम्भीरमुद्रामें उत्तर दिया, तथास्तु, ऐसा ही हो, महाराज मैं कल अपनी शक्तिका पूर्णरूपेण परिचय दूंगा।" पहरेदार, तबतक, योगिराजको कारागारमें आराम करने दो देखना ये हजरत कहीं रफ्फू-चक्कर न हो जांय। ऐसी आज्ञा देकर महाराज चले गये। महाराजकी आज्ञासे आचार्य कारागारमें बन्द कर दिये गये। उनके चारों ओर सिपाहियोंका सख्त पहरा बैठा दिया गया।

जैन धर्मकी महिमा प्रकट हुई।

कारागारमें जाकर आचार्य महोदय चिन्ता-सागरमें डूबने लगे—वे अपने मनमें सोचने लगे कि मैंने बिना सोचे-समझे क्या कह दिया। यदि मेरे कथनानुसार शिवजीकी मूर्त्ति नहीं फटी तब मेरी क्या दशा होगी। मैंने क्रोधमें आकर असम्भव बातकी प्रतिज्ञा कर दी। मुझे अपने लिये चिन्ता नहीं है कि मेरे ऊपर कैसी बीतेगी? मुझे एक ही बातकी चिन्ता है कि मेरे प्यारे पवित्र जैन धर्म सबकी नजरोंमें नीचे गिर जायगा। मेरा सिर काट लिया जाय, मेरे शरीरकी चमड़ी उधेड़ ली जाय इसकी मुझे चिन्ता तनिक भी नहीं है। जिन भगवान्‌की मैंने बड़ाई की है उनके प्रति लोगोंमें अविश्वास, अश्रद्धा एवं अपमानका भाव फैल जायगा जो मेरे लिये असह्य है। किन्तु, अब पछतानेसे क्या होता है? जो कुछ होना था सो हो चुका और आगे जो कुछ होने वाला है वह कल ही पूरा हो जायगा। तब चिन्ता क्या करूं? इस प्रकार विचार कर आचार्यने जिन भगवानमें अपना ध्यान लगाया। वे पवित्र

भावसे भगवानकी स्तुति करने लगे। उस समय उनके हृदयमें नाम मात्रका विचार नहीं था। सच है भक्तोंके निर्मल हृदयकी सच्ची पुकार कहीं व्यर्थ नहीं जाती? वह सुन्दर फल लाती है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। आचार्यके निष्कपट हृदयकी पुकार व्यर्थ नहीं गई। उसी समय अम्बिका (शासन देवी) का आसन हिल गया। देवी, आचार्यके सामने उपस्थित होकर कहने लगी, आचार्य आप व्यर्थमें चिन्तित हो रहे हैं आपके समान जिन-भगवान्के अनन्य सेवकका एक बाल भी बांका नहीं होगा। आपकी बात, अवश्य ही सत्य सिद्ध होगी। आप 'स्वयंभुवाभूत हितेन भूतले' के पद्यांश लेकर चौवीस तीर्थंकरोंके स्तवनकी रचना कर डालिये। आप विश्वास रखिये, आपकी बात सत्य निकलेगी, शिवकी प्रतिमा अवश्य फट जायगी। इस प्रकार आचार्यको आश्वासन देकर देवी चली गयी। अब, आचार्य महोदयकी सारी चिन्ता मिट गयी। उन्होंने देवीके कथनानुसार उसी समय जिन स्तवनकी रचना कर दी जो आज कल स्वयं भू-स्तोत्रके नामसे प्रचलित है।

शिवकी मूर्ति फटी

प्रातःकाल होते ही महाराज अन्य लोगोंके साथ उपस्थित हो गये। उस समय, वहांपर दर्शकोंकी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। महाराजकी आज्ञासे आचार्य कारागारसे बाहर निकाले गये। उनके मुँह की प्रतिभा देखकर महाराजने अपने मनमें विचार किया कि देखो, योगीराज कितने प्रसन्न दीख रहे हैं। इन्हें चिन्ता तो छू तक नहीं गई है। मालूम होता है कि ये अपनी बात सिद्ध करेंगे। नहीं तो ये

प्रसन्न नहीं दीख पडते। परन्तु इनकी परीक्षा अवश्य होनी चाहिये इस प्रकार सोचकर इन्होंने आचार्यसे कहा, "योगिराज! अब आप नमस्कारकर अपनी कही हुई बात सत्य सिद्ध कीजिये। मैंने शिवजीकी पिण्डीको साकलसे बन्धवा दी है। महाराजकी आज्ञा सुनकर आचार्य चौबीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार वे तीर्थंकरोंकी स्तुति करते करते चन्द्रप्रभ भगवानकी स्तुति कहने लगे बस शिव मूर्ति फट पडी। आकाशमें चारों ओर जय जयकार शब्द होने लगा। उस समय महाराजसे लेकर समस्त उपस्थित दर्शक मण्डलीके लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। आचार्यके चमत्कार पूर्ण कार्य देखकर महाराजने हाथ जोड़कर श्रद्धासे कहा, "योगिराज, आपके चमत्कार पूर्ण अभूत पूर्व कार्यने हमे आश्चर्यमें डाल दिया है। किन्तु आप कौन हैं, कृपाकर अपना परिचय दीजिये। आपने शिव-भक्तका वेप धारण किया है, परन्तु आप शैव नहीं हैं, फिर आप किस धर्मके मानने वाले हैं।" आचार्यने महाराजकी बात सुनकर दो श्लोक पढकर सुनाये जो पाठकोंकी जानकारीके लिये यहां ज्योंके त्यों उद्धृत किये जाते हैं। आशा है कि पाठकगण इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

'कांच्यानग्नाटकोहं मल मीलन तनुर्लम्बुशे पाण्डु पिण्डः,
पुण्ड्रोण्ड्रे शाक्य भिक्षुर्दश पुर नगरे मृष्टभोजी परिव्राट्।
वाणारस्याम भूवं शशधर धवलः 'पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैन निर्ग्रन्थ वादी॥
पूर्व पाटलि पुत्र मध्य नगरे भेरी मया ताडिता'
पश्चान्मालव सिन्धु ढक्क विपये कांची पुरे वैदिशे।

प्राप्तोहं कर हाटकं वहु भटैर्विद्योत्कटैः सकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूल विक्रीडितम्" ॥

अर्थात्—"मैं कांचीमें नग्न दिगम्बर, होकर राजन ! वास किया ।
तनमें रोग हुआ जब मेरे, पुंड्र नगर-प्रस्थान किया ॥
बौद्ध साथ हो रहा वहांपर, फिर दशपुरको चला गया ।
उत्तम २ भोजन खाया, परिव्राजक धर वेश नया ॥
शैव साधु बन काशी नगरीमें, कुछ दिन तक वास किया ।
पर मैं स्याद्वादी जैनी हूं, निज रहस्य मैं खोल दिया ॥
यदि कोई होवे तो मेरे सन्मुख आ शास्त्रार्थ करे ।
डंकेकी चोटों पर कहता, मनकी इच्छा पूर्ण करे ॥

\+ \+ \+

"प्रथम पाटली पुत्र गया मैं वाद विवादाह्वान किया ।
पुनः मालवा, सिन्धु देशमें ओढ़ाका प्रस्थान किया ॥
कांचीपुरो विदिश देशोंमें जाकर सबको ललकारा ।
विद्वानोंने अबतक मुझसे शास्त्रार्थ नहिं स्वीकारा ॥
बड़े २ विद्वानोंसे है भरा नगर यह मैं आया ।
कर हाटक जिसको कहते हैं, चमत्कार निज दिखलाया ॥
सिंह समान भटकता रहता, है कोई शास्त्रार्थ करे ।
डंकेकी चोटोंपर कहता, मनोभिलाषा पूर्ण करे ॥"

इस प्रकार कहकर पूज्य आचार्यने शैव सम्प्रदायका वेष छोड़ कर जैन-मुनिका वेष ग्रहण कर लिया । आचार्यने अभिमानी पंडितोंको शास्त्रार्थमें हराकर जैन-धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ाई । उन्होंने अनेकान्त स्याद्वादके पराक्रमसे-अपने प्रिय धर्मकी महिमा बढ़ाकर

कुदेवके आगे अपना शीश नहीं झुकाया, वे अन्त तक अपने जिन धर्म पर अविचल रहकर उसकी धाक जमानेमें समर्थ हुये। श्री-समंतभद्र भविष्यके तीर्थंकर हैं। उन्होंने अधिकांश एकान्त वादियोंको शास्त्रार्थमें नीचा दिखाकर, सर्व साधारणके सामने जैन-धर्म की महानता सिद्ध कर दी। इस प्रकार उन्होंने सम्यग्ज्ञानकी अखण्ड-ज्योति हर जगह जगाई। जबसे राजा शिवकोटिने आचार्य द्वारा चमत्कार पूर्ण घटना देखी तभीसे उनके हृदयमें जैन-धर्मके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उनके मनके ऊपर, निर्मल बुद्धिने अपना अधिकार जमाया, जिससे उनका अन्तःकरण चारित्र मोहनी कर्मके नाश हो जानेसे वैराग्य-भावसे ओत-प्रोत हो गया। राजाने राज्य-शासनका भार छोड़ जैन-धर्मकी दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके अनन्तर उन्होंने गुरुके पास जाकर शास्त्रोंका गहरा अध्ययन किया। उन्होंने मनुष्योंको दिन-प्रति दिनकी क्षीण आयु देखकर, लोगोंके उपकारार्थ श्री लोहाचार्य द्वारा निर्मित विशाल आराधना ग्रन्थका, जिसमें चौरासी हजार श्लोक थे, संक्षिप्त रूपमें लिखकर महान् कार्य किया। आपके लिखे ग्रन्थमें सिर्फ साढ़े तीन हजार श्लोक हैं। वह पवित्र ग्रन्थ श्री समन्तभद्राचार्य तथा शिव-कोटी मुनि हमें सुख देने वाले हों। श्रीविद्यानन्दी गुरु महाराज भी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रके प्रदाता हैं। वे गजेन्द्रके मारनेवाले सिंहके समान हैं। श्री मल्लि भूपण मुनिराज समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता, अपूर्व विद्वान तथा श्रुत ज्ञानके भण्डार हैं। वे कृपा कर मोक्ष दें ऐसी प्रार्थना है।

ब्रह्मदत्त राजाको एक व्यंतर (रसोइया था) फलोंके लोभमें फसाकर समुद्रमें लेगया
मैं वही रसोइया हूं जिसपर आपने गरम खीर डाली थी और समुद्रमें फेंक दिया

श्री संजयन्त मुनिकी कथा।

(५)

पाठक, पढ़ लो श्री संजयन्त मुनि कैसे थे तप-मानी।
स्वर्ग-देवसे पूज्य हुए हैं, वे बन कर केवल-ज्ञानी॥
कठिन तपस्या करके ऐसे आत्म-ध्यानमें लीन रहे।
जैन-धर्म रूपी अगाध जलमें जैसे वह मीन बहे॥

सुमेरु पर्वतके पश्चिम दिशाके अन्दर गन्धमालिनी नामक देश है। उसकी राजधानीका नाम वीत शोकपुर है। उन दिनों उक्त नगरमें वैजयन्त नामक राजा राज्य करते थे। भव्य श्री नामकी उनकी रानी थी। राजाके दो पुत्र थे जिनका संजयन्त और जयन्त नाम था।

पिता तथा पुत्र तपस्वी बने।

एक दिन ऐसी घटना घटी जिससे राजा तथा उनके दोनों पुत्रके हृदयमें वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। घटना यों घटी:—
संयोगवश, राजा वैजयन्तके हाथीकी मृत्यु बिजलीके गिरनेसे हो गयी। जब राजाने अपने हाथीकी मृत्युका समाचार सुना, उसी समय उनके हृदयमें राज्य-वैभव-सुखसे अलग होकर तपस्या करने का भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर उनके ऊपर राज्य-भार सौंपनेका अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की। पिताकी बात सुनकर दोनो पुत्रोंने विनम्र शब्दोंमें कहा,—पिताजी हमें राज्य-शासन नहीं चाहिये। इसका कारण यह है कि हम नहीं

चाहते कि राज्यके सदृश उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य अपने सिरपर ले कर शान्तिपूर्ण रहकर तपस्या करनेके सत्कार्यसे वंचित हो जावें। सच तो यह है कि हम लोग भी आपके साथ चलकर मुनि होकर आत्म-कल्याण-साधना करेंगे। अतः पिताजी, आप राज्य-सदृश झंझटके कार्य नहीं ले सकनेके लिये हमें क्षमा प्रदान करें। हम आप के प्रस्तावको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं।" अपने प्रिय पुत्रोंको ऐसी लालसा देखकर राजाने उन्हें मुनि होनेकी आज्ञा दे दी। फिर वे कैसे राजा बने रहते जबकि सामने ही उनके दोनों पुत्रोंने वैराग्य धारण कर लिया। राजा वैजयन्तने, संजयन्तके पुत्रको राज भार देकर तपस्या करनेके लिये वनमें प्रस्थान कर दिया। राजा वैजयन्तने अपने उग्र तप द्वारा घातिया कर्मका नाशकर केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर ली। उनकी तपस्या बड़ी भीषण थी। वे कठिनसे कठिन दुःख सहते हुए अन्तमें केवल ज्ञानको प्राप्त हुए। उस समय स्वर्गके देवता आकर उनकी पूजा करने लगे। उग्र तपस्याके प्रभावसे उनका दिव्य रूप अलौकिक हो रहा था। अपने पूज्य पिताका अपूर्व रूप देखकर जयन्तने निदान किया कि अबतककी मेरी की हुई तपस्याके फल स्वरूप मुझे इनके (पिता) समान ही सुन्दर रूप तथा विभूति मिले। पाठकगण, इस प्रकार निदान करनेपर उनकी मनोकामना पूर्ण हुई। वह मरनेके बाद धरणेन्द्र हुये। प्रिय पाठकगण, एकका यह परिणाम हुआ, अब दूसरेके विषयमें गौरसे पढ़िये।

घोर तपस्या।

संजयन्त मुनि घोर तपस्या करने लगे, वे महीनों भर उपवास

रहने लगे। इस प्रकार वे भूख-प्यासकी परवा न कर कठिनसे कठिन शारीरिक-कष्ट सहर्ष सहन करने लगे, यद्यपि भीषण तपस्याके कारण, उनका शरीर एकदम दुबला-पतला हो चला, तथापि उन्होंने तपस्यासे मुँह नहीं मोड़ा। अब उनकी तपस्या और भी कठिन हो गयी। पहिले तो उपवासतक ही उनकी तपस्या थी। अब वे सूरजकी तरफ अपना मुँहकर तपस्या करने लगे। उन्हे गर्मी, शीत, वर्षाका तनिक दुःख नहीं था। वे सब ऋतुके कष्ट सहते हुए वृक्षके नीचे अपनी अखण्ड योग-साधनामें लीन रहने लगे। वनके जीव उन्हें सताते थे परन्तु, वे उनकी क्यों परवा करते। वे तो निश्चिन्त होकर आत्म-ध्यानमें संलग्न हो रहे थे। भला, उन्हें संसारकी विघ्न-बाधाएं क्यों विचलित करतीं ?

मुनिकी आत्म परीक्षा।

एक दिन, जिस स्थानपर मुनिराज अपनी कठिन तपस्यामें मग्न थे, उसी समय उनके ऊपर आकाशमें विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधरका विमान पहुंचा। उसका विमान रुक गया। विमान रुक जानेसे विद्याधरके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उसने नीचे देखा तो तपस्वी संजयन्त मुनिको ही विमान रुकनेका कारण समझा। वह क्रोधसे आग-बबूला हो गया। उसने मुनिराजको अनेकों कष्ट दिये किन्तु, धीर वीर मुनिराज, शारीरिक कष्टोंसे क्यों घबड़ाते ? कच्चे तपस्वी तो थे नहीं वरन् वे निश्चल भावसे ध्यानस्थ रहे। जब उक्त विद्याधरने देखा कि मुनिराज उसके उपद्रव करनेपर भी ज्योंके त्यों तपस्यामें लीन हैं तब उसके क्रोधका पारा एकदम ऊपर

चढ़ गया। पाठक! भला कहीं प्रवलवायुके झोंकेसे सुमेरु गिरि पर्वतका कुछ विगड़ सकता है? इस प्रकार क्रोधित होकर उस अधम विद्याधरने मुनिराजको अपने विद्या वलसे उठाकर भारतके पूर्व दिशाकी ओर वहने वाली सिंहवती नामक भयङ्कर नदीमें डाल दिया। नदी इतनी गहरी तथा भयङ्कर थी कि जिसमें पांच वड़ी २ नदियां आकर मिली थीं। मुनिराजके ऊपर और आपत्ति आयी। वहाँके लोगोंने मुनिराजको राक्षस समझकर उनके ऊपर पत्थर वर्षाना शुरू किया किन्तु इतने असह्य कष्टके होनेपर भी वे हिमालयके समान अचल वने रहे। सच है, सच्चे तपस्वियोंके आत्म-बलके आगे ससारके असह्य-कष्ट अपना कुछ भी असर पैदा नहीं कर सकते। सच्चे तपस्वी, क्या संसारी विघ्न वाधाओंसे घवड़ा जाते हैं? नहीं, वे परीक्षा रूपी अग्निमें वारम्वार तपाये जानेपर खरा सोना सावित होकर अपनी त्याग-तपस्याका ज्वलन्त उदाहरण छोड़ जाते हैं। उनके विषयमें यह उक्ति कितनी ठीक है।

शांतिचित्तसे तपकर, मिथ्या राग द्वेषसे रहकर दूर।
निज साधनका परिचय देकर, परिग्रहका कर देते चूर॥
निन्दा-स्तुति सम सुख या दुख है, महल वना हो या श्मशान।
निर्ग्रन्थी हो रत्न तृणोंमें, रखते अपना भाव समान॥
प्राणि मात्रपर समदृशी वन, प्रेम भाव दरशाते हैं—
वेही सच्चे मुनि हैं जगमें, वही पूज्य वन जाते हैं॥

पाठकगण! संजयन्त मुनिराज सच्चे तपस्वी थे, उन्होंने अधम-विद्याधर द्वारा दिये हुए समस्त दुःखोंको धीरतासे सहन कर अपनी अनुपमेय धीरता, सहिष्णुता एवं त्याग तपस्याका परिचय

दिया। उनके जितने घातिया कर्म थे नष्ट हो गये, उन्होंने केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर ली। इसके बाद अपने अघातिया कर्मके नाश होते ही संजयन्त मुनि मोक्ष-धामके वासी हुए। एक दिन मुनिराज के छोटे भाई धरणेन्द्र अन्य देवोंके साथ उनके दर्शनार्थ आये। अपने भाईके शरीरकी दुर्दशा देखकर धरणेन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो गये। वे समझ गये कि नगर वालोंने मेरे भाईकी ऐसी बुरी हालत कर दी है। उन्होंने समस्त नगर निवासियोंको 'नाग पाशमें बांध कर गिरा दिया। नगर निवासी त्राहि २ कर कहने लगे, "प्रभो, हम निर्दोष हैं, हमें कष्ट क्यों दे रहे हैं, हमने आपके भाईके साथ कुछ भी दुर्व्यवहार नहीं किया है। पापी विद्युद्‌दंष्ट्र नामक विद्याधरने दुष्टता की है। हम नाहक मारे जाते हैं। नाथ, हमारी रक्षा कीजिए, और मेरे अपराध क्षमा कीजिये, हे दयालु, हम निरपराध हैं। भगवन्! ऐसा न करें। जिसने आपके भाईके ऊपर जुल्म-सितम ढाया है आप उसे छोड़ हम निर्दोषियोंको क्यों सता रहे हैं? देव! "खेत खाय गदहा और मार खाय जुलहा" की उक्तियां चरितार्थ हो रहीं हैं। नगर-निवासियोंका कातर क्रन्दन सुनकर धरणेन्द्रने उन्हें मुक्त कर दिया। किन्तु उनका क्रोध अभी शमन नहीं हुआ था। धरणेन्द्रने उस विद्याधरको पकड़कर नाग-पाशमें कसकर बांध दिया। विद्याधरके ऊपर बड़ी मार पड़ी। वह त्राहि २ चिल्लाने लगा। धरणेन्द्र चाहते थे कि उसे पीटकर समुद्रमें डाल दें— जिस प्रकार उसने उनके भाईके साथ दुर्व्यवहार किया था। इसी बीचमें दिवाकर नामक एक देवने दयासे प्रेरित होकर धरणेन्द्रसे निवेदन किया, आप इस निर्दोषको क्यों सता रहे हैं? क्या आप

नहीं जानते कि यह अपने भाईसे, अपने चार-जन्मकी शत्रुताका बदला ले रहा है। इसमें इसका अपराध ही क्या है? धरणेन्द्रने कहा, आप वह कथा कहिए जिसके कारण इसके हृदयमे 'बदलेकी दुर्भावना' अबतक अपना काम कर रही है।

दिवाकर देवने कहना शुरू किया

इसी भारतवर्षके सिंहपुर नामक एक नगरमें राजा सिंहसेन राज्य करते थे। उनकी बुद्धि प्रखर थी। वे राजनीतिक-मामलोंमे अच्छी जानकारी रखते थे। रामदत्ता नामक उनकी रानी थी, वह भी अपने पतिके समान ही सरल स्वभाव वाली चालाक स्त्री थी। राजा सिंहसेनके दरबारमें श्रीभूति नामक धूर्तराज मंत्री था। उसका स्वभाव कुटिलतासे भरा हुआ था; दूसरोंको ठगना ही उसका प्रधान पेशा था। एक दिनकी बात है कि पद्मखण्डपुरनिवासी समुद्रदत्त नामक एक सेठ-पुत्रने धूर्त शिरोमणि श्रीभूतिके पास जाकर, विनम्र शब्दोंमें निवेदन किया, "दीनबन्धु, मैं वाणिज्य-व्यवसाय कार्य्य करनेके विचारसे विदेश जा रहा हूं। मेरे पास ये पांच रत्न हैं, मैं आपके पास अमानतके तौर पर रखना चाहता हूं, कारण यह है कि मेरे ऊपर न जानें कब कौन दुःख आवे, इसलिये, आवश्यकता पड़ने पर मैं अपनी चीज़ आपके पाससे ले जाऊँगा। इस प्रकार निवेदन-कर शेठ-पुत्रने मंत्रीके पास रत्न रख कर विदेश यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। मंत्री तो दूसरोंकी अमानतमें खियानत करने का आदी था। उसने प्रसन्नता पूर्वक पांचो रत्न अमानतकी तौर पर अपने पास रख लिये। कुछ वर्षोंके बाद, विदेशसे बहुत धनोपा-

र्जन कर समुद्रदत्तने अपनी जन्मभूमिके लिये प्रस्थान किया। वह एक जहाजपर कमाया हुआ धन भरकर चला। किन्तु दुर्भाग्यने समुद्रदत्तका जहाज किनारे पर आकर फट गया। जहाजके फटने से उसका समूचा माल विकराल समुद्रके अन्तस्तलमें चला गया। संयोगसे, समुद्रदत्तकी जान बच गयी। वह अपना शरीर लेकर घर आया। दूसरे दिन आफतका मारा वह श्रीभूतिके पास जाकर अपनी अमानतकी चीज मांगने लगा, इसपर धूर्त मंत्री बिगड़ उठा। मंत्रीने कहा, "अरे! झूठे! कैसे रत्न? मालूम होता है कि जहाज डूबनेसे तू पागल हो रहा है! यहांसे चले जाओ।" मंत्रीके पास कुछ लोग बैठे थे, उसने उनसे कहा, "महाशयो! देखिये, मेरी बात सच हुई या नहीं? क्या मैंने आप लोगोंसे नहीं कहा था कि यहां पर कोई गरीब आदमी पागल बनकर झूठा ही रत्न मांगनेके नामपर झगड़ा मोल लेगा। आपही सोचिये, इस दर-दर भीख मांगने वालेके पास रत्न कहांसे आये? क्या किसीने कभी इस भिखमंगेके पास रत्न देखे थे? यह झूठा इल्जाम लगाता है!" इस प्रकार कहकर उसने समुद्रदत्तको अपने आदमियोंसे निकाल देनेकी आज्ञा दी। बेचारा समुद्रदत्त बेरहमी और बेदर्दीसे निकाल दिया गया। अब उसके लिये कहीं भी ठिकाना नहीं था। एक तो वह विपत्तियोंका मारा था, उसकी सारी सम्पत्ति समुद्रके गर्भमें चली गयी थी। दूसरे, इस धूर्तराज मंत्रीने उसकी आशा पर पानी फेर दिया। उसकी आशा रूपी टिमटिमाता चिराग भी गुल कर दिया गया। वह करे तो क्या करे? किससे जाकर अपनी दर्द-भरी कथा सुनावे। अपने भविष्यके समयके लिये ही उसने मंत्रीके पास अपने रत्न अमानतके तौरपर जमा

किये थे, परन्तु वह धूर्त उसे रत्न कहां देगा उल्टे पागल बनाकर उसने एक दुखी आत्माको अपने घरसे निकाल बाहर किया ऐसे ही समय पर कविकी उक्ति कैसी ठीक लगती है, वह यों है—

'जुल्मकी हद हो गयी, जालिमने कैसा दुख दिया।
गुड़ समझकर खा लिया था वह धतूरा हो गया॥

दैवोपि दुर्बल घातकः, की उक्ति ठीक जँचती है। समुद्रदत्त क्या करता, उसके सिरपर वज्रपात हो गया। उस समय उसके चारों ओर विपत्तियोंके बादल घिर आये थे। उसके अन्तस्तलमें अपने रत्न नहीं मिलनेका शोक छा गया। वह, उसके शोकमे पागलसा हो गया। अब वह समूचे नगरमें, जोर २ से चिल्लाने लगा—धूर्त मंत्रीने मेरे पांच रत्न रोक लिये हैं वह नहीं देता है। इस प्रकारको टेर वह लगाता। सड़क, गली, बाजार, राजमहल तक समुद्रदत्तने अपनी पुकार मचायी मगर किसीने उसकी दर्द भरी दास्तान नहीं सुनी। सब उसे पागल समझकर दुतकार देते थे। अन्तमें लाचार होकर उसने राजमहलके पीछे एक वृक्षपर चढ़कर यही आवाज लगायी। इस प्रकार वह प्रति दिन रात्रिके पिछले पहर उसी पेड़पर चढ़कर अपनी पुकार लगाता। यद्यपि रानी उसकी पुकार प्रति दिन सुनती पर उसे पागल समझकर उसकी बातपर ध्यान नहीं देती थी। किन्तु, एक ही समयमे प्रतिदिन एक ही बात सुनकर उसके हृदयमें सन्देह उत्पन्न हुआ कि बात क्या है? रानी अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगी कि लोग उसे पागल कहते हैं मगर वह पागल नहीं है। क्या यह पागल का प्रलाप है? इस प्रकार सोचकर रानीने महाराजसे निवेदन

किया, "प्रभो ! रात्रिके पिछले पहर मेरे राज भवनके पीछे एक आदमी एक ही समयमें एक बात प्रति रात्रि चिल्लाता है। लोग उसे पागल कहते हैं। मगर, महाराज ! वह पागल नहीं है ? क्या पागल प्रति दिन एक ही बात एक ही समयमें कहता है ? मुझे सशय हो रहा है कि कहीं उसके प्रति अन्याय तो नहीं हुआ है ? महाराज ! वह सताया हुआ है, आप उससे पूछकर पता लगाइये कि क्या बात है ? नाथ ! कहीं ऐसा न हो कि पागलपनके नामपर कोई बेगुनाह बेकस सताया जाय।" रानीकी बात सुनकर महाराजने कहा,—"मैं अभी पता लगाता हूं।" इस प्रकार कहकर उन्होंने समुद्रदत्तको अपने पास बुलाकर उसकी पुकारका कारण पूछा। समुद्रदत्तने आप बीती कह सुनायी। उसकी बात सुनकर महाराज सोचने लगे कि किस प्रकार धूर्त मंत्रीके चंगुलसे बेगुनाह समुद्रदत्तके रत्न निकाले जांय। रानीने कहा, "महाराज, आप निश्चिन्त रहें मैं तुरत ही मंत्रीसे इसके रत्न निकाल लेती हूं।" महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए दूसरे दिन रानीने मंत्री श्री भूतिको बुलाकर कहा, "मंत्रीवर ! मैं सुनती हूं कि आप सतरंजके प्रसिद्ध खिलाड़ी हैं। अत: आज आप मेरे साथ सतरंज खेलकर अपनी कला दिखलाइये।" इतनेमें रानीके इशारेसे दासी सतरंजके पासे ले आयी। इधर मंत्री डर गया, उसने कांपते हुए कहा, "महारानी ! भला, मैं आपके साथ सतरंज खेलनेकी धृष्टता कैसे करूंगा ? यदि महाराज सुनेंगे तो क्या कहेंगे रानीने कहा, "मन्त्रीवर, आप चिन्ता न करें। मैंने महाराजसे आज्ञा ले रखी है, इसमें डरने की क्या बात है ? आप बड़े हैं भी केवल मनोरंजनवश ही खेलिये। इस प्रकार रानीके आश्वासन

देनेपर मन्त्रीके जीमें जी आया। वह सतरंज खेलनेपर तयार हो गया। रानीका उद्देश्य था कि किसी प्रकार मन्त्रीको खेलमें अटकाये रखें और अपना मतलब सिद्ध कर लें। उसने मन्त्रीको बातों में भुलाकर उसके घरकी सब बातें ज्ञात कर लीं। इसके बाद उसने धीरेसे अपनी दासीको इशारा किया। वह तो पहिलेसे ही सिखा-पढ़ाकर तैयार की गयी थी। दासी श्री भूतिके घर जाकर उसकी स्त्रीसे बोली:-तुम्हारे पति मंत्रीने मुझे भेजकर पाँच रत्न मगवाये हैं। वे विपत्तिमें फंस गये हैं। मुझे वे रत्न जल्दी दो। मंत्रीकी स्त्री कोई साधारण स्त्री नहीं थी। वह ताड़ गयी, उसने फटकारकर कहा, "चल हट यहांसे, मेरे पास किसने रत्न रखे हैं—जा उनसे कह देना कि वे ही आकर अपने रखे हुए रत्न ले जांय। रानी दासीके मुंहसे समाचार सुनकर दूसरी युक्ति काममें लायी। उसने हार-जीतकी बाजी रखकर खेलनेका प्रस्ताव किया। पहिले मंत्री हिचकिचाया फिर उसने अपने मनमें विचार किया कि रानीके साथ खेलकर काफी धन प्राप्त करूंगा। इस प्रकार लोभमें फँस उसने अपनी अंगुठी बाजीपर लगा दी। रानीने मंत्रीकी बेशकीमती अंगुठी जीत कर दासीको देकर मन्त्रीके घर पुनः भेजा। दासी अंगूठी लेकर उसके घर जा पहुंची। उसने अंगुठी देकर कहा, "देखो! तुमने मुझे पहिले रत्न नहीं दिये थे जिसके कारण तुम्हारे पतिको कितना कष्ट सहन करना पड़ा है। तुम्हारे पतिने मुझे अंगूठी देकर कहा है, यदि तुम्हें मेरी जान प्यारी है तो रत्न दे देना, अगर रत्न प्यारा है तब कोई बात नहीं।" मन्त्रीकी स्त्री इस बार अंगूठी देखकर समझ गयी कि सचमुचमें उसके पतिने रत्न मांगे हैं। दासीका दाव

ला गया। उसने दासीको पांचों रत्न दे दिये। दासी रत्न पाकर प्रसन्नताके मारे फूली नहीं समायी। वह दौड़ी २ रानीके पास आई उसके हाथमें पांचों रत्न रख दिये। उधर खेल समाप्त हो गया। रानीने महाराजके पास पांचों रत्न भेज दिये। महाराज रत्न देख कर रानीकी बुद्धिकी तारीफ करने लगे। महाराजकी आज्ञासे समुद्रदत्त राज-सभामें बुलाया गया। समुद्रदत्तको आज्ञा दी गयी कि वह रत्नोंकी राशिमेंसे अपने रत्न ढूंढ़ निकाले। उसने समस्त रत्नोंमेंसे अपने पांचों रत्न पहचान कर निकाल लिये महाराजसे बोला दयानिधे! येही पांचों रत्न मेरे हैं जिन्हें मंत्रीने रोक रखे थे।" सच है अपनी चीज सब कोई पहचान लेता है। महाराजने मंत्री श्री भूतिको बुलाया, उसे देखकर महाराजका हृदय क्रोधसे जलने लगा। उन्होंने दुष्ट मंत्रीके सामने पांचो रत्न रखकर कड़ककर कहा, "दुष्ट मंत्री, क्या यह (समुद्रदत्त) पागल है? तुमने इसे पागल बनाकर रत्न हड़प लिया था। यदि रानीकी बुद्धिमानीसे ये रत्न तुम्हारे घरसे नहीं आते तो यह बेगुनाह बेमौत ही मर जाता दुष्ट, इसका कलङ्क किसके सिरपर लगता। तुमने इतने बड़े ऊंचे पदपर रहकर, कितनी ज्यादती की है, एक निर्दोश गरीबको लूट कर अपने ऊंचे पदका कितना अपमान किया है। न जाने तुम्हारे अन्यायसे अन्य कितनी बेगुनाह प्रजा, सताई गई होगी। इस प्रकार कहकर महाराजने उपस्थित सभासदोंसे पूछा, सभासदो, इस दुष्ट मंत्रीको क्या सजा दी जाय जिससे भविष्यमें कोई कर्मचारी प्रजाके साथ अन्याय करनेका दुस्साहस न कर सके। अतः इसके दुष्कर्मके अनुसार ही इसे कड़ीसे कड़ी सजा दी जानी

मृत्युका समाचार सुन क्रोधसे अपने मंत्रबल द्वारा समस्त सर्पोंको बुलाकर अग्नि-कुण्डमें पैठकर चले जानेकी आज्ञा दी। श्री भूतिके जीव रूपी सर्पके अतिरिक्त समस्त सर्प अग्नि-कुण्डमें प्रवेश कर चले गये। अब श्री भूति-रूपी सर्प बाकी बच गया। मंत्रीने उससे कहा, "यातो महाराजका शरीर विप रहित कर दो या अग्निकुण्ड-में प्रवेश करो, दोनोंमें एक बात स्वीकार कर लो। वह (सर्प) बड़ा क्रोधी था उसने महाराजके मृत शरीरसे विप वापस लेनेके बजाय अग्नि-कुण्डमें जाना स्वीकार किया। किन्तु, वह उसमें प्रवेश करते ही जलकर खाक हो गया। सर्प भी मरनेके बाद उसी वनमें मुर्गा हुआ जहां महाराज हाथी हुए थे। यह निश्चय है कि पापी जब मरते हैं तब उनका जन्म खराब योनिमें होता है। कर्मका फल तो भोगना ही पड़ता है। यह कब सम्भव है कि बुरे कर्मका परिणाम अच्छा हो। उधर सिंहसेनकी रानीने पति-वियोगमें दुखी होकर संसारके भोग-जीवनसे ऊबकर वैराग्य भाव धारण कर लिया। वह संसारकी क्षण-भंगुरतासे शिक्षा ग्रहण कर वनमें श्री आर्यिकाके पास जाकर साधुनी हो गयी। इधर महाराजके पुत्र सिंहचन्द्रके हृदयमें भी वैराग्य-भावके उदय होनेके कारण अपने छोटे भाई पूर्ण चन्द्रको राजा बनाकर उसने सुव्रत महामुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली वे घोरतासे कठिन तपस्यामें लीन हो रहे थे। उन्होंने अनेकों विपत्तियां सहकर भी अपने मनपर नियन्त्रण किया, फिर इन्द्रियों का निग्रह किया, अन्तमें उन्होंने मनः पर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया। कुछ दिनोंके बाद उनकी माताने उनके पास आ नमस्कार कर कहा महामुनि! आपको पैदाकर आज मैं धन्य २ हो गई। आज मैं

आपकी मां होनेका गौरव प्राप्त कर कृतार्थ हो गयी। परन्तु आपके अनुज पूर्णचन्द्र आत्म-कल्याणके पवित्र मार्गमें कब अग्रसर होंगे? अपनी आदरमयी माताको सामने देखकर सिंहचन्द्र मुनिका गला भर गया वे गद्गद् होकर बोले, "माता, सुनो मैं तुमसे संसारकी विचित्रताकी एक घटना सुनाता हूं जिसे सुनकर माँ तुम चौंक उठोगी, चीख जाओगी। माता, हमारे पिताकी मृत्यु साँपके काटने से हुई थी। वे मरनेके बाद सल्लकी बनमें हाथी हुए। एक दिन वे मुझे मारनेके लिये दौड़ पड़े थे। मैंने पिताके जीव हाथीको समझाया, "गजराज! क्या आप भूल गये। आप अपने पूर्व जन्ममें मेरे पिता थे, मैं आपका वही प्यारा पुत्र हूं। हाय! कितने आश्चर्यकी बात है कि आप स्वयम् पिता होकर अपने प्रिय-पुत्रको मारनेके लिये दौड़ पड़े हैं। मेरे इस प्रकार स्मरण दिलाने पर गजराज चौंक गया। अपने पूर्वजन्मकी स्मृति यादकर उसकी आँखोंसे आँसुकी धारा बहने लगी। वह मूर्तिके समान खड़ा रहा। मैंने उसे जिन धर्मका उपदेश दे पंचाणुव्रत दिये। इसके बाद मेरे पिताके जीव हाथीने प्रासुक भोजन-जल ग्रहणकर व्रतकी पूर्ति करने लगा। एक दिन वह पानी पीनेके लिये नदी तीर गया। किन्तु वह कीचड़में फंस गया। उसने कीचड़से निकलने की लाख कोशिश की मगर वह न निकल सका। तब उसने कीचड़में समाधि-मरणकी प्रतिज्ञा की। उसी समय पूर्व जन्मका वैरी श्री मूर्तिका जीव मुर्गा उसके शरीर पर बैठकर उसके जीते जी मांस खाने लगा। यद्यपि हाथीको शरीरमें मुर्गाके मांस खानेसे घोर वेदन होती थी किन्तु, उसने असह्य वेदनाकी रञ्च मात्र भी परवा नहीं की। वह पंच

नमस्कार मन्त्रका स्वाध्याय करने लगा। काल स्वरूप हाथी शान्ति रूपसे मरकर सहस्रार स्वर्गका देव हुआ। धर्म भावनामे ही कल्याण का मार्ग सन्निहित है। वह मुर्गा मरनेके वाद चौथे नरकका वासी हुआ, वहां आराम, शाँतिका नाम कहाँ, दुःखका घोर समुद्र है जिसमे पापी अपने पापका फल भोगते हैं। हाथीके दाँत और मस्तक का मणि भीलके हाथ लगा। उसने उक्त चीज धनमित्र सेठके हाथ वेचकर धन प्राप्त किया। धनमित्रने सर्वश्रेष्ठ चीज समझकर राजा पूर्णचन्द्रको भेंटमें दे दी। वह अमूल्य चीज देखकर फूला नहीं समाया। धनमित्रको खूब धन मिला। उसने हाथी दाँतसे पलंग वनवाया और गजमुक्तासे रानीके गलेका सुन्दर हार। इस समय राजा पूर्णचन्द्र विषय-भोगमें फंसकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संसारमे जीवोंके दुःख भोगनेका यही कारण है। जिसे ज्ञानी जन ही अपने अनुभवसे जानते हैं। यह अन्य जनके लिये संभव नहीं है। माता, यदि तुम उपकार करना चाहो तो कर सकती हो। भोग-विलासमे फंसे हुये अपने प्रिय पुत्रके अनमोल जीवनकी रक्षा कर सकती हो। कल्याणी मां जाओ, भाई पूर्णचन्द्रको पिताकी सम्पूर्ण कहानी सुनाकर यदि उसे कल्याणके मार्गमें ला सको तो कितना लाभ हो। अपने पुत्र मुनिराजकी वात सुनकर माता राजा पूर्णचन्द्रके राज-भवनमे जा पहुंची। अपनी माताको राजमहलमें देख पूर्णचन्द्र आश्चर्यसे उठ खड़े हुए। माताको ऊँचा आसन देकर उन्होंने विनीत शब्दोंमे कहा, "हे माता, तुमने इस पवित्र वेषमे भी अपने पुत्रका स्मरण कर रक्खा है। मुझे नहीं भूल सकी। तुम्हारे पवित्र चरणोंसे यह घर आज पवित्र हुआ। कहो, पुत्रके ऊपर मां की

कौन सो आज्ञा है।" आर्यिकाने शांत पूर्ण भावोंमें कहा, "प्रिय पुत्र! आज मैं तुमसे एक आवश्यक वात कहने आई हूं, ध्यानसे सुनोः—पुत्र, उस घटनाको वीते वर्षों गुजर गये, तुम्हें याद होगा कि तुम्हारे आदरणीय पिताको मृत्यु सांपके काटनेसे हुई थी। तुम्हारे पिता मरकर हाथी हुए और वह दुष्ट सांप मुर्गा हुआ। एक दिन, हाथोने पानी पीनेके लिए नदीमें प्रवेश किया, दुर्भाग्यसे वह कीचड़में फंस गया। उस मुर्गेने हाथीको जीते ही मास नोच कर मार डाला। उस हाथीके दांत तथा मुक्ता भीलके हाथ लगा उसने एक सेठके हाथ वेंच दिया। सेठके हाथसे तुमने भेंट स्वरूप पाया। आज उसी हाथी दांतका पलङ्ग तुम्हारे राज भवनमें क्रीड़ा-का स्थल वना हुआ है और मुक्ता तुम्हारी रानीके गलेका सुन्दर हार। पुत्र, यही तो संसारकी विचित्रता है, आगे तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है तुम स्वयं निर्धारित कर लो।" माताके मुंहसे पूज्य पिताके जीवनकी ऐसी दुर्दशा देखकर राजा पूर्णचन्द्रकी आँखोंसे आंसूकी धारा वह चली। वे फूट २ रोने लगे। उनका अन्तस्थल पितृ-शोकके वियोगमें शोकसे व्याप्त हो गया उसी प्रकार जैसे पर्वतमें अग्नि लगनेसे गर्म हो जाता है। राजाके इस प्रकार करुण-क्रन्दन करते ही उनकी रानी हाहाकार करने लगी। इसके वाद उन्होंने पलंगके पाये, मुक्ताहार, चन्दनादिसे जलाकर खाक कर दिया। इसमें कितनी सचाई भरी हुई है कि मोहके वशीभूत होकर मनुष्य क्या २ नहीं कर गुजरता? मोहका ऐसा अमोघ चक्र होता ही है जिसके नीचे वड़ेसे वड़े सिद्ध, तपस्वी, योगी एवम् मुनिराज फँस जाते हैं तव वेचारे राजा पूर्णचन्द्र किस खेतकी मूली? थे जो

बच सकें। परन्तु, वे भाग्यवानके साथ ही बुद्धिमान थे जिन्होंने तुरन्त ही चेतकर आत्म कल्याणका मार्ग ग्रहण कर श्रावक धर्मके अनुसार अपना जीवन व्यतीत किया। फल स्वरूप वे मरकर महा-शुक्ल नामक स्वर्गके देव हुए। उनकी माता भी कठिन तपस्याकर उसी स्वर्गमे जाकर देव हुई। संसारमे जिसने जन्म धारण किया उसकी मृत्यु निश्चित है। कुछ दिनोंके बाद मनः पर्ययज्ञानधारी महामुनि सिंहचन्द्र तपस्या करके स्वर्ग सिधारे। वे ग्रैवेएकमें देव हुए। पाठक गण! उक्त देवने कहानीका सिलसिला जारी रक्खा उसने कहना शुरू किया:—इस भारतवर्षके सूर्याभपुर नामक नगरमें राजा सुरावर्त राज्य करते थे। उनको यशोधरा नामक पत्नी थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी, तथा सती-साध्वीके साथ सरल-स्वभाव वाली थी। विदुषी यशोधरा मुक्तहस्त होकर दान देती, जिन भग-वानकी पूजा श्रद्धा-भक्तिसे किया करती थी। इस प्रकार वह सर्वदा व्रतादिक कार्यों द्वारा पवित्र जीवन व्यतीत करती थी। कुछ दिनोंके बाद उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम रश्मिवेग रक्खा गया। वह सिद्धसेनके जीवके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। एक दिन राजा सुराव्रतने राज्य-शासनसे मुंह मोड़कर अपने पुत्र रश्मिवेगको राजा बनाकर मुनिवेष धारण कर लिया। यद्यपि रश्मिवेग राजगद्दीपर बैठ कर शासन-कार्य करने लगे किन्तु उनके हृदयसे धार्मिक-भाव अभी दूर नहीं हुआ था। एक दिनकी बात है कि धर्मप्राण रश्मिवेग सिद्ध कूट जिन मन्दिरके दर्शनार्थ चले गये। वहांपर हरिचन्द्र मुनिके धर्मोपदेश सुनकर उनके हृदयमें वैराग्यका भाव उत्पन्न हो गया। उसी समय ससारके ऐश्वर्य-भोगोंसे उन्हे घृणा हो गयी। बस फिर

क्या था, उस समय उन्होंने उपरोक्त मुनिराजसे दीक्षा ले ली। संयोगसे वे एक दिन पर्वतकी कंदरामे कायोत्सर्ग धारण किए हुए थे, इसी बीचमें श्रीभूतिके जीवने नरकसे आकर भयंकर अजगर की योनिमें जन्म धारण किया था, उसने तपस्या करते हुये रश्मि-वेग मुनिका काट खाया। मुनिराज तो अपने अटूट ध्यानमें लीन थे, उन्हें क्या परवा थी। अन्तमें उनके सारे शरीरमें विष व्याप्त हो गया वे मरकर कापिष्ट स्वर्गमें गये। वहापर वे आदित्य प्रभ नामक महार्द्धिक देव हुए। वहां रहकर उनका समय भगवानकी आराध-नामें व्यतीत होता था। अजगर भी मरकर चौथे नरकमें गया वहां घोर दुःख सहने लगा। वहांके नारकियोंने तलवारसे टुकड़े २ कर दिये, खोलती कड़ाहीमें जलाया, कोल्हूमें पेला, गर्म लोहेसे उसे जलाया, वहां नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़े।

वह देव कहता ही गया:—

इसी देशमें चक्रपुर नामक एक नगरमें चक्रयुध राजा थे, उनकी रानीका नाम था चित्रादेवी। उसके वज्रायुध नामक पुत्र था। सिंह-सेनका जीव ही वज्रायुध हुआ था। कुछ वर्षोंके बाद राजा चक्रायुधने अपने पुत्र वज्रायुधको राजा बनाकर जिन-धर्मकी दिक्षा ले ली। वे नीतिसे प्रजाके ऊपर शासन रखते थे। इस प्रकार भोग विलास पूर्ण जीवनसे ऊबकर उन्होंने अपने पिताके पास जाकर मुनिवेष धारण कर लिया। एक दिन वज्रायुध मुनिराज पियंगु नामक पहाडपर तपस्यामें लीन थे, सर्पका जीव भील हो गया था, उसने बाणसे मुनिराजको स्वर्ग-वास: बनाया। मुनिराजने सर्वार्थ सिद्धका पद प्राप्त कर लिया। वह दुष्ट भील मरकर सातवें नरकमें जा पहुंचा।

इसके बाद वज्रायुधका जीव ही संजयन्त हुआ और पूर्णचन्द्रका जयन्त हुआ। वे दोनों भ्राता बाल्यवस्थामें ही संसारसे उदास हो कर अपने पिताके साथ मुनि हो गये। भीलके जीवने अनेक खराब योनियोंमें जन्म लेकर अत्यन्त वेदना सही अन्तमें वह भूतरमण वनमे हरिणशृङ्ग नामसे जन्म धारण किया। उसीका जीव पंचाग्नि तपकर विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधर हुआ है, वही अपने कई जन्मोंका बदला ले रहा है। जयन्त मुनिका जीव तुम हो (धरणेन्द्र)। हे धरणेन्द्र! संजयन्त मुनिराजके साथ इस दुष्ट विद्याधरने अनेक जन्मोंसे अपने वैरका बदला लिया है। इसने मुनिराजको अनेक असह्य कष्टोंसे सताया। मगर धन्य हैं मुनिराज जिनने अनेक जन्मोंके कष्टोंको सहते हुए अपनी सहिष्णुता, निश्छलता, पवित्रता, एवं धीरताका परिचय देकर हिमालयकी समता कर ली है। वे सम्यक्त्वकी महिमा प्रकट करते हुए मोक्षवासी हो गए हैं। धरणेन्द्र! मुनिराज मोक्षवासी होकर आवागमन रहित हो गए हैं। वे अनन्त काल तक वहां, रहकर अपने ज्ञानका प्रकाश फैलाते रहेंगे अतः ससारको ऐसी स्थिति देखते हुए तुम अपने क्रोधको शान्त करो। इसे दयाकर छोड़ दो। धरणेन्द्रने उसकी (देव) बात सुनकर कहा,—"आपकी प्रार्थना करनेपर मैं इसे छोड़ देता हूं, मगर मैं इसे श्राप देता हूं कि मनुष्यकी योनिमें यह विद्यासे वंचित रहे। इसके बाद श्री धरणेन्द्रने अपने प्रिय भाई संजयन्त मुनिराजके मृतक शरीरकी भक्ति-भावसे पूजा की। फिर उन्होंने अपने स्थानके लिए प्रस्थान कर दिया। अतः अन्तमें हमारी (ग्रन्थकार) विनम्र प्रार्थना है कि श्रीसंजयन्त मुनिराज जिस प्रकार अमर मोक्ष-धामके अधि

वासी हुए उसी प्रकार वे हमें भी उस स्वर्गीय सुखको देवें। सम्यक्-
ग्यानके समुद्र, जिन भगवानके चरण रूपी कमलके प्रेमी भ्रमर,
निर्मल चरित्रधारी श्रीमल्लिभूषण आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यकी पर-
म्परामें हुए थे। उनकी कृपा-कोरसे ही भवसागरसे पार किया
जायेगा, वे कृपाकर हमें भी अनन्त अक्षय सुख देकर अपनी उदा-
रता दिखलावें ऐसा हमारी प्रार्थना है।

अंजन चोरकी कथा।

(६)

घट २ व्यापी वीतराग प्रभु जगत बीच कहलाते हैं।
उनके चरण-कमलमें श्रद्धासे निज शीस झुकाते हैं॥
किसने निःशंकितमे पाई कहो ख्याति हे वाचक वृन्द ?
उसी चोर अंजन की गाथा कहूं स्वपर हित पाठक वृन्द॥

जिनदत्तकी धर्म परीक्षा।

इसी भारतके मगध देशके अन्दर, राजगृहनामक एक नगरमें
एक धर्मात्मा सेठ रहता था, उसका नाम जिनदत्त था। वह, जैन-
धर्ममें बड़ी भक्तिसे विश्वास रखता था। वह श्रावकोंके व्रत करता,
ग़रीबोंको दान देता तथा सर्वदा विषयभोगसे दूर रह धार्मिक-जीवन
व्यतीत करता था। एक दिन की बात है कि उक्त सेठ चतुर्दशीके
पुण्य दिन की आधी रात्रिके समय, श्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग

ध्यानमें रहनेका कार्य करने लगा उसी समय, अमित प्रभ और विद्युतप्रभ नामक देव, अपने धर्मको उत्कृष्टता की परीक्षा करने आये। उनमे पहिला जैन-धर्मको मानता था, दूसरा अन्य मतावलम्बी था। परीक्षा लेनेपर, पंचाग्नि तपनेवाले एक तपस्वी अपने ध्यानसे पराङ्मुख हो गया। इसी बीचमे, वे दोनों, ध्यानस्थ सेठ जिनदत्तके पास पहुंच गये। अमितप्रभने अपने साथीसे कहा, "मित्र! बड़े २ महान् तपस्वी को परीक्षा तो एक तरफ, इसी साधारण गृहस्थ को परीक्षा मे असफल सिद्ध कर दोगे तो मैं तुम्हारी बात सत्य मानूंगा। अमितकी बात सुनकर विद्युतप्रभ परीक्षा करनेके लिये, तैयार हो गया। उसने सेठ जिनदत्तके शरीर को भयङ्करसे भयङ्कर कष्ट देकर उन्हे तपसे विचलित करनेकी लाख कोशिश की मगर वे—

"अटल रहे पर्वत सम उस क्षण, तपमें ध्यान लगाकर,।
कैसे थे वे अटल तपस्वी, योग अखंड जगा कर" ॥

उसी समय, प्रातःकालका समय हो गया। दोनों देवोंने अपना रूप प्रकट कर भक्ति-भावसे उनकी (भेंट) अभ्यर्थना की। उक्त देवोंने सेठ जिनदत्तको आकाश गामिनी विद्या देकर कहा, आप निस्सन्देह विश्वास रक्खें कि आज यह विद्या आपको सिद्ध हो गयी, यदि आप पंच नमस्कार-मंत्र द्वारा, इसे किसी अन्यको देंगे तो उसे भी सिद्धि प्राप्त होगी इस प्रकार कहकर, दोनों देव चले गये, उक्त विद्या पाकर, जिनदत्तकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, उसने अपने मनमे विचार किया कि क्याही अच्छा होता कि मैं अपनी विद्याकी सिद्धिके बलसे अकृत्रिम

चैत्यालयका दर्शन करता। विद्याके प्रभावसे, उसने उसी समय वहाँ जाकर भगवान जिनेन्द्रकी पूजा कर, अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्तकी सच है, ऐसे ही पवित्र दर्शनसे स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

सोमदत्तकी असफलता चोरको सिद्धि।

सेठ जिनदत्त प्रतिदिन उसी चैत्यालयमें जाकर श्री जिनेश्वरकी आराधना किया करता। एक दिन सोमदत्त नामक मालीने सेठ जिनदत्तसे विनीत शब्दोंमें कहा, "सेठ जी! मैं देखता हूं कि आप प्रतिदिन, प्रातः कालके समय कहां जाते हैं?" सेठने कहा,—"हे माली! मुझे दो देवोंके अनुग्रहसे, आकाशगामिनी विद्याकी सिद्धि हुई है जिसके प्रभावसे मैं प्रतिदिन अकृत्रिम जिनमंदिरमें जाकर, भगवान को पूजा किया करता हूं।" सेठ की ऐसी आश्चर्य-युक्त बात सुन कर मालीने हाथ जोड़ कर कहा,—"सेठजी, यदि, कृपा कर मुझे उक्त विद्याका सिद्धि करा देते तो मैं भी प्रतिदिन सुगन्धित पुष्प लेकर, भगवानके चरणोंमें चढ़ा कर शुभ कर्मका भागी बनता। क्या आप मुझे वह विद्या देंगे जिसके प्रभावसे मैं भी धर्म-कार्यमें योग दे सकूं?" माली की भक्ति देख कर, सेठने उसे विद्याकी सिद्धि की विधि बता दी। सोमदत्त, कृष्णपक्षके पवित्र चतुर्दशीके दिन, आधीरात्रिके समय, श्मशानमें जाकर विद्याका प्रयत्न करने लगा। उसने सेठके कथनानुसार, वटवृक्ष की डालीमें समस्त विधिवत कार्य द्वारा, साधन करना प्रारम्भ किया। वह पंच नमस्कार का पवित्र मंत्रका जप करने लगा। अब उसको मंत्र-सिद्धिका अन्तिम समय उपस्थित हो गया था, उसी समय

सोंका काटनेके समय तेज शस्त्र देख कर, वह कांप गया। उस मालीने अपने मनमे विचार किया कि जिनदत्तने मेरे साथ शत्रुता की है। इस प्रकार विचार कर, वह वटवृक्षसे नीचे उतर आया। किन्तु, थोड़ो देरके बाद, उसके मस्तिष्कमे यह बात आयी कि मैं भूल करता हूं, —सेठ जिनदत्त मुझसे किस वैरका बदला लेगा उसे लाभ ही क्या होगा, यदि मेरी जान चली जायगी किन्तु, वारंवार सोचने पर भी, उसके दिमागमे धर्मात्मा जिनदत्तके विषयमें उसकी शत्रुता सम्बन्धी वातें नहीं टिक सकीं। सच तो यह है कि उसका हृदय कमजोर था। अनेकों वार साहस कर वह असफल रहा, जो लोग, स्वर्ग-मोक्षके सुख-प्रदाता जिनेन्द्र भगवान के पवित्र वचनोंके ऊपर, अपनी श्रद्धा नहीं रखते वे संसारमें अपनी कोई मनोभिलाषा पूर्ण नहीं कर पाते।" प्रिय पाठक गण! जिस आधोरात्रिके समयका घटनाका वर्णन किया गया है ठीक उसी समय नगरमे एक और ताज़ी घटना हो गयी जिससे पहली घटनाका सम्बन्ध है, वह यों है। उसी नगरमें, माणिका नामक एक वेश्या रहती थी, उसी रात्रिके समय, वेश्याने अपने चाहनेवाले प्रेमी अञ्जन चोरसे जोर देकर कहा, 'मैं उसी समय, तुम्हें अपना सच्चा प्रेमी मानूंगी जिस समय, तुम श्री कनकवती महारानीके गलेका सुन्दर अतुलित बेश कीमती हार लाकर मेरे गलेमें डालोगे। तुम मेरी प्रतिज्ञा अटल समझो उसी हारके ऊपर हमारे साथ तुम्हारा प्रेम-सम्बन्ध रहेगा या विच्छेद होगा।" वह चोर क्या करता? लाचार होकर उसने रानीके महलमें प्रवेश कर उसके गलेसे हार निकाल कर तेजीसे प्रस्थान किया। किन्तु, सौभाग्यसे

था दुर्भाग्यसे पहरेदारोंने उसके हाथमें चमकता हुआ हार देख कर उसका पीछा करना शुरू किया। अंजन चोर जो छोड़कर, भाग चला। उसके पीछे २ पहरेदार उसे पकड़नेके लिये, दौड़ पड़े। वह रानीका हार लेकर, सफाईसे अनेकों पहरेदारोंको धत्ता बता कर, निकल जाता, परन्तु, उस हारके प्रकाशने पहरेदारोंको सजग कर दिया, वह (चोर) दौड़ते दौड़ते थक गया था, पहरेदार उसे पकड़ लेना चाहते थे, इतनेमे उसने हारको पीछे फेक कर लम्बी दौड़ लगाई। इतनेमें पकड़न वाले हार उठानेमें ही फँसे रहे, तब तक अंजन चोर बहुत दूर निकल गया। किन्तु, पहरेदारोने उसका पीछा करनेसे मुंह नहीं मोड़ा। वह दौड़ता हुआ श्मशानमें पहुंच गया। उसने उक्त मालीको वहाँ पर विद्या सिद्धिके लिये उत्कंठित पाया। मालीके भयप्रद साधन देखकर, अंजन चोरका होश हिरन हो गया। उसने डरते हुए मालीसे पूछा,—"तुम क्या कर रहे हो ?" उक्त मालीने अपनी समस्त बातें उससे कह सुनायीं। अंजन चोर, मालीकी आश्चर्य-युक्त बातें सुन कर, अपने मनमें प्रसन्न होकर विचार करने लगा,—"मेरे लिये यह अच्छा मौका है कि मैं सिपाहियोंके हाथसे न मर कर धर्म-कार्यमें ही अपना प्राण छोड़ूं ? क्यों कि निर्दई सिपाहियोंके हाथसे प्राण-रक्षा असम्भव है, तब इस पुण्यकार्यमें, अपनी जान क्यों न दे दूं ? इस प्रकार सोच कर, उसने मालीसे निवेदन किया,—'हे भाई, कृपाकर अपनी तलवार मुझे दो, मैं भी अपने भाग्यको आजमाना चाहता हूं।" मालीने उसे तलवार दे दी। वह तलवार लेकर वटके वृक्ष पर चढ़ गया। वह माली द्वारा कथित मन्त्र भूल गया। तब उसने मन्त्रके

ऊपर विश्वास प्रकट कर निर्भय होकर कहा,—"मैं सेठके मन्त्रको प्रमाण देता हूं, ऐसा कह कर अंजन चारने तलवारके एकही वारमें, समूचे सींके काट दिये। उसी समय, आकाशगामिनी देवीने उपस्थित होकर उससे कहा,—प्रभो! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं पालन करनेके लिये तैयार हूं। उसकी प्रसन्नताका क्या ठिकाना था? उसने देवीसे कहा,—"मेरु पहाड़पर जहां जिनदत्त जिन भगवान की पूजा कर रहे हैं, मैं उसी स्थान पर जाना चाहता हूं।" उसके कहते ही देवीने अंजन चोरको वहाँ पहुंचा दिया जहाँ सेठ जिनदत्त जिन भगवान की पूजामें तल्लीन थे। "जिन-धर्मके प्रभावसे असंभव काय भी संभव होता है। अञ्जन चोरने सेठके पास पहुंच कर, भक्ति-भावसे प्रणाम कर विनम्र शब्दोंमे निवेदन किया, "दयानिधे! आप की कृपासे मैंने आकाश गामिनी विद्या की प्राप्ति कर ली, किन्तु, दयामय, मुझे कृपाकर कोई ऐसा मंत्र बताइये जिससे मैं भवसागरको पार कर सिद्धि प्राप्त कर लूं।"

अन्तिम परिणाम।

उक्त चोरकी विनम्र वाणी सुनकर, दूसरोंकी भलाई करने वाले सेठ जिनदत्तने उसे चारण ऋद्धिके धारण करने वाले मुनिराजसे दिक्षा दिलाई। अंजन चारने कैलाश पर्वतपर जाकर अपनी कठिन तपस्या द्वारा घातिया-कर्मोंका नाश कर, केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। कुछ दिनोंके बाद, उसने अपने अघातिया कर्मोंका नाश कर अनन्त गुणोंका सिन्धु मोक्ष-पदकी प्राप्ति कर ली। पाठकगण! जैसे अंजन चोर, सम्यग्दर्शनके निःशंकित अंगका पालनकर, अपने

कर्मोका नाश कर निरञ्जन हुआ उसी प्रकार श्रेष्ठ जनोंको चाहिए कि वे निःशंकित अंगको पूर्णरूपसे पालन करें।

श्रीमल्लिभूषण भट्टारक मूल संघमें हुए हैं। वे सम्यग्ज्ञान, सम्यक चरित्र और सम्यग्दर्शनके समान सर्वश्रेष्ठ अनमोल रत्नोंसे विभूषित थे। वे ज्ञानके भण्डार थे। उनके शिष्यका नाम सिंहनन्दी मुनि था। वे मिथ्यारूपी पर्वतको चूर-चूर करनेमें वज्रकी समता रखते थे। वे अपूर्व विद्वान् थे साथ ही अन्य मतोंके सिद्धात का विद्वतासे प्रतिबोध करते थे। उनकी उपमा सूर्य्यसे दी जा सकती है। जो श्रेष्ठ पुरुषरूपी कमलको प्रफुल्लित करता है। वे चिरञ्जीवी रहें। उनकी कीर्ति नाशमान संसारमें सर्वदा अक्षय रहे। यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

अनन्तमतीकी कथा

(७)

पूज्य पिताने जब विनोदमें उसे दिया था शीलाचार।
उसने दृढ़तासे पालन कर, सिद्ध किया निज सत्य विचार॥
श्री अर्हन्त पवित्र चरणमे, सादर शीस झुकाता आज।
रोचक कथा अनन्तमतीकी, लिखता हूं मैं सुखका साज॥

कन्या आजन्म कुमारी रही।

भूमण्डलमें किसी जमानेमें अंग देश एक प्रसिद्ध देश रहा है, उसमें वसुवर्धन नामक राजा राज्य करते थे। उन दिनों उस देश-

की राजधानीका नाम चम्पापुरी था। लक्ष्मीमती उन राजाकी रानी थी। उसके प्रियदत्त नामक पुत्र था। रानीका सरल स्वभाव अनुकरणीय था, वह बड़ी धर्म-परायणा स्त्री थी, जैन धर्मपर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। अतः माताके धार्मिक जीवनका प्रभाव प्रियदत्तके ऊपर पड़े बिना कैसे रह सकता था। अतः वंश परम्पराके अनुसार प्रियदत्तकी स्त्री अंगवती भी पतिके अनुकूल धर्ममार्गमें चलने वाली उदार स्त्री थी। उसी अंगवतीकी कन्याका नाम अनन्तमती था, वह गुणोंकी खान तथा सुन्दरी थी। एक दिनकी बात है कि अष्टाह्निकाके पवित्र शुभ अवसरपर, प्रियदत्तने धर्मकीर्ति नामक महामुनि के पास जाकर, केवल आठ दिनोंके लिये, ब्रह्मचर्य रहनेका व्रत ले लिया। इसीमे उसने अपनी कन्या अनन्तमतीको भी ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया। यद्यपि उसने विनोद-भावमें आकर ऐसा किया किन्तु, वही विनोद अन्तमे जाकर ठीक निकला। अपने पूज्य पिताके दिये हुए ब्रह्मचर्य व्रतने कन्या अनन्तमतीके मनपर अपना प्रभाव दिखलाया। जब, प्रियदत्तने अपनी कन्याको विवाहके अनुकूल देखी तब उसने उसके विवाहकी तैयारी शुरू कर दी। इधर, घरमें, धूम-धाम देखकर अनन्तमतीने अपने पितासे सादर निवेदन किया, "पिताजी आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रतसे दीक्षित कर दिया है तब विवाहकी कैसी तैयारी! कन्याकी बात सुनकर प्रियदत्त चौंक उठे। वे कहने लगे—पुत्री! क्या मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, मैंने तो विनोद किया था। क्या तू उसे ही सच मानती है? कन्याने निर्भीकता पूर्वक जवाब दिया,—'आप क्षमा करें, धर्म और व्रत विधानमें हंसीकी गुञ्जाइश कहां?" पिताने बेवशीमें कहा,—"मेरे

पवित्र कुलको प्रकाशित करने वाली कन्या, अच्छा मैंने माना कि मेरे विनोदमे दिया हुआ व्रत सत्य है तो मैंने आठ दिनके लिए दिलाया था, वेटी तुम तो अपने विवाह करनेसे इनकार कर रही हो।' पिताजी, आपका कहना ठीक है, मैं मानती हूं कि आपने आठ दिनोंके लिये व्रत दिलाया था, किन्तु आपने या आचार्यने उस समय मुझसे व्रतके समयके सम्बन्धमे क्यों नहीं कहा था? पिताजी मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करूंगी। इस जन्ममे मेरा विवाह होना असम्भव है। कन्याकी भीष्म-प्रतिज्ञाके सामने पिता किं-कर्तव्य विमूढ़ हो गया। लाचार होकर उसने कन्याके धार्मिक पवित्र जीवन वितानेके लिये अच्छी २ पुस्तकोंका प्रवन्ध कर दिया जिस-से उसका जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत हो। अनन्तमती प्रसन्नता से शास्त्रोंके स्वाध्यायमे लीन होकर पवित्र जीवन विताने लगी। इस प्रकार अनन्तमतीका वाल्यकाल समाप्त हो गया। उसने यौवन के प्राङ्गणमें प्रवेश किया। उसके रोम रोमसे जवानी टपकने लगी। योंतो वह सुन्दरी थी ही, किन्तु मस्तानी जवानीने उसे देवकन्या-से अधिक सुन्दरी बना कर अपनी सत्ताका परिचय दिया। उसकी सुन्दरताका वर्णन करना उसके साथ मखौल करना है। उसके मुखके सौन्दर्यके आगे चन्द्रमा लज्जित हो जाता था, कवियोंने सुन्दरता के वर्णनमें कमलसे आंखोंकी उपमा दे रखी है, किन्तु अनन्तमतीके आगे उसकी उपमा ठीक नहीं जँचता। अनन्तमतीके सौन्दर्यके आगे स्वर्गलोककी सुन्दरियाँ फीकी लगने लगीं।"

विपत्तिके चंगुलमें।

एक दिनकी वात है कि अनन्तमती अपनी फुलवाड़ीमें मनो-

रञ्जन करनेके लिये, झूला झूल रही थी। इतनेमें कुण्डल मण्डित नामक विद्याधर अपनी स्त्रीके साथ वायुयानपर जा रहा था। उस-को नजर झूलेपर झूलती हुई अनन्तमतीके ऊपर पड़ी। वह अनन्त मतीकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया। किन्तु उस समय उसकी स्त्री बाधक बन रही थी, तो वह उसे अपने विमानपर जबर्दस्ती बैठा कर अपना मतलब गाँठता। वह शीघ्रतासे विमान घर ले गया, अपनी स्त्रीको विमानसे उतारकर वापस लौटा, किन्तु उसकी स्त्री अपने पतिके मनकी बात ताड़ गई। इधर विद्याधर विमान लेकर चला, इधर उसकी स्त्रीने उसका पीछा किया।

कुंडल मंडित अनन्तमतीको अपने विमानपर जबर्दस्ती बैठा कर ज्योंही चला त्योंही उसकी नजर अपनी स्त्रीके ऊपर पड़ी, वह घबड़ा गया। कारण, उसकी स्त्रीके नेत्र क्रोधसे अंगारे बरसा रहे थे। वह समझ गया कि अब खैरियत नहीं। विद्याधरने अनन्तमतीको पर्णालघ्वी नामक विद्याधरके हवाले कर अपनी जान बचाई। घर जाकर वह अपनी निर्दोषिताका प्रमाण पेश करने लगा उसने अनन्तमतीके सम्बन्धमें अपनेको अपनी स्त्रीके सामने निर्दोष सिद्ध कर दिया।

भीलराजकी बदमाशी।

उक्त विद्याने अनन्तमतीको घोर जंगलमें छोड़ दिया। वह निर्जन जंगलमें अकेली रोने लगी। इतनेमें शिकार खेलता हुआ एक भीलराज पहुंच गया। वह बुरी वासनाके विचारसे अनन्तमती को अपने घर ले गया।

अनन्तमतीके जीमें जी आया। उसने मनमें निश्चय कर लिया कि अब मेरा छुटकारा हुआ। मैं अपने घर पहुंच जाऊंगी। किन्तु वह भ्रममें थी, कुएं से बचकर खाई में जा गिरी। यदि एक सांपनाथ था तो दूसरा नागनाथ। दुष्ट भीलराज उसे अपने घर ले गया, वहां उसने इस प्रकार कहना शुरू किया,—"देवी, तुम कितनी भाग्यवती हो कि मेरे समान एक राजा तुम्हारे सौन्दर्यका प्यासा बना हुआ है। मैं तुम्हारे चरणोंपर गिरकर तुमसे यही वर-दान मांगता हूं कि मेरे साथ भोग कर आनन्द प्राप्त करो। मैं तुम्हें अपनी प्रधान रानी बनाऊंगा। मेरे ऊपर दया कर अपने रूपका मजा चखने दो।" अनन्तमती उसकी दुष्टता भरी बात सुनकर, फूट २ कर रोने लगी। किन्तु उसका रोना उस घोर जंगलका रुदन था जहांपर किसी की सुनवाई नहीं होनेकी। सच पूछिये तो वहांके लोग मनुष्य जातिके कट्टर दुश्मन थे। सच है पापियोंके हृदयमें दयाका नाम तक नहीं रहता। अनन्तमतीके ऊपर उसने साम, दाम और दण्ड-नीतिसे काम लेना शुरू किया। अब अनन्त-मतीने अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस दुष्टके आगे नम्रता, अनुनय-विनयसे काम चलनेका नहीं, अतः उसने भीलराज को फटकार बतायी। सती-साध्वीके नेत्रोंसे क्रोधकी चिनगा-रियां निकलने लगीं। किन्तु उस राक्षसके आगे तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उस दुष्टने अनन्तमतीके साथ बलात्कार करनेका निश्चय किया। उसी समय अनन्तमतीके शीलके प्रभावसे प्रभावित होकर वन-देवीने आकर उसकी रक्षा कर ली। उक्त देवीने उसे उसकी दुष्टताका मजा चखाकर क्रोधपूर्ण शब्दोंमे कहा,—"नरा-

धम ! क्या तू इस देवीको नहीं जानता कि यह पवित्र आत्मा है। दुष्ट ! स्मरण रख कि यह संसार भरमें महान् देवी है, यदि इसके साथ छेड़खानी की तो तेरी खैरियत नहीं।" वन-देवी इस प्रकार उसे धमकाकर चली गयी। भीलराज डर गया। उसने देवी के डरके मारे, अनन्तमतीको एक सेठके हाथों सुपुर्द कर कहा, "इसको घरपर पहुंचा देना।" साहूकार राजी हो गया किन्तु वह भी पापी था। वह अनन्तमतीके समान दुर्लभ-सुन्दर स्त्री पाकर फूला नहीं समाया। उसने अपने मनमें विचार किया कि देखो, विना प्रयास किये ही अपूर्व सुन्दरी हाथ लगी। यदि, यह मेरा कहना मान ले तब तो ठीक है नहीं तो यह मेरे चंगुलसे भाग कर कहाँ जायगी।

विकारीके जालमें

इस प्रकार अपने मनमें बुरा विचार कर उसने धृष्टताके साथ अनन्तमती से कहा, "देवी, तुम्हारे भाग्यकी क्या सराहना की जाय एक दुष्ट राक्षसके हाथसे तुम्हारा छुटकारा हुआ है। मेरे पास आकर तुम्हारा भाग्योदय हो गया। भला ! कहां तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा और कहाँ भयङ्कर भील, नर-पिशाच ! मैं, अपने भाग्यको किस प्रकार सराहूं धन्य है मेरा भाग्य जिसने तुम्हारे समान देव-दुर्लभ सुन्दर स्त्री पाई है। सच है, बड़े भाग्यसे सुन्दर स्त्री मिलती है। तिसपर, तुम्हारे समान स्त्री-रत्नका पाना महाभाग्यका प्रधान लक्षण है, देवी ! मैं अनन्त धन, सुख, वैभवका स्वामी हूं और तुम विश्व विदित अपूर्व सुन्दरी। मैं तुम्हारे चरणोंका सेवक बनना चाहता हूं, यदि तुम मुझे अपना लो, अपने हृदयके एक कोनेमें मुझे

वास-स्थान दो तव तुम देखोगी कि तुम्हारे साथ ही मेरा जीवन-कृत कृत्य हो जाता है कि नहीं। उधर, अनन्तमती अपने कोमल निष्कलङ्क हृदयमें दुष्टोंके हाथोंसे अपने छुटकारेकी वातपर विचार करने लगी।—मैं अपने पुज्य पिताके पास पहुंच जाऊँगी। ये वड़े भलेमानुप सज्जन हैं, अब डरनेकी कोई वात नहीं। वह इसी प्रकार ख्याली पोलाव पका रही थी। सच है जो लोग सदाचारी होते हैं वे संसारको उसी दृष्टि-कोणसे देखते हैं। बुरे आदमी भी संसारको उसी पैमानेसे तौलते हैं। अतः निर्वोध अनन्तमती जिसे देखती उसे ही सत्पात्र समझती; उसके हृदयमें पाप की छाया तक नहीं थी, तव वह संसारको पापी कैसे समझती जव कि यह उसका नाम तक नहीं जानती थी।" साहूकारकी वासना भरी वात सुनकर, उसने विनीत शब्दोंमें कहा,—"मान्यवर, मैं आपके पास आकर अपनेको सुरक्षित समझती रही। मैं जान गयी थी कि क्या हुआ एक पिता घर पर हैं तो मेरी मुसीवतके समय आप भी मेरे लिए दूसरे पिताके समान थे। मैं समझती थी कि अव मेरे कष्टोंका अन्त हुआ, मैं आजादीके साथ अपने घर पहुंच जाऊँगी। किन्तु, आपके कामुकता-युक्त पाप-पूर्ण प्रवचनने मेरे सामनेकी पृथ्वीको हिला दिया, महाशय!

"मन मलीन तन सुन्दर कैसे।
विप रस भरा कनक घट जैसे॥

की उक्ति चरितार्थ कर रहे हैं। मैं किसपर विश्वास करूँ? आपको मैंने रक्षक समझा था किन्तु देखती हूं कि मेरा रक्षक ही भक्षक वन गया है। मुझे क्या पता था कि आप भी छिपे रुस्तम

ब्रह्मदत्तको फसानेके लिये व्यतर केले और नारगी लाकर भेंट करता है। महाराज उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं और ऐसे फल कहां होते हैं वहा के लिये प्रस्थान करते हैं।

निकलोगे। मुझे अफसोस हो रहा है कि तुम्हारे समान सज्जन इस प्रकार नीचताकी बात करें। ठीक है तुम चमकते हुए उस पीतलके समान ही जो बाहरी चमक-दमकमें सोनाको मात करता है, किन्तु, सोनाके सामने वह नकली पीतल साबित होता है। अतः तुम बाहरसे देखनेमें किस प्रकार अच्छे आदमी जान पड़ते थे किन्तु बगुला भगत बन कर अपना परिचय दे रहे हो। तुम्हारी विड़ाल-भक्ति, बनावटी भेष, निन्दाके योग्य है। महाशय, मैं तुम्हारे चरित्र देख कर निश्चय पूर्वक कहती हूं कि तुम्हारा धन. ऐश्वर्य, भोग विलासके साधनको धिक्कार है। लानत है तुम्हारे धन-वैभव पर, लाखोंबार धिक्कार है तुम्हारे वंशको जिसमें जन्म लेकर नीचताका परिचय दे रहे हो। मैं तुझे घृणाकी नजरोंसे देखती हूं। तुम्हारे ऐसे ही बगुला भक्त भोलीभाली सूरत बनाकर सीधे सादे लोगोंमें अपनी कामुकताका सब्ज बाग फैलाते हैं। वह मनुष्य नहीं है किन्तु मनुष्य के रूपमें राक्षस हैं जो धोखा देकर विश्वासघात करता है। अपनी हृदय कलुषिताका परिचय देता है। वह पापी है, नर-पशु है और है घृणाका पात्र जिसके देखनेसे पाप लगता है, जिसके नाम लेनेसे पापका भाजन बनना पड़ता है और उस अधम नर-पिशाच को जितना धिक्कारा जाय थोड़ा है। दुष्ट, मैं नहीं जानती थी कि तू ऐसे ही धूर्त बदमाश आदमियोंमें है जो माया-जाल रचकर बे-गुनाह, सच्चरित्र आत्माओंको अपने मायाजालमें फँसाकर अपने पापी कलुषित हृदयका परिचय देते हैं। इस प्रकार उसकी निन्दा कर अनन्तमती चुप हो रही। उसने उस दुष्टसे अधिक समय तक बातचीत करना उचित नहीं समझा। वह साहूकार अनन्तमतीकी

ओजपूर्ण स्पष्ट बातें सुनकर भौचक्का सा हो गया। सती-साध्वीके तेजके आगे उसे बोलनेका साहस नहीं हुआ, वह सहम गया। किन्तु उस दुष्टने अनन्तमतीको कामसेना नामक कुटनीके पंजेमें फंसाकर अपने क्रोधका बदला लिया।

राजाके पंजेसे देवीने पुनः रक्षा की।

मनुष्यको अपने कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। उसकी गति विचित्र है। 'कर्म लेख को मेटन हारा' की उक्ति ठीक ही है। उधर कुटनीके फेरमें पड़कर, अनन्तमतीके कष्टकी हद हो गयी। कुटनीने उस सतीके सामने अनेक प्रकारके प्रलोभन दिखलाये, उसे सतानेमें कसर नहीं रखी। वह चाहती थी कि अनन्तमतीको पथ भ्रष्ट कर दें, किन्तु वह सती स्त्री थी। उसके शील-व्रतसे खिलवाड़ करना आगसे खिलवाड़ करना था। उस कुटनीकी लाख कोशिश करनेपर भी अनन्तमती सुमेरुगिरके समान अटल बनी रही, उसके सतीत्वको डिगाना असम्भव था। यह सच है कि जो संसारी दुःखोंसे घबड़ाकर पथ भ्रष्ट हो जाते हैं किन्तु जो सदाचार पथके पथिक हैं उन्हें पथ भ्रष्ट करना लोहेके चने चबाने हैं। जब कुटनी अपने प्रयत्नमे असफल रही तब उसने अनन्तमतीको सिंहराज नामक एक व्यभिचारी राजाके हाथमें सौंप दिया। हाय, किस कुघड़ीमें वह उत्पन्न हुई थी कि जहां-जहां जाती वहां वहां दुष्टात्माओंसेही काम पड़ जाता है। पापी सिंहराजने अनन्तमतीके साथ दुराचार करनेका विचार प्रकट किया, किन्तु सती साध्वी अनन्तमती अपने सत्पथसे विचलित नहीं हुई। जब उस दुष्टात्मा

को इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी तब उसने बलात्कार करनेकी कुचेष्टा की किन्तु सतोंके सतीत्वको लूट लेना क्या खेल है ? फिर किसके बाजूमें ताकत है कि उसे बिगाड़ सके। जिस समय उस दुष्टने सतीके सामने अपना पैर बढ़ाया, उसी समय वनदेवीने वहां प्रकट हो डपट कर कहा, "पापी, संभल जा, अगर सतीसे छेड़खानी की तो तेरा नाश निश्चित है। देवी उसे दण्ड देकर चली गयी। देवीका भयङ्कर स्वरूप देखते ही सिंहराजका होश हिरण हो गया। उसका कलेजा थर-थर कांपने लगा, उसे देवीके जानेकी खबरतक नहीं थी देवीके चले जानेके बाद उसे ज्ञान हुआ। उस दुष्टने अनन्तमती-को एक घोर जङ्गलमें छोड़ देनेके लिये अपने सेवकको आज्ञा दी।

पुनः जंगलमें।

अनन्तमती घोर जंगलमें सोचने लगी कि कहां जाऊं ? उसे रास्ता मालूम नहीं था। अन्तमें वह जङ्गलका फल खाती हुई पंच परमेष्टीकी आराधना कर अनेक जङ्गल-पहाड़ोंको पार करती हुई अयोध्या नगरीमें जा पहुंची। वहांपर उससे पद्मश्री नामक आर्यिकासे भेंट हो गई। उस आर्यिकाने अनन्तमतीका परिचय पूछा। उसने आप बीती कह सुनाई। आर्यिका उसकी आत्म-कहानी सुनकर बहुत दुःखी हुई, किन्तु उसने अनन्तमतीको सती शिरो-मणि समझकर अपने पास रख लिया। अच्छे लोगोंके लिये परो-पकार ही व्रत है।

पिता-पुत्री सम्मेलन।

प्रिय पाठकगण ! प्रियदत्त अपनी कन्याके गुम हो जानेके दुखद

समाचारसे अत्यन्त दुखी हुआ। उसने पुत्रीके वियोगमें घर-द्वारसे वैराग्य धारण कर लिया। सच है जब मन दुखी हो जाता है तब घर भी श्मशानके समान भयङ्कर लगता है। उसके सामने सारा संसार सूना दिखाई देने लगा, घरपर एक क्षणका रहना भी उसे वर्ष मालूम होने लगा जब उसकी तबीयत घरपर नहीं लगी तब वह घरसे निकल पड़ा। लोगोंके लाख समझाने-बुझानेपर भी उसने अपना दृढ़ विचार नहीं छोड़ा तब परिवारके लोग उसके साथ हो लिये। सभी अनेक सिद्ध क्षेत्रों तथा अतिशय क्षेत्रोंकी यात्रा करते हुए अयोध्या नगरीमें पहुंच गये। वहां प्रियदत्तका साला जिनदत्त रहता था। उसने बड़े प्रेमसे प्रियदत्तकी आवभगत की। जिनदत्त ने अपने बहनोईसे परिवारका कुशल-समाचार पूछा। उसने अनन्तमतीके सम्बन्धमें सारी घटना कह सुनायी, जिनदत्त अत्यन्त दुःखी हुआ। किन्तु कर्म-फलके आगे सब लाचार हो गये। दूसरे दिन एक ऐसी घटना घटी जिसने पिता-पुत्रीके साथ सम्मेलन करा दिया। बात यों हुई,—जिनदत्तकी स्त्रीने पद्मश्री आर्यिकाके पास रहने वाली स्त्री (अनन्तमती) को भोजन करने तथा चौक पूरनेके लिये बुला भेजा। अनन्तमती चौक पूर कर चली गई। इतनेमें प्रियदत्त अपने सालेके साथ जो जिनालयमें दर्शन करनेके लिये गया था—लौटकर जिनदत्तके घर पर चौक पूरा देख कर—उसे अपनी प्रिय कन्या अनन्तमतीकी याद हो गई। वह फूट फूट कर रोने लगा, उसने कांपते हुए स्वरमें कहा, "जिसने यह चौक पूरा है उससे भेंट करा दो।" उसका साला अपनी स्त्रीसे पता पूछ कर पद्मश्री आर्यिकाके पास जा पहुंचा। वह अनन्तमती

को लेकर अपने घर वापस आया। अपनी कन्या अनन्तमतीको देखकर पिताका गला भर आया। बहुत दिनोंके बाद पिताने पुत्री-को देखकर उसे छातीसे लगाया। प्रियदत्तने बड़े प्रेमसे अपनी पुत्री का समाचार पूछा। कन्याने सिसक २ कर आप बीती कह सुनाई। अनन्तमती अपने प्रिय पिताकी गोदमें बैठकर अपनी दुःख पूर्ण कहानी कहने लगी। प्रियदत्त उसकी कष्ट-कथा सुनकर काँप उठा वह आश्चर्य करने लगा कि उसकी कन्याने असह्य कष्ट सहन कर भी कैसे सतीत्वकी रक्षा कर ली। अन्तमें उसने अपनी कन्यासे मिलकर अपने हृदयमें आनन्दका जैसा अनुभव किया वह शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। उधर जिनदत्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ उसने इस खुशीमें जिनेश्वरका रथ निकलवानेका आयोजन किया सबको सम्मानित कर दान दिया। इस प्रकार अपनी कन्यासे मिल कर प्रियदत्तने अपनेको धन्य २ समझा। उसकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था।

वैराग्य-धारण

अब प्रियदत्त घर चलनेके लिये तैयार हो गए। उस समय उन्होंने अपनी कन्यासे घर चलनेकी बात कही। अनन्तमतीने हाथ जोड़कर पितासे निवेदन किया, "पूज्य पिताजी! मैंने संसारकी लीलाएं देखी हैं, हाय, उन्हें देखकर मेरी आत्मा कांप उठती है। पिताजी! संसारी कष्टोंको देखकर मैं डरती हूं, अतः आपसे सादर आग्रह करती हूं कि आप मुझे घर चलनेके लिए न कहें—मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि मुझे जैन-धर्ममें दीक्षित होनेकी आज्ञा दीजिये, बस, आपकी प्रिय पुत्रीकी यही मनोभिलाषा है। प्रियदत्त,

अपनी कन्याकी बात सुनकर, सहम गये उन्होने लड़खडाती हुयी जबानमे कहा। पुत्री! तुम्हारा कोमल शरीर, कैसे कठिन कष्टोंको सहन करेगा? दीक्षा लेनेपर अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़ते हैं जिन्हें तुम नहीं सह सकोगी। अतः कुछ दिनों तक मंदिरमें रहकर साधना करो, इसके बाद, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी। यद्यपि प्रियदत्तने कन्याको प्रेम-वश दीक्षा लेनेसे रोका, किन्तु अनन्तमतीके रोम २ में वैराग्यका भाव व्याप्त हो गया था। उसने गृह-परिवार, माता-पिताकी ममतापर ठोकर मारकर पद्मश्री आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा लेली। उसने दृढ़ताके साथ तपस्या करनी शुरू की। वह कठिनसे कठिन कष्ट धैर्यके साथ सहती। लोग, उसके कठिन तपको देखकर आश्चर्य करते। उसने आजीवन दृढ़तासे अपना व्रत पालन किया। आखिर वह अमर ज्योति, अपनी प्रभा छिटकाती हुई सन्यास मरण द्वारा सहस्रार स्वर्गमें जाकर देव हुई। वह स्वर्ग में भी नये २ रत्नाभूषण धारण करती है। अनेकों देवाङ्गनायें उसकी सेवा करती हैं उसके सुख तथा ऐश्वर्यको कोई सीमा नहीं है। सच है जिस समय पुन्योदय होता है, उसके प्रभावसे मनुष्य क्या २ सुख नहीं पाता? यद्यपि अनन्तमतीके पिताने हंसीमें उसे ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया था, उसने अटल-भावसे रहकर उसका पालन किया। उसने संसारके सुखोंमें तनिक लालच नहीं किया। उसने अपने उग्र तपके प्रभावसे स्वर्ग-सुख प्राप्त किया। वहांपर उसका समय जिन भगवानकी आराधनामें व्यतीत होता है। अनन्तमती सदृश सती-शिरोमणि हमारी भलाई करे यही हार्दिक प्रार्थना है।"

उद्मायन राजाकी कथा

(८)

जिन भगवान और जिनवानी जगत श्रेष्ठ कहलाते हैं।
जैन मुनीश्वरके चरणोंमें, नमस्कार कर जाते हैं॥

कच्छ देशके रोरवक नामक नगरमें, राजा उद्मायन राज्य करते थे। वे प्रजाके ऊपर, सात्विक भावनाओंसे प्रेरित हो कर न्यायतः शासन करते थे। वे दान देनेमें एक ही थे, उनकी दृष्टि सम्यक थी तथा श्रीजिनेश्वरके भक्ति-भावमें सदा रहते थे। वे प्रजाको प्रेमकी दृष्टिसे देखा करते थे, उनका अधिकांश समय, धार्मिक-भावनाओं तथा प्रजा रञ्जनमें व्यतीत होता था। उनकी प्रभावती नामक धर्मशीला रानी थी। वह भी अपने पतिके पथका अनुगमन करती थी. वह सदा धर्म प्रवृत्तियोंमें संलग्न रहती था इसी तरह, राजा उद्मायन शांति-सुखके साथ अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। चिन्ता तो उन्हें छू नहीं गई था। वे अजात शत्रु थे। यानी उनका जीवन हर पहलूसे शांतिमय जीवन था।

इन्द्रकी प्रशंसापर देवने परीक्षा ली

एक दिनकी बात है कि सौधर्म स्वर्गलोकके इन्द्रने अपने भरे दरबारमें धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया वह यों है:—देवो, यदि संसारमें कोई सच्चे देव हैं तो अरहन्त भगवान हैं, वे समस्त दोषोंसे परे हैं उन्हें, इर्षा, द्वेष, क्रोध, मत्सर, भूख, प्यास, जन्म मरण, भय आदि जो संसारकी व्याधियां हैं उन्हें कुछ नहीं कर सकतीं। वे ही

ससारी जीवोंके दुःखोके त्राता हैं। वे ही सत्य धर्म, उत्कृष्ट क्षमा, मार्दव, आर्यव, आदि दश लक्षणोंसे युक्त हैं। वे गुरु निर्ग्रन्थ हैं। उनके पास परिग्रह फटकने नहीं पाता। वही भगवान क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेपसे निर्लिप्त हैं। अतः सच्ची श्रद्धा ही जिसके द्वारा, प्राणी तथा उसके भिन्न तत्वोंमे अभिरुचि उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा स्वर्ग-मोक्षको प्राप्ति होती है। इस रुचिके उत्पन्न होनेका प्रधान साधन है श्रद्धा-धर्ममें प्रेम करना, तीर्थ पर्यटन, रथ-महोत्सव, पुराने मंदिरके उद्धारसे प्रतिष्ठाके द्वारा, मूर्ति-निर्माण तथा साधर्मियोंसे प्रेम करना। हे देवगणों! सम्यग्दर्शन द्वारा ही पापोका नाश होता है और पुण्यका उदय। वह संसारमें अनुपमेय वस्तु है। अतः तुम भी इसे धारण कर, उपरोक्त सुखकी प्राप्ति करो। इन्द्रने उपरोक्त वर्णनमे निर्विचिकित्सा अंगके पालन करने वाले राजा उद्यायनकी वड़ी प्रशंसा की। देवराज इन्द्रके मुखसे मनुष्यकी प्रशंसा हो, ऐसी वात सुनकर वासव नामक देवने राजा की परीक्षा लेनी चाही। वह, उसी क्षण एक कोढ़ीका भेप धारण कर, दोपहरके समय राजा उद्यायनके राजभवनमें पहुंच गया। उसके अंग प्रत्यंगके गलनेसे दुर्गन्ध फैल रही थी। उसका समस्त शरीर क्षत-विक्षत हो रहा था। वेदनाके मारे उसके पैर इधर उधर लड़खड़ा रहे थे। उसकी ऐसी वुरी दशा देखकर सव कोई उसके पाससे अलग हट जाते थे। जिस समय राजाकी दृष्टि उस वने हुये कोढ़ीपर पड़ी, वे सिंहासनसे उतर पड़े। राजाने श्रद्धा-भक्तिसे कपटी मुनिका आह्वान किया। उन्हें नवधा भक्तिसे युक्त, प्रासुक आहार कराया। किन्तु, थोड़ी देरके वाद उस कपटी मुनिने अपनी

मायाके योगसे, दुर्गन्ध वमन करना शुरू किया। जिससे वहांपर किसीका रहना असम्भव हो गया। किंतु धन्य हैं राजा और रानी, जिन्होंने उसकी वैयावृत्ति की। उसने रानीके ऊपर वमन कर दिया। तो भी धर्मात्मा युगल जोड़ीने सेवा-धर्मसे मुंह नहीं मोड़ा। कपटी मुनिकी ऐसी बुरी हालत देखकर वे सोचने लगे कि हमने इन्हें प्रकृति विरुद्ध आहार देकर कष्ट पहुंचाया। हम लोग पापके भागी हुये हैं जो मुनिको निरन्तराय आहार नहीं दे सके। जिस प्रकार पापी, मनोभिलापा पूर्ण करने वाले चिन्तामणि सदृश रत्न तथा कल्पवृक्ष नहीं पाते उसी तरह पापी, धर्मात्माओं द्वारा दिये गये सात्विक दानका भोग नहीं कर पाते। इसप्रकार, आत्म निंदाकर राजा-रानीने उस कपटी मुनिका मल युक्त शरीर, जलसे साफ किया। उसी समय छद्मवेषधारी देवने अपना असली रूप प्रकट कर सादर निवेदन किया, ' महाराजाधिराज, आपकी श्रद्धा तथा निर्वि-चिकित्साअंग पालन करनेकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आप दानियोंमे शिरोमणि हैं। देवेन्द्रने आपकी जैसी प्रशंसा की थी, वह सोलहों आने सिद्ध हुई। यदि सच पूछा जाय तो यही कहना पड़ेगा कि आपने पवित्र जैन-शासनका सच्चाईके साथ रह-स्योद्घाटन किया है। आप धन्य हैं, संसारमें माताका कौन लाल है जो कष्ट-पीड़ित मुनिकी सेवा करता। आप समान भूमण्डलमें कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष नहीं है, आप सबके सरताज हैं।" इस प्रकार राजा उद्दायनकी प्रशंसा कर, वह देव स्वर्ग-लोक चला गया। राजा भी नियमानुसार दान, व्रत, पूजा तथा प्रजा-रंजनके कार्यमे तत्पर हो गये।

राजाने दीक्षा ली।

इस प्रकार वे वहुत दिनों तक राज्य करते रहे। एक दिन वे राजमहलके कोठेपर बैठकर आकाश मण्डलकी तरफ प्रकृतिकी लीला देख रहे थे। उसी समय उनकी दृष्टि वादलोंके समूहपर पड़ी वे क्या देखते हैं कि क्षण भरमें ही, हवाके प्रचण्ड झोंकेने उसे नितर वितर कर दिया। उसी समय राजा उदायनके हृदयमें संसारकी क्षण-भंगुरताका स्पष्ट चित्र नाचने लगा। उनके हृदयमें उसी समय वैराग्यका भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्रको राजगद्दीपर वैठाकर भगवान् वर्द्धमानके समवसरणमें श्रद्धा-भक्तिसे नमस्कार कर पवित्र दीक्षा लेली। पाठक, वे इन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य हुए। राजाने मुनि होकर कठिन तपस्या द्वारा ससारके सर्वोत्कृष्ट तीन रत्नकी प्राप्ति की। इसके वाद ध्यानके द्वारा अपने घातिया कर्मका नाश कर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया। वे संसारी जीवोंकी भलाई करते हुए अन्तमें अघातिया कर्मका नाश कर अक्षय मोक्ष-धामके वासी हुए। रानी प्रभावतीने जिन दिक्षामें दिक्षित होकर समाधिमरण प्राप्तकर ब्रह्म स्वर्गमें देव हुई, जिन भगवान् ही संसारके श्रेष्ठ गुणोंके अनन्त भण्डार हैं, जो अपने केवल ज्ञान रूपी चन्द्र द्वारा संसारी जीवोंके अज्ञान अन्धकारका नाश कर इन्द्र, नरेन्द्र द्वारा पूजित होते हैं। ऐसे ज्ञानके अगाध सिन्धु, साधु-शिरोमणि भगवान मुझे (लेखक) मोक्षरूपी लक्ष्मीका वरदान दे यही विनम्र प्रार्थना है।

रेवती रानीकी कथा ।
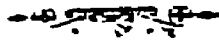
(६)

रेवति रानीने मिथ्याको छोड़ तपस्या की भारी।
अंग अमूढदृष्टि पालन हित उसने की थी तैयारी ॥
जिन प्रभुके चरणोंमें मैं भी श्रद्धासे झुक जाता हूं।
उसकी परम पवित्र कहानी, पाठक, यहां सुनाता हूं ॥

विजयार्द्ध पहाडको दक्षिण चोटीमें, एक सुन्दर नगर है जिसे मेघ कूटके नामसे पुकारा जाता है। उस नगरमें राजा चन्द्रप्रभा राज्य करते थे। जब उन्हें राज्य करते हुए बहुत दिन हो गये तब उन्होंने तीर्थाटन करनेका विचार किया ! इस प्रकार अपने मनमें निश्चय कर, अपने पुत्र चन्द्रशेखरके हाथमें राज्य-शासन सूत्र देकर वे तीर्थ-यात्रा करने निकल पड़े। जिस समय राजा, दक्षिण मथुरा पहुंचे,वहीं उन्होंने गुप्ताचार्यके दर्शन किये। राजा चन्द्रप्रभा आचार्य के मुंहसे धर्मोपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुए। श्रद्धेय आचार्यने अपने धार्मिक उपदेशमे कहा था, "पर उपकार जगतमें करना, महा पुण्यका कारण है।" आचार्यके मुंहसे इस प्रकारका उपदेश सुनकर राजा तीर्थ यात्रा करनेके लिये, अपने पास एक विद्या रखकर क्षुल्लक हो गये। एक दिनकी बात है कि उन्होंने उत्तर मथुराकी यात्रा करनेका विचार कर गुरुवरसे सानुरोध प्रार्थना की, "दया-सिन्धो ! मैं उत्तर मथुराकी यात्रा करने जा रहा हूं, यदि आप वहाँ के किसी परिचित व्यक्तिको कुछ सन्देश देना चाहते हैं तो कहिये

आचार्यने कहा, "सूरत, मुनिराजको मेरा नमस्कार कह देना, साथ साथ ही धर्मशील रेवतीको मेरी तरफसे धर्मवृद्धिका सन्देशा दे देना।" आचार्यके इस प्रकार कहनेपर, क्षुल्लकने आश्चर्य प्रकट करनेवाले भावसे पुनः निवेदन किया, 'क्या श्रद्धेय आचार्य किसी अन्य सज्जनको कुछ संदेश देना चाहते हैं?" आचार्यने नहीं, कह कर अपनी असम्मति प्रकट की। उनके नहीं कहनेपर क्षुल्लकने अपने मनमें विचार किया, "आश्चर्य है कि आचार्यने एकादशांग के जानकार श्री भव्यसेनके समान मुनिराजको विद्यमानतामे तथा अन्य श्रेष्ठ मुनियोंके रहते हुए सूरत मुनि और रेवती रानीके लिये ही नमस्कार तथा धर्म वृद्धिकी बात क्यों कही? इससे ज्ञात होता है कि इसमें कुछ रहस्य है। जिसका पता वहां जानेसे अवश्य लग जायगा। इस प्रकार मनमें तर्क वितर्क करते हुए चन्द्रप्रभ क्षुल्लकने प्रस्थान कर दिया। वहां पहुंचकर उन्होंने सूरत मुनिसे आचार्यका नमस्कार कहा। मुनिराज बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने चन्द्रप्रभके साथ वात्सल्यका प्रेम प्रकट किया जिससे वे फूले नहीं समाये। किसीने कहा है:—

'नर-जन्म उसका ही सफल है इस अखिल संसारमें।
पेश आते धार्मिकोंसे सरल शिशुके प्यार में॥

इसके बाद चन्द्रप्रभ क्षुल्लक भव्यसेन मुनिके पास गये, श्रद्धासे उन्हें नमस्कार किया। किन्तु उक्त अभिमानी मुनिने नमस्कारके प्रति धर्मवृद्धिकी बात तक नहीं कही। साधारण शिष्टाचारको भूल कर अभिमान दिखलानेसे धिक्कारका पात्र बनना पड़ता है। ऐसे लोग अविचारी होते हैं जो वचनमें भी अपने हृदयकी संकीर्णता

दिखलाते हैं। जो अभ्यागतका सत्कार प्रेमपूर्ण वचनोंसे नहीं कर पाते ऐसे अविचारीसे अन्य प्रकारके सत्कारकी आशा रखना बालूसे तेल निकालनेके समान है। जैन धर्मके शास्त्रोंमें ज्ञानको महिमा का वर्णन समस्त दोपोंसे रहित किया गया है। उसे ही पाकर हृदय परम पवित्र बन जाता है। यह कितने दुःखकी बात है कि उसे प्राप्त कर यदि मिथ्या अभिमान रह ही गया। सच है इसमें पवित्र शास्त्रोंका क्या दोप है ?

जो लोग पाप कर्ममें गर्क रहते हैं उनके लिये सुधा गरल हो जाती है उसे ही 'अमृतमें विप' कहते हैं। इस प्रकार अपने मनमें विचार कर क्षुल्लकने निश्चय किया कि देखें, इनके नामके अनु-सार इनमे तथ्य है या 'नाम बड़े दरशन थोड़े' की उक्ति चरितार्थ करने वाले हैं। उन्होंने उसी स्थानपर कमल फूलोंसे युक्त कर दिया। भव्यसेन महाराज उसे एकेन्द्री समझ तथा लघु पाप जान, रौंदते हुए शौच करने मैदानमे चले गये। शौच कर लेनेके बाद भव्यसेनने ज्योंही कमण्डलु उठाया, उसमें जलका एक बूंद नहीं पाया। भव्यसेन घबडाये—इतनेमें क्षुल्लक महोदय वहां पहुंच गये। भव्य-सेनको जलके लिए चिन्तित देख उन्होंने कहा, "मुनिराज ! आप चिन्तित क्यों हैं ? पासमें एक सरोवर है उसके जलसे शुद्धि कर लीजिये। भव्यसेनने कर्त्तव्यको भुलाकर तालाबके जलसे शरीरकी शुद्धि कर ली। किसोने ठीक ही कहा है:—

मिथ्या-दृष्टि फेरमें पडकर, क्या कुकर्म नहिं करते हैं—
मूरख जनके शात्र ज्ञान तो कुपथ प्रदर्शक होते हैं॥
उनके ज्ञान-चरित्र कभी भी नहीं मोक्ष साधन होते।

जैसे सूर्योदय उल्लू लख दिनमें प्रायः हैं रोते॥
मधुर दूध तूंबीमें पड़कर, कड़ुवा ही वन जाता है।
ऐसे ही, इनमें न भव्य जिन धर्म-भाव दिखलाता है॥

रानी रेवतीकी परीक्षा।

भव्यसेनकी परीक्षा करनेके बाद, क्षुल्लकने रानी रेवतीकी परीक्षा लेनी चाही। वस, उसने कमलका आसन ग्रहण कर हाथोंमें वेद ले चतुर्मुख वाले ब्रह्माका वेष वनाकर नगरसे वाहर पूरव दिशाके जंगलमें अपना आसन जमाया। राजा भव्यसेन ब्रह्माके आगमनका सुसंवाद ज्ञातकर, अन्य नगर निवासियोंके साथ वहां गया, उसने वने हुए ब्रह्माके चरणोंमें भक्ति-भावसे नमस्कार कर प्रसन्नता प्राप्त की। उसने अपनी रानी रेवतीसे ब्रह्माके पास दर्शनार्थ चलनेकी वात कही किन्तु, वह क्यों जाती? वह सम्यक्त्वसे विभूषित थी, जिनेन्द्र महाप्रभुकी अनन्य सेवक थी, उसने वहाँ जाने से साफ इनकार कर दिया। राजाके वहुत अनुरोध करनेपर, उसने कहा, "नाथ! पवित्र जैन धर्म-शास्त्रमें, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र तथा मोक्षको देने वाला सच्चा ब्रह्मा श्री आदि जिनेन्द्र को ही कहा है, तव संसारमें दूसरा ब्रह्मा हो नहीं सकता। इसलिए मेरा यही कहना है कि किसी धूर्तराजने झूठे ब्रह्माका वेष वनाकर कपट-जाल विछाया है। महाराज, ऐसे कपटी ब्रह्माके दर्शन करनेके लिये मैं नहीं जाती। दूसरे दिन क्षुल्लकने गरुड़का वाहन, चतुर्भुज धारी, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें लेकर दैत्यारि विष्णुका वेष धर नगरसे दक्षिणमें जाकर आसन जमाया। तीसरे दिन उसने

बैलपर चढ़, शिरपर जटा जूट बाँध, अँगमें राख लपेट विकराल शिवकी मूर्त्ति बना नगरसे पश्चिम दिशामे जाकर अपना आसन ग्रहण किया। चौथे दिन उसने अपनी योग-मायाके प्रभावसे मिथ्या दृष्टियोके मान मर्दन करने वाले, आठ प्रातिहार्योंसे युक्त, निर्ग्रन्थ मान स्तभादिसे युक्त, जगतमे श्रेष्ट भगवान तीर्थंकरका वेष बनाकर, पूर्व दिशामे अपना अड्डा जमाया। वहां अनेकों देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती नमस्कार कर रहे हैं ऐसा प्रदर्शन किया। समस्त नगरमें भगवान तीर्थंकरके आगमनका समाचार बिजलीकी तरह शीघ्र ही फैल गया। सब लोग, जो जहां थे दर्शन करनेके लिये दौड़ पड़े। भव्यसेन भी उनमे सम्मिलित थे। किन्तु भगवान तीर्थंकरके आगमनपर भी जब रानी रेवती वहा दर्शनार्थ नहीं गई तब सब लोग आश्चर्य प्रकट करने लगे। राजा तथा अन्य कई लोगोंने उससे चलनेके लिये आग्रह किया किन्तु वह क्यों जाने लगी? उसने अपने मनमे विचार किया,—"तिर्थंकर देव चौवीस हैं, वासुदेव नव हैं और रुद्र ग्यारह होते हैं तब इस स्थानपर पंचीसवें तीर्थंकर दसवें वासुदेव और बारहवें रुद्र कहांसे आ टपके? उपरोक्त देव अपने कर्मके अनुसार जहा जाना था वहां चले गये, अब यहां नई रचना कैसी, इसमें कोई चाल है। सच है! किसी मयावीने इन्द्र जालकर भोले-भाले लोगोंको भुलावामें डाल रखा है। अतः वहाँ जाना निरर्थक है। इसमें कितनी सचाई भरी हुई है कि वायुसे कहीं सुमेरु पर्वत डिग सकता है! इसके अनन्तर क्षुल्लकने रानी रेवतीको परीक्षा लेनी चाही। उसने अपने उसी वेषमें अनेक रोगों से अक्रान्त होकर मैला कपड़ा पहन उसके राज-भवनमें प्रवेश किया

वह राजभवनमें पहुंचते ही कटे पेड़की तरह जमीनपर गिर पडा। रेवती दौड पड़ी, वह उन्हें उठा कर होशमें लाई। इसके वाद श्रद्धा भक्तिसे उन्हें प्रासुक आहार कराया। जो लोग धर्ममें दृढ़ भाव रखते हैं वे सदा दान देनेमें तत्पर रहते हैं। क्षुल्लक अभी उसकी परीक्षा लेना चाहते थे। अतः आहारके वाद ही उन्होंने वमन कर दिया जिसकी दुर्गन्धिसे वहां रहना मुश्किल हो गया। रानी उसकी ऐसी हालत देखकर अत्यन्त दुःखी हुई, उसने अपने मनमें विचार किया, "हाय मेरे आहार देनेके कारण इन्हें कितना कष्ट हुआ, अतः मुझे धिक्कार है, अपने मनमें इस प्रकार दुःखी हो उसने गरम जलसे उनका शरीर साफ कर अपने मनमें घोर पश्चाताप किया। रेवतीकी ऐसी श्रद्धा भक्ति देखकर क्षुल्लकने अपना असली रूप प्रकट कर इस प्रकार कहा, "आदरणीय गुरु महाराज गुप्ताचार्यको धर्मवृद्धि। तुम्हारा कल्याण साधन करे और मैंने अपनी यात्रामें तुम्हारे नामसे जहाँ २ श्री जिनेश्वरकी पूजा की है वह भी तुम्हें शुभ प्रदान करे। श्रेष्ठ देवी! आज मैंने परीक्षा द्वारा तुम्हे अमूढ़-दृष्टिमें दृढ़ पाया जिसके द्वारा मनुष्य भवसागरको सहज हीमें पार कर जाता है। देवी, तुम्हारा सम्यक्त्व त्रिभुवन भरमें अनुपमेय है, ऐसा कौन है जो उसका वर्णन कर सकता है? इस प्रकार रानी रेवतीकी प्रशंसा कर वे वहासे चल पड़े। इसके अनन्तर, राजा वरुणने अपने पुत्र शिवकीर्तिको राज्य भार सौंप, संसारी मोह-ममता छोड़ साधुका वेष धर लिया। वे कठिन तपस्याकर समाधि-मरण द्वारा माहेन्द्र स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए। महारानी रेवतीका रोम २ जैन धर्मके पवित्र रंगमे रंग चुका था, उनने कठिन

तपकर ब्रह्मस्वर्गमें महर्द्धिक पद-ग्रहण किया। अतः पाठको! यदि आप भी स्वर्ग-मोक्षका सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो रानी रेवतीके समान मिथ्यात्व छोड़कर परम पवित्र जैन-धर्मकी शरणमें आइये जिसे अनेकों देव, विद्याधर तथा राजे महाराजे ग्रहण कर मोक्षाधिकारी होते हैं।

भक्त जिनेन्द्रकी कथा।

---

(१०)

जैन धर्म निर्दोष सदा है कौन सदोष बनायेगा?
मूरख पागल मीन-मेखकर अपना धर्म गंवायेगा॥
पित्त-कोप वाले ज्वर रोगी पयको कडुवी कहते हैं।
अत: जिनेन्द्र भक्तकी गाथा,का शुभ वर्णन करते हैं॥

सौराष्ट्र देशके, पाटलीपुत्रमे आजकल जिसे पटना कहते हैं, जहां की पवित्र भूमि भगवान नेमिनाथके जन्मसे आज भी प्रख्यात है, उसी नगरमे, राजा यशोध्वज राज करते थे। उनकी सुशीमा नामक बड़ी सुन्दर रानी थी, उसके सुवीर नामका एक पुत्र था। सुवीर अपनी माताके पापोदयके कारण दुर्व्यसनी तथा चोर हुआ। जिन्हे खराब योनिके दु:ख भोगने पडते हैं, उनका जन्म यदि अच्छे कुलमें भी हो तो वे अपने माता-पिताको सुख देनेके स्थानपर घोर कष्ट पहुंचाते हैं।

भक्तकी उदारता।

उन दिनों, गौड देशके अन्दर, तामलिप्ता नामक पुरीमें सेठ जिनेद्र भक्त रहते थे। वे अपने नामके समान भगवान जिनेन्द्रके भक्त थे। उनका सच्ची सम्यग्दृष्टि, तथा श्रावक धर्मका सतत पालन अनुकरणीय रहा। सेठने अनेकों विशाल जैन मंदिर बनवाये, पुराने जिनालयोंका उद्धार करा कर, चारो संघोंको प्रचुर दान देकर अपनी महान् धर्म भक्तिका परिचय दिया। सम्यग्दृष्टियोंमें सर्व श्रेष्ठ जिनेन्द्र भक्तका भवन सात मंजिला था। सेठने भवनकी अंतिम मंजिलपर जैनमन्दिरका निर्माण कराया था, उसमें भगवान् पार्श्वनाथ की दिव्य मूर्त्ति थी। मूर्तिके ऊपर तीन रत्नजड़ित छत्र शोभित थे। उसके ऊपर एक बहुमूल्य रत्न जड़ा हुआ था जिसका नाम वैडूर्य मणि था। सुवीरने उक्त-बहुमूल्य मणिका चर्चा सुनी। एक दिन उसने अपने चोर साथियोंको बुलाकर कहा,—"मित्रो! क्या तुम लोग नहीं जानते कि सेठ जिनेन्द्र भक्तके मन्दिरमें एक वेश कीमती मणि लगा हुआ है? तो क्या कोई उसको चोरी कर सकता है?" सूर्यक नामक चोरसे बैठा रहा नहीं गया, उसने सबसे प्रथम जबाव दिया,—"अरे, चैत्यालयसे मणि चुराना कौनसी बहादुरी है, यदि देवेन्द्रके सिरपर वह मणि रहे तो मैं ला सकता हूं। जो जितना ही अधिक पापी होता है उसके पापकी मात्रा उतनी ही बढ़ी चढ़ी रहती है। सूर्यक चोर सेठके मन्दिरसे, मणि चुरानेके लिये चल पड़ा। उसने नकली ब्रह्मचारी का वेष बनाया। वह व्रत, उपवासादि करनेसे दुर्बल हो रहा था। अनेक देशमें भ्रमण करता हुआ, तामलिप्सा नगरीमें जा पहुंचा। जिस समय सेठ जिनेन्द्र

भक्तने ब्रह्मचारी (नकली) के आगमन की बात सुनी, वे सच्चे धर्मात्मा थे—उस धूर्त्त ब्रह्मचारीके पास जा उसे प्रणाम किया। वह, उपवास रहनेके कारण दुर्वल हो रहा था जिससे उसपर सेठजी की अत्यधिक श्रद्धा हो गयी। सेठ, आदरसे उसे अपने महलमें ले आये। किसीने ठीक ही कहा है,—

"बड़े २ विद्वानों तक जिसको चालोंमें फँस जाते।
साधारण जन धूर्त्तराजसे, कैसे पिंड छुड़ा पाते॥"

धूर्तराज ब्रह्मचारी चैत्यालयमें जाकर उक्त बहुमूल्य मणि देख फूला नहीं समाया। जिस प्रकार सोना चुराने वाला सुनार अपने सामने किसीको सोना ले आता हुआ देखे उसी प्रकार उक्त मणिके देखनेसे सूर्यक चोरकी दशा हुई। भक्तराजने ब्रह्मचारीके ऊपर पूर्ण विश्वास कर उसके ऊपर अपने विशाल चैत्यालयकी रक्षाका भार सौंप समुद्र यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। उक्त चोरकी पांचों अंगुलिया घीमें पड़ गयीं। उसने आधी रात्रिके समयमें धीरेसे मूर्ति के ऊपरसे मणि चुराकर प्रस्थान किया। यद्यपि, वह कपड़ेमें मणि छिपाकर तेज़ीसे जा रहा था, किन्तु उसकी दिव्य ज्योति कपड़ा छेद कर बाहर दिखलायी देने लगी। पहरेदार ब्रह्मचारीके कपड़ेके भीतर मणि देख उसे पकड़नेके लिये दौड़ पड़े। ब्रह्मचारी बड़ी तेजीसे भागा पीछेसे पहरेदार, पकड़ो २ चोर मणि लेकर भागा जाता है" कहते हुये उसका पीछा करने लगे। वह शरीरकी कमजोरीके कारण भागनेमें असमर्थ रहा, उसे सिपाही पकड़ना ही चाहते थे, तब तक वह जिनेन्द्र भक्तके पास जा रक्षा कीजिये, बचाइये' कहकर उनके पैरों पर गिर पड़ा भक्तराज, हाल सुनकर तथा उसके हाथमें मणि देख

समझ गये कि यह ब्रह्मचारीके पवित्र वेषमें चोरी करता फिरता है, किन्तु उसे शरणमे आया देख उन्होंने सिपाहियोंसे कहा, "तुम लोगोंने क्या किया ? जो एक सच्चे तपस्वीको चोर बनाया। मैंने इनसे मणि ले आनेको कहा था, कम अक्ल वालो, तुमने बड़ा अनर्थ किया। सेठकी झिड़की सुनकर सिपाही नतमस्तक हो चले गये। इसके बाद भक्तराजने उसके हाथसे मणि लेकर विनम्र शब्दोंमें कहा,—"आश्चर्य है कि तुम पवित्र वेष धारण कर उसे कलंकित कर रहे हो। दुःख है तुम्हारे पाप कर्म पर, तुम्हारा ऐसा दुष्कर्म करना कितना निंदनीय तथा घृणास्पद है। तुमने दुर्लभ शरीर पाकर उस पर कलंक लगाया है। याद रक्खो, तुम अपने दुष्कर्मके कारण, घोर नर्कका दुःख भोगोगे। पापियोंके लिये यह उक्ति ठीक है:—

न्याय मार्गको तजकर पापी, बुरे कर्म अपनाते हैं।
भवसागरमें पड़कर वे ही, बहुत काल दुख पाते हैं॥
पाप-पथपर चलकर पापी, घोर यातना सहते हैं।
'बुरा कर्म तज, सत्य मार्ग गह, यही शास्त्र, ऋषि कहतेहैं॥

देखो तुम्हारे समान बुरा कर्म करने वाले अनन्त कष्ट भोगते हैं। भला, सोचोतो सही, अपने दुर्लभ मानव तनको ऐसे दुष्कर्म द्वारा क्यों नाशकी खाईमें झोंकते हो ? अभीसे चेत जाओ, आत्म-कल्याणकर अपना उद्धार करो, नहीं तो नरकमे जाकर तुम्हारी बड़ी बुरी दशा होगी। इस प्रकार उक्त चोरको आत्म कल्याणका पवित्र उपदेश देकर जिनेन्द्र भक्तने उसे भेज दिया।" भव्य पुरुष इसी प्रकार पापियोंको पवित्र उपदेश देकर कल्याण करते हैं। सच है, पवित्र जैन-धर्मकी निर्दोशिताके ऊपर जो लोग दोष लगाते हैं वे

पित्तसे कुपित ज्वराक्रांत रोगोके समान, मीठे दूधको भो कडुआ कह दूर फेंक देते हैं।

वारिषेण मुनिकी कथा।

(११)

वारिषेण मुनि तप कर कैसे महात्मा पद पाते हैं।
वे भगवन के भक्ति-भावमें, ओत प्रोत हो जाते हैं॥
जो सम्यग्दर्शनके स्थिति करण अंगको पूर्ण किया।
कठिन तपस्या करके अपने कर्म रोगको चूर्ण किया॥

कृपालु पाठक ! मैं (लेखक) जिन दिनों की कथा लिख रहा हूं—उन दिनों समग्र भारतमे मगध-साम्राज्य, उसके सम्राट् महाराजाधिराज श्रेणिकका प्रवल-पराक्रम दिग्दिगान्तर तक फैल गया था। राजगृह उसी विशाल-सम्राज्य की राजधानी थी। उसके शासक थे सम्राट् श्रेणिक। वे राजनीति शास्त्रके धुरन्धर आचार्य थे। उनकी उदारता प्रसिद्ध थी, वे सम्यग्दृष्टि थे। इस प्रकार उनकी रानी चेलनी सती-शिरोमणि-स्त्री-रत्न थी। वह भी सम्यक्त्व धारण किये हुए थी। उसी विदुषी रानीके वारिषेण नामक पुत्र हैं जो हमारी कहानीके नायक हैं।

प्राण दण्डसे रक्षा।

धर्मवीर वारिषेणके गुणोंकी क्या प्रशंसा की जाय। वे श्रावक थे, तथा गुणोंके भण्डार। एक दिन की वात है कि मगधसुन्दरी

वेश्या, राजगृहके उद्यानमें सैर सपाटा करने आयी थी। उद्यानमें ही उसकी नजर, सेठ श्रीकीर्तिके गलेके हार पर पड़ी। वह (वेश्या) हार देख कर मोहित हो गयी। उसने मनमें हार लेनेका प्रण कर लिया अपने प्रेमी (चोर) को आया देख वेश्या अपना चेहरा उदास कर एक ओर बैठ रही। उक्त चोरने अपनी प्रेमिकाको इस प्रकार उदास देख कर चौंक कर कहा,—"प्रिये आज मैं तुझे उदास देख रहा हूं, इसका क्या कारण है? तुम्हे उदास देखकर मेरा मन घबड़ा रहा है, प्यारी! जल्दी अपनी चिन्ता प्रकट करो।" मगधसुन्दरीने उसकी तरफ अपनी तिरछी नजर कर भर्रायी हुई आवाजमे कहा,—"मैं जानती हूं कि तुम मुझे सच्चे रूपमें प्यार नहीं करते, तुम्हारा प्यार बनावटी है। प्यारे! यदि, तुम मुझे प्यार करते हो तो मेरा एक कहना करो। आज मैंने बगीचेमेंसे श्रीकीर्ति के गलेमें एक बहु मूल्य सुन्दर हार देखा है, मैं उसे (हार) चाहती हूं। जब वह हार लाकर मुझे दोगे तो मैं तुम्हे अपना सच्चा प्रेमी समझूंगी अन्यथा यही जानूंगी कि तुम्हारा प्रेम बनावटी है।" वेश्याकी कठिन प्रतिज्ञा की बात सुनकर विद्युत चोरका माथा ठनका। परन्तु, वह था वेश्यागामी यदि, उसकी बात पूरी नहीं हुई तो, उसके प्रेमसे वंचित हो जाना पड़ेगा। उसने वेश्याको धीरज देकर हार चुरानेके लिये प्रस्थान किया। विद्युत चोर चालाकीसे सेठके गलेसे हार चुरा कर तेजीसे चला। किन्तु, वह हारकी चमकती ज्योति कहां छिपाता। पहरेदारोंने उसके हाथमें ज्योति देख, उसे चोर समझ पकड़नेके लिये पीछा किया। अपने पीछे सिपाहियोंको दौड़ता देख विद्युतचोर तेजीसे भाग कर श्मशानमें चला

गया। वह वारिषेणको देख कर वहीं हार फेंक एक ओर छिप रहा थोड़ी देरके बाद, सिपाही दौड़ते २ आये। वारिषेणके पास हार देख सिपाहियोंने कहा,—"महाशय, चोरी छिपानेकी कैसी तरकीब निकाली, आप चाहे कोई हों हम मालिकके खैर ख्वाह सच्चे नौकर हैं हमारे हाथसे आपका छुटकारा नहीं हो सकता। इस प्रकार कह वे वारिषेणको बांधकर महाराज श्रेणिकके पास ले गये। महाराज, अपने पुत्रको चोरीमे पकडा हुआ देख, क्रोधसे दांत चबाने लगे। उनके नेत्र क्रोधसे रक्त वर्ण हो गये। महाराज श्रेणिकने तीखे स्वरमे गर्ज कर कहा,—"नालायक, धोखे बाज कहीं का। चोरी करते शर्म नहीं आई। एक तरफ श्मशानमे जाकर तपस्या करता है, मगर लोगोंके घरमें चोरी करता है। कुलमें दाग लगानेवाला पापी! आज तेरे धर्मकी कलई खुल गई। पापी, पाप करनेमें क्या २ ढ़ोंग रचा करते हैं? ओ बदकिस्मत पुत्र! मैं तुझे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। मुझे क्या खबर थी कि तू ऐसा नीच निकलेगा। मेरे लिये, इससे बढ़ कर और कौन सी दुखदायी बात होगी। अत. नालायक! पापी! चोर पुत्रका जीवित रहना खतरेको अपनाना है। पापी, अपने दुष्कर्मका फल अभी, अपनी मृत्युसे चख। तेरा जीना हमारे लिये तथा प्रजाकी भलाईके लिये हानि-प्रद है। सिपाहियो! इसे जल्लादके हाथों सौंप कर तलवार की घाट उतरने दो। महाराजकी ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर सभी थर्रा गये। अपने प्रिय पुत्रको प्राणदण्ड, आश्चर्य है! इसप्रकार कह कर लोग तरस खाने लगे। मगर, सबके सब मजबूर थे। किसीने एक शब्द भी अपने मुंहसे नहीं कहा। वारिषेण, कत्ल करनेके लिये श्मशानमें ले जाये गये।

तलवारका वार विफल।

जल्लादने उनकी गर्दन पर कसकर अपनी तलवार चलायी। मगर आश्चर्य कि उसका वार विफल हुआ। जल्लादकी तलवार वारिषेणकी गर्दनपर फूलके समान मालुम हुई। उधर जल्लाद महान आश्चर्यमें हो गये। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था। वे सोचने लगे, यह क्या हो गया? तलवारका वार खाली जाय, महान आश्चर्य है। किन्तु वारिषेणके पुण्य-प्रतापने उनकी रक्षा कर ली है किसीने ठीक ही कहा है:—

पुण्यकी महिमा अगम है, पुण्य सुखका सार है।
अग्नि जल, होता उदधि थल, शत्रु मित्राचार है॥
विपति संपति, गरल अमृत, वन रहे पलमें जहां।
कष्टके उद्धार मे इक पुण्य रक्षक है महा॥
दान, व्रत, जिन-भक्ति पूजा सद्विचार पवित्र हैं।
आचार शुभ करना सतत पुण्यात्माका मित्र है॥
झूठ हिंसा ही जगतमे पापका आचार है।
सत्य का पूजन करो, बेड़ा तुम्हारा पार है॥

पश्चात्ताप।

इस प्रकारकी अलौकिक घटना देखकर सबके मुंहसे एक ही बार 'धन्य धन्य' का शब्द निकल पड़ा। देवताओंने स्वर्गसे आकर वारिषेणके ऊपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की, उस समय, उनके जयजयकारसे आकाश गूंज उठा। राजगृहवासी, ऐसी आश्चर्य जनक बात सुनकर, धर्मात्मा वारिषेणके शुभ दर्शन करनेके लिये

जो जहाँ थे काम छोड़ दौड़ पड़े। नगर निवासियोंने विनम्र शब्दों में कहा, "वारिषेण, तुम्हारा पवित्र जीवन धन्य है। यदि संसारमें कोई साधु, तपस्वी या महात्मा हैं तो तुम ही हो। वारिषेण, तुम ही भगवानके सच्चे भक्त हो, पवित्र आत्मा तुमने ही जैन धर्मके पवित्र सिद्धान्तोंका सचाईसे पालन किया है। हे पुण्य देव! हम किन शब्दोंमें तुम्हारा गुणानुवाद गावें। तुम धन्य हो, तुम्हारी जय हो, पुण्य कार्य द्वारा सब कुछ सम्भव है। उधर महाराज श्रेणिक अपने पुत्र वारिषेणके सम्बन्धमे आश्चर्य जनक घटना सुनकर-पश्चातकी ज्वलित ज्वालामें जलने लगे। उनके मुंहसे एकाएक यह उक्ति निकल गयी:—

जो मूरख आवेश-भावमें, बिना विचारे कर जाते।
हैं पछताते, दुःख उठाते जगमे हँसी सहज पाते॥

इस प्रकार अपने मनमें दुःखी होकर श्मशान भूमिमें आये जहां उनका प्रिय पुत्र, पुण्यात्माकी शाक्षात मूर्ति बनकर अपनी अलौकिक प्रतिभा दिखा रहा था। अपने प्रिय पुत्र वारिषेणको श्मशानमें देखकर पिताका हृदय वात्सल्य प्रेमसे गद्गद् हो गया। आंसुओंने आंखोंकी राह बहना शुरू किया। महाराजने वारिषेणको छातीसे लगाकर रोते हुए कहा,—"पुत्र! मुझे क्षमा प्रदान करो। मैं उस समय क्रोधमे पागल बन गया था, जिससे न्याय-अन्यायकी विवेचना नहीं कर सका। हाय, मैंने तुम्हारे साथ बड़ाभारी अन्याय किया है, उसी पापसे मेरा हृदय धू-धूकर जल रहा है। पुत्र, अपने क्षमादान रूपी जलसे मेरा जलता हृदय शान्त करो। देखो, मैं शोक-समुद्रमें डूब रहा हूं, मुझे डूबनेसे बचाओ। पुत्र, मेरा हाथ

पकड़ मेरी रक्षा करो।" अपने माननीय पिताजीको शोक-संतप्त वाणी सुनकर, वारिषेणने हाथ जोड़कर विनीत शब्दोंमें कहा:— पिताजी, आप यह क्या कह रहे हैं? इसमें शोक करनेका क्या कारण है? आपको प्रसन्न होना चाहिये कि आपने मुझे दण्ड देकर अपने कर्तव्य धर्मका पालन किया है। पिताजी संसारमें कर्तव्य पालनसे बढ़कर कोई धर्म नहीं। आपने उसे पूर्णकर अपने पदकी मर्यादाकी रक्षा कर ली है। पिताजी, यदि आप मुझे प्रिय पुत्र होनेके कारण, निर्दोष होनेपर भी दण्ड देनेसे बाज आते, उस समय आप अपनी प्यारी प्रजाकी नजरोंसे गिर जाते। प्रजा क्या सोचती? वह यही समझती कि राजाने अपने पुत्रको दण्ड न देकर न्यायका गला घोंटा है। आपके व्यक्तित्व, फल तथा न्यायके ऊपर घोर कलङ्कका टीका लगता। मैं यद्यपि निर्दोष था, किन्तु प्रजासे क्या सम्बन्ध? वह तो न्याय अन्यायकी बात सुनती नहीं पिताजी आप यदि ऐसे महत्वपूर्ण समयमें कर्तव्यके कठोर पथसे विचलित हो जाते तो हमारे पवित्र कुलमें सदाके लिए कलङ्कका टीका लग जाता। आज मैं आपके कर्तव्य पालन, आपकी न्याय निष्ठा तथा सत्य भावनापर फूला नहीं समाता। पिताजी, अपने हृदयसे शोक सन्ताप दूरकर शान्त हो जाइये। आप जान लें कि मेरे पापके उदयसे ही, निरपराध होते हुए भी मुझे कष्टके फन्देमें फंसना पड़ा है। मेरे हृदयमें इसके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं है; क्योंकि एक कविने कहा है:—

कर्म करनेका अशुभ शुभ, फल सदा मिलता यहीं।
कर्म जो करता यहां पर फल वही चखता यहां॥

सच है ऐसे उदार हृदय वाले, अपनी सहृदयता, नम्रता, वचन प्रियता और हृदय महानताके कारण धन्यवादके पात्र समझे जाते हैं। अपने प्रिय पुत्रके उदार प्रिय वचन सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके हृदयसे शोकका संताप शांत हो गया उन्होंने सत्पुरुषोंके वचन कहे:—

चन्दनको तुम जितना रगड़ो प्रिय सुगन्ध फैलाता है।
अगरु अग्नि कुन्डमें जलकर अपना गन्ध लुटाता है॥
सत्पुरुषोंको दुर्जन जितना कष्ट-यातना देते हैं।
शान्त हृदय सज्जन उपकारोंसे निज बदला लेते हैं॥

चोरने क्षमा मांगी

इधर विद्युत चोर उसी स्थानमें छिपकर वारिषेणका अलौकिक चमत्कार देखता था। अन्तमें उसने डरकर अपने मनमें विचार किया कि इस समय उसके प्राणोंकी रक्षा हो सकती है। नहीं तो पीछे महाराज कठोर दण्ड देंगे इसलिये, उनसे सच्ची बात कहकर प्राण-दान मांगना लाभप्रद समझा। इस प्रकार अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर उसने निर्भय होकर महाराजके सामने जाकर समस्त घटना कह सुनाई। जो यों है:—महाराज! वह पापी मैं हूं जिसने वेश्याके जालमें फंस सेठके घरसे हारको चोरी की थी। महाराज मैंने वारिषेणके आगे हार फेंककर अपनी रक्षा की है। अतः हे महाराज, मैं दोषी हूं, किन्तु, मैं पश्चाताप करता हूं मुझे क्षमा-दान मिले, मैं भविष्यमें पुनः पाप-कर्म नहीं करूंगा। विद्युतचोरकी स्पष्ट बात सुनकर महाराजने उसे क्षमा-दान देकर अपनी विशाल सहृदयताका

परिचय दिया। इसके वाद उन्होंने वारिषेणसे कहा, "पुत्र, अब घर चलो, नहीं तो तुम्हारे वियोगमें तुम्हारी माता रोती होगी।" अपने पिताकी वात सुनकर वारिषेणने आदरके साथ निवेदन किया, 'पूज्य पिताजी ! इसके लिये मुझे क्षमा करें, मैं अब घर जाकर ससारके बन्धनमे जकडना नहीं चाहता। मैं संसारकी लीला देख चुका हूं। अब मैं जंगलमें जाकर मुनि होकर जैनधर्मकी सेवामे रहकर आत्म कल्याण करूंगा। जमीनपर सोऊंगा, हाथपर खाऊंगा। पिताजी, मैं संसारके मोहमे फंसना नहीं चाहता, सासारिक लीलायें देखकर मेरी निर्दोष पवित्र आत्मा कांप उठती है। मैं उसके कष्टोंको देख कर घवड़ा गया हूं अतः आप मुझे घर चलनेको न कहें, मैं तो तपस्वी वन कल्याणके मार्गमें चलना पसन्द करता हूं। किसीने सच कहा है:—

करमे दीपक लेकर कोई, कूंएमें गिर जायेगा।
कहदो ? उस दीपकसे वह जन, कैसे लाभ उठायेगा॥
जगकी लीला देख अगर मैं, हो अजान फँस जाता हूं।
दो अक्षरका ज्ञानी होकर, मूरख पदवी पाता हूं॥
'क्षमा करें लाचार हुआ मैं, अब न फंसूगा कहता हूं।
दया करो हे पूज्य पिताजी, वचन उलंघन करता हूं॥

इस प्रकार कहकर वारिषेण वहासे चल दिये। उन्होंने श्रीसूरदेव मुनिसे दीक्षा ले ली। अब उनके जीवनमे नया अध्याय शुरू हो गया। वे कठिन तपस्या द्वारा, अपने निर्मल चरित्रका दृढ़तासे पालन करने लगे। एक दिन वे देशके समस्त भागोंमें, धर्मोपदेश करते हुये पलाशकूट नामक नगरमें जा पहुंचे। उस नगरमें, महा-

राज श्रेणिकका मंत्री रहता था, उसके पुत्रका नाम पुष्पडाल था। वह दया, दान, एवं सद्धर्ममे लगा रहता था। जिस समय उसने वारिषेण मुनिको देखा, उसने श्रद्धाके साथ नवधा भक्तिसे उन्हें प्रासुक आहार दिया। आहारके वाद, मुनि चलने लगे तब मंत्री-पुत्र शिष्टाचारके नाते उनके साथ होलिया। कुछ दूर जानेपर, उसने अपने मनमे विचार किया कि मुनिराज मुझे लौट जानेके लिए अवश्य कहेंगे। किन्तु, जब मुनिराजने उससे कुछ भी नहीं कहा। तब, वह जल्दी घर लौट जानेका उपाय करने लगा। इस विचारसे उसने मुनिसे कहा, 'देखिये, यह वही तालाब है जिसके आम्र वृक्षके नीचे हम लोग बाल क्रीडा किया करते थे। मुनिराज, देखिये हम लोग उस बड़े मैदानमें पहुंच गए जहांपर हमने अपने बाल्य-कालके कितने वर्ष खेलमे बिताए थे। वह इन बातोंसे मुनिका ध्यान इस विषयकी ओर आकर्षित करना चाहता था कि वह घरसे बहुत दूर चला आया है उसे लौट जानेकी आवश्यकता है। किन्तु, मुनिराज उससे घर लौट जानेके लिए क्यों कहने लगे? वे रास्तेमें वैराग्यकी चर्चा करते रहे जिसके प्रभावसे प्रमुदित होकर पुष्पडालने मुनिवेष धारण कर संयम पूर्वक रह शास्त्रोंका अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु, उसके अन्तस्तलसे भोग विलासकी कामना तृप्ति नहीं हुई थी, वह रह २ कर अपनी स्त्रीकी याद किया करता। आचार्योंने कहाहै :—

धिक्कार है उस कामको उस भोगको धिक्कार है।
मोहमें फंस सुजन चलते कुपथमें धिक्कार है॥
लोभकी दरयामें डुबकी जो लगाते हैं यहाँ।
नाशकी खाईमें गिरते, आत्म-हित करते कहां॥

इस प्रकारकी जहालतकी दशामें पड़े हुए उसे बारह वर्ष हो गये। इसके बाद गुरुने उसकी तप साधना सफल होनेके विचार से, उसे तीर्थ भ्रमण करनेका उपदेश दिया। उसके साथ गुरु महाराज भी चले। वे यात्रा करते हुए एक दिन भगवान वर्धमानके समवशरणमें गये। वहांपर गन्धर्वगण भगवान्की वन्दना कर रहे थे, अतः हम लोगोंने उन्हे नमस्कार किया। उसी समय भगवान्ने कामके विरुद्ध यह पद्य कहा:—

मइल कुचेली दुम्मणी णाहे पवसियएण।
कह जीवे सइ धणियधर उब्भते विरहेण॥

अर्थात:—

स्त्री चाहे मैली हो या वह हो अरे कुचेली।
चाहे आप उसे कह दें यह है निजमनकी मैली॥
पति-वियोगमे, वह क्या जीती, दर-दर मारी फिरती।
वनमे पर्वतकी खोहोंमें काम विवश! हो मरती॥

उपरोक्त पद्य सुनते ही पुष्पडाल मुनिके कामुक हृदयमें भोग-विलासकी तीव्र वासना प्रज्वलित हो गयी। वे उसी समय अपने नगरकी तरफ चल पड़े, वारिषेण मुनि उसके मनकी बात ज्ञात कर पीछे २ चले। जिस समय गुरु शिष्य अपने नगरमें पहुंचे, रानी चेलनाने अपने मनमें विचार किया कि मेरा पुत्र तपसे विचलित होकर यहां आया है, नहीं तो यह क्यो आता? इस प्रकार विचार कर उसने परीक्षा लेनेके लिये दो आसन रक्खे। एक काठका और दूसरा रत्न जड़ित था। वारिषेण मुनि काठके आसनपर बैठ गये। जो सच्चे तपस्वी हैं वे शुद्धाचरणका सदा विचार रखते हैं।

इसके वाद वारिषेण मुनिने अपनी माताका सन्देह दूरकर अपनी समस्त स्त्रियोंको अपने सामने बुलाया। उसी समय उनकी सब स्त्रियां शृङ्गार कर सामने आकर हाथ जोड खड़ी हो गईं। उस समय वे अपनी सुन्दरतामें देव-सुन्दरियोंको मात कर रहीं थीं, उसी समय पुष्पडाल मुनिको सम्बोधित करते हुए वारिषेण मुनिने कहा, "देखो, ये मेरी स्त्रियां हैं, यही मेरा राज्य वैभव है, यदि संसारके भोगमें रहना चाहते हो तो तुम इन्हें स्वीकार कर विषय भोग भोगो। मुनिकी चौंका देनेवाली वात सुनकर तथा उनका इस प्रकार का कर्तव्य देखकर पुष्प डालने लज्जासे अपना सिर झुका लिया। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया,'गुरुवर! आप ही सच्चे तपस्वी मुनि हैं। आपने विषय-भोग रूपी भूतको भगा दिया है। आपने ही पवित्र जैन धर्मके तत्वोंको समझा है। प्रभो, आपके समान ही त्यागी महात्मा संसारके विषय-भोगोंसे परे रह वैराग्य धारण करते हैं। ऐसे दुर्लभ महात्माओंके लिये संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो अलभ्य हो। देव मेरे समान कौन मूरख है जो तपके समान उत्कृष्ट मौलिक रत्न पाकर भी स्त्रीके लोभ-जालमें फंसा हुआ है। प्रभो, आपने वारह वर्षतक कठिन तपस्या कर अपना अमूल्य जीवन धन्य वनाया, वहाँ मैंने उतना समय व्यर्थमें खोया जिससे आजतक भी मेरे कलुषित हृदयमें संसारी मोह न जा सका। देव, मैंने वड़ा भारी अपराध किया है, अतः मेरे पापको प्रायश्चित्त द्वारा दूर कर मेरा अन्तःकरण पवित्र कीजिये। वारिषेण मुनि समझ गये कि अब इसे अपने कर्मोंके लिये पश्चाताप हो रहा है, इसका हृदय पवित्र हो गया, चलो, भाव परिवर्तनके साथ २ कितना सुन्दर

परिणाम निकला। इस प्रकार सोचकर उन्होंने कहा,—धर्मवीर! तुम्हें अधीर नहीं होना चाहिये। कभी २ ऐसा देखा गया है कि पाप कर्मके कारण बड़े २ विद्वान तक किंकर्तव्य विमूढ हो जाते हैं। तुम पवित्र राहपर चले आये, यही कितनी शुभप्रद बात है।

सच है, 'बुराईसे भी भलाई हो जाती है।' इस प्रकार कहकर उन्होंने पुष्पडाल मुनिका आवश्यक प्रायश्चित्त कर उन्हें धर्म मार्गमें दृढ़ किया। वे, गुरु महाराजकी कृपा कोरसे अपना आन्तरिक हृदय शुद्ध कर भीष्म प्रतिज्ञामे संलग्न हो रहे, उनके हृदयमें वैराग्यका भाव पूर्ण रूपेण स्थिर हो गया, वे अपने शरीरकी तनिक भी परवा किये विना, भूख-प्यास तथा अन्य कठिनसे कठिन कष्ट सहन कर पवित्र तपस्यामे लीन हो रहे। अतः जितने धर्मात्मा होते हैं वे किसी भी पथ-भ्रष्ट धार्मिक पुरुषको पवित्र धर्म मार्गमें वद्ध परिकर करते हैं। सच है, धर्मात्माका कर्त्तव्य है परोपकार करना, पथ-भ्रष्टको धर्म-मार्ग प्रदर्शन करना जिसके द्वारा वे स्वर्ग मोक्ष प्रदाता धर्म-वृक्षका मूल सींचते हैं। संसारके जीवोंके शरीर सम्पत्ति तथा कुल परिवार नाशमान है, जब इनकी रक्षा करनेसे सुखकी प्राप्ति होती है, तब, जिस धर्मके द्वारा अनन्त, अक्षय सुख मिलता है उसकी रक्षा करना कितना महत्वपूर्ण है, अतः जितने धर्मात्मा पुरुष हैं वे दुःखप्रद अहङ्कार छोड, भव-सागरको पार करने वाले पवित्र धर्मकी सेवा करना अपना महान कर्त्तव्य समझते हैं। पाठकगण! श्री वारिषेण मुनिका समस्त जीवन श्री जिन भगवानकी सेवामें ही व्यतीत हुआ, उन्होंने धर्म-मार्गसे विचलित होने वाले पुष्पडाल मुनिको दृढ़ कर दिया। वे ही धर्मात्मा

राजा श्रेणिक रानी चेलनी से बौद्ध गुरुओं को नमस्कार के लिये कहते हैं।

मुझे कल्याणके मार्गमे अग्रसर कर, आत्म-सुख प्रदान द्वारा भव-सागरसे पार करेंगे, यही मेरी कामना है।

विष्णु कुमार मुनिकी कथा।

(१२)

"परम भक्त जिन प्रभुके सेवक, विष्णु कुमार हुए हैं।
वात्सल्य अंग पालन कर, मुनि दुख दूर किये हैं॥
ध्यान मग्न हो कर्म-नाशकर, मोक्ष-धाम सुख पाये।
वे ही भव-सागरसे मुझको, देवे पार लगाये॥

प्रिय पाठक! अवन्ति देशके उज्जयिनी नामक प्रसिद्ध नगरीमे राजा श्रीवर्मा राज्य करते थे। उनके शासनकालमे प्रजा सुखकी नींद सोती थी। उनका जीवन धर्मके पवित्र भावोंसे ओत-प्रोत था। वे न्यायके पक्षपाती थे, अतः उनके राज्य-शासनमे दुराचारियोंकी नाकोंमे दम था। वे प्रवल योद्धा थे, प्रजाके ऊपर केवल न्याय-प्रेमसे शासन करना उनका ध्येय था। राजा श्रीवर्माकी रानी श्रीमती थी। वह अपूर्व सुन्दरी थी। वह दयाकी खान, विद्याकी देवी थी। सबसे बढ़कर उसके हृदयमे दुखियोंके प्रति समवेदना भाव था। वह दुःखियोंके दुःख दूर करनेके लिये, जी जानसे कोशिश करती जिससे वह प्रजाके लिए दयालु महारानी' के नामसे विख्यात थी। उस समय महाराजके दरबारमे वलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि नामक चार महानुभावोंसे एक मन्त्रिमण्डल

बना था। महाराजके चारों मन्त्री अपनी धार्मिक शत्रुताके लिये विख्यात थे। ऐसे पापियोंके साथ रहकर महाराज भयङ्कर पापोंसे युक्त चन्दन वृक्षके समान थे।

मन्त्रियोंकी हार।

एक दिनकी बात है कि ज्ञानी अकम्पनाचार्य देश-विदेशमें अपनी ज्ञान चर्चा सुनाते हुए अपने वृहत संघके साथ जिसमें सात सौ मुनियोंका जमाव था—उज्जयिनी नगरमें आये। आचार्यने अपने निमित्त ज्ञानसे उक्त नगरीकी अवस्था हानिकारक समझी। अतः उन्होंने अपने संघके मुनियोंसे कह दिया था कि कोई राजा या उसके आदमियोंसे वाद-विवाद न करें नहीं तो संघके ऊपर महान विपत्ति आनेकी सम्भावना है। गुरुकी इस प्रकारकी आज्ञा सुनकर समस्त मुनियोंने चुप रहना स्वीकार कर लिया। किसीने ठीक ही कहा है:—

वेही शिष्य प्रशंसा भाजन जो आज्ञा पालन करते।
गुरुमें श्रद्धा, प्रेम-विनयसे आदरके भाजन बनते॥
जो गुरुकी आज्ञाको मन-वच कर्म उल्लंघन करते हैं।
वे ही नीच शिष्य हैं जगमें, निन्दनीय बन रहते हैं॥

जिस समय स्वामी अकम्पनाचार्यके वृहत संघके आनेका समाचार मिला, नगरके अधिकांश लोग, पूजाकी सामग्री लेकर मुनियोंके दर्शनके लिए चल पड़े। उस समय राजा श्रीवर्माने लोगोंको धूम-धामसे एक तरफ जाते देख, अपने मन्त्रियोंसे पूछा। मिन्त्रयोंने कहा,—"महाराज! यहांपर नंगे जैन मुनि आये हुए हैं

जिनके दर्शन करने ये लोग जा रहे हैं।" महाराजने कहा, मन्त्रि-वर! क्या ही अच्छा हो कि हम लोग भी मुनियोंके दर्शन कर कृतार्थ हों, अतः वहां चलकर इनका दर्शन करना आवश्यक है।" महाराजकी आज्ञानुसार, समस्त मन्त्री उनके साथ दर्शन करने गये। महाराजने समस्त मुनियोंको श्रद्धा-भक्तिके साथ नमस्कार किया। किन्तु अपने गुरुकी आज्ञा मानकर, समस्त मुनियोंको महाराजके नमस्कार करनेपर भी धर्मवृद्धि तक नहीं दी। सबके सब मौन रहे। महाराज, मुनियोंको ध्यानमें निमग्न देख, अत्यन्त प्रसन्न हो महलको लौट आये। रास्तेमें मन्त्रियोंने चुगली खानी शुरू की। "महाराज, इन मूर्ख मुनियोंकी चालबाजी देख लो। ये मौनावलम्बनकी आड़में, अपनी पोल खुलने देना नहीं चाहते। सच है, सर्वसाधारण जनता इनके मौनावलम्बनसे यही विश्वास करेगी कि ये बड़े तपस्वी हैं। किन्तु, इन मूर्खोंने मौन रह कर अपनी मूर्खता छिपानेकी अच्छी तरकीब निकाली है। महाराज ये ढोंगी हैं, मूर्ख हैं और सर्वसाधारणको मौनका धोखा देकर ठगने वाले पाखण्डी जो कपट जाल रचकर भोले-भाले धर्मभक्तोंको ठगते हैं।' इस प्रकार मन्त्री महाराजसे मुनियोंकी निन्दा कर रहे थे, इतनेमें उन्हें एक मुनि मिल गये जो नगरसे आहार लेकर संघ में वापस जा रहे थे। उन्हें देखकर मंत्रियोंने व्यङ्ग करते हुए महा-राजसे कहा, "महाराज, देखिये वह मुनि बैलके समान पेट भर कर आ रहा है।" उक्त मुनिने उनकी वात सुनकर जवाब देना निश्चय किया। यद्यपि उनके आचार्यकी आज्ञा थी कि संघका कोई मुनि राजाके किसी कर्मचारीसे वादविवाद न करे। परन्तु उक्त

मुनिने गुरुवरकी आज्ञा नहीं सुनी थी अतः उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि ये महंकारी मालूम होते हैं, इन्हें अपनी विद्याका घमण्ड है, अतः इनके विद्याभिमानको तोड़ना चाहिये, इस प्रकार निश्चय कर उक्त मुनिने कहा, "वृथा मूढ़ किमि गाल बजाई" तुम व्यर्थमें क्यों चुगली खा रहे हो, यदि तुममें आत्मबल है या विद्या का प्रभाव हो तो तुम लोग मुझसे शास्त्रार्थ करो, तभी तुम्हें निश्चय हो जायगा कि कौन बैल है ? मन्त्री क्रोधित हो गये, भला एक साधारण मुनि उनका मान-मर्दन करे । अहंकारमें चूर होकर उन्हों ने मुनिसे शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया । जिस समय मंत्री और मुनिके बीच शास्त्रार्थ हुआ उसी समय उन्हें ज्ञात हो गया कि इनके साथ शास्त्रार्थ क्या करना है लोहेका चना चबाना है।' अन्तमें श्रुतिसागर मुनिने शास्त्रार्थमें मन्त्रियोंको हराकर अपने स्याद्वाद बलकी महिमा प्रकट कर दी । किसीने ठीक ही कहा है:—

जगके अन्धकारको तारागण क्या दूर भगा सकते।
एक दिवाकर तिमिर-राशिको पलमें सहज मेट सकते।।

मंत्रियों की दुर्दशा हुई

इधर श्रुतसागर मुनिने गुरुके पास आकर मार्गका समाचार कह सुनाया । आचार्यने उनकी (मुनि) बात सुनकर खेद प्रकट करते हुए कहा, "हाय, सर्वनाश उपस्थित हो गया । तुमने अपने हाथ से, संघके ऊपर कुठाराघात किया । देखो, तुमने मंत्रियोंसे शास्त्रार्थ कर संघकी इतनी हानि की जिसका वर्णन असम्भव है । अब, सर्व-नाश सामने है । हां, कल्याणका यही मार्ग है कि तुम्हारा जहांपर

शास्त्रार्थ हुआ है वहां जाकर कायोत्सर्ग ध्यानकर समस्त संघकी रक्षा करो। धन्य हैं श्रुतिसागर मुनि जिन्होंने समस्त संघकी रक्षाके लिये हंसते २ कायोत्सर्ग करना स्वीकार कर लिया। वे उसी समय, उस स्थानपर जाकर ध्यानमें संलग्न हो रहे। उधर चारों मंत्री मुनिसे शास्त्रार्थसे हारकर उनकी जान लेनेपर उतारू हो गये। वे उसी दिन रात्रिके समय प्राण लेनेके विचारसे निकल पड़े। इतनेमें मार्गमें ही वही मुनि ध्यानस्थ अवस्थामें मिल गये। मंत्रियोंने अपने मनमें विचार किया कि चलो बड़े भाग्यसे शत्रु मिल गया। अब अपनी मान-हानि करने वालेको इस संसारसे मिटाकर अपने अपमानका बदला लिया जाय। इस प्रकार चारोंने सोचकर मुनिका शिर काट डालनेके लिये उनकी गर्दनपर तलवारका वार किया। किन्तु, धन्य हैं मुनिराज जिनके पुण्य-प्रभावसे पुर-देवीने उसी क्षण आकर, मुनिकी रक्षा कर ली, दुष्ट मंत्रियोंकी मुनिकी गर्दनपर खिंची हुई तलवारें ज्यों की त्यों रह गयीं। उनकी दुष्टताका दण्ड मिल गया। उधर समूचे नगरमें, मंत्रियोंकी दुर्दशाका समाचार बिजली की तरह फैल गया। समस्त नगर-निवासी उन्हें देखनेके लिये दौड़ पड़े। महाराज भी पहुंच गये। सब लोगोंने एक स्वरमें मंत्रियोंको धिक्कारना शुरू किया। सच है जो पापी निरपराध लोगोंको सताया करते हैं वे इस लोकमें उसका बदला अवश्य पाते हैं किन्तु मरनेके बाद वे नरकमें जाकर असह्य दुःखका दन्ड भोगते हैं। अतः महाराजने अपने दुष्ट मंत्रियोंकी दुष्टता देखकर धिक्कारते हुए कहा:—

"दुष्ट मंत्रियो! तुम्हारी दुष्टता मुझे अच्छी तरहसे याद है, अभी उस दिन तुम लोगोंने मेरे सामने ही जगतके उपकार करने वाले

सच्चे मुनियोंकी निन्दा की थी। किन्तु आज मैं देखता हूं कि तुम लोगोंने इन्हीं निर्दोष मुनिकी जानसे मारनेके विचारसे, तलवार उठाई थी। पापियो ! तुम्हारे समान आततायियोंका मुंह देखना तक पाप है, तुम्हारे लिये प्राण-दण्ड देना उचित था किन्तु, मैं तुम्हारे ब्राह्मण होनेके ख्यालसे,—साथ ही तुम्हारे पूर्व पुरुष मंत्री पदपर रह चुके हैं, इस विचारसे मैं तुम्हें प्राण-दण्ड नहीं देता हूं, किन्तु सिपाहियो इन दुष्ट मन्त्रियोंको गधेपर चढ़ा कर, अभी नगरसे ही नहीं वरन् मेरे राज्यकी सीमासे बाहर कर दो।” बस, उसी क्षण महाराजकी आज्ञाके अनुसार, उपरोक्त दुष्ट मंत्री गधेपर चढ़ाकर राज्य सीमासे बाहर कर दिये गये। सच है पापियोंको इसी प्रकार दण्ड मिलना चाहिये। जिस समय लोगोंने जिन धर्मका ऐसा अपूर्व चमत्कार देखा, उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। वे आनन्दके मारे जय-जयकार करने लगे। अकम्पनाचार्यके संघ वालोंके चित्तमे आसन्न विपत्ति टल जानेके कारण शांति हुई। वहांसे उनका संघ दूसरी जगह चला गया।

मंत्रियोंकी हालत सुधरी।

प्रिय पाठकगण! निकाले हुए मन्त्रियोंका भाग्य-चक्र कैसे पलटा खाया उसका वर्णन दिया जाता है। हस्तिनापुर नामक नगरमें, महापद्म नामक राजा राज्य करते थे। उनके दो पुत्र-रत्न थे जिनका नाम पद्म और विष्णु था। एक दिनको बात है कि राजा के हृदयमें, संसार की क्षणभंगुरताके कारण, वैराग्य-भाव उत्पन्न हो गया। राजा महापद्मके लिये, राज्य-सुख दुःखमय प्रतीत होने

लगा, अतः उन्होंने अपने छोटे पुत्र विष्णुकुमारके साथ वनके लिये प्रस्थान किया ! वहाँ पिता-पुत्रने श्रुतसागर मुनिसे दिक्षा ले ली। यद्यपि, राजाने अपने पुत्रको दिक्षा लेनेसे रोकनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु, उस बाल-योगी (विष्णुकुमार) के हृदयमें वैराग्यका भाव पूर्ण रूपेण विद्यमान था जिससे पिताके लाख मना करने पर भी साधु होकर उसने तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों के बाद उन्होंने विक्रिया ऋद्धि प्राप्त कर ली। इधर पद्मराजके राज्य शासनमें, कुम्भपुर नरेशने विघ्न डालना प्रारम्भ किया जिससे राज्यमें सदा अशांति बनी रहती थी। सिंहबलके अधिकारमें एक मज़बूत दुर्ग था जिसके बलपर वह उपद्रव करता और पीछे किलेमें छिप रहता। अतः उसके ऊपर किसी प्रकारसे आक्रमण करना असम्भव था। राजा पद्मराज, सदा चिंतित रहते, वे सोचा करते किस प्रकार उपद्रव शांत करें। इसी बीचमें, उज्जयिनी नगरीसे निकाले हुए चारों मंत्री हस्तिनापुर पहुंच गये। मंत्रियोंने राजाके कष्ट की बात सुनकर, कुछ सेना लेकर सिंहबाहु पर आक्रमण कर दिया। उसका किला अपने अधिकारमें कर मंत्रियोंने सिंहबाहुको गिरफ्तार कर राजा पद्मराजके दरबारमें हाजिर किया। राजा, मंत्रियोंको वीरता, तथा चालाकी से प्रसन्न हुए। राजाने प्रसन्न होकर मंत्रियोंको अपना मन्त्री बनाया। इसके बाद राजाने उनसे विनम्र वचन कहते हुए कुछ मांगनेके लिये पुनः कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा,—बहादुर मंत्रियो ! आप लोगोंने मेरे ऊपर जैसा उपकार किया है। उसका बदला देना असम्भव है, किन्तु आप लोग अपनी मनोभिलाषा प्रकट कीजिये। राजाको अपने ऊपर प्रसन्न देखकर

बलि नामक मन्त्रीने विनीत शब्दोंमें कहा,—"महाराज! हम आपकी कृपाके भारसे उपकृत हैं, किन्तु, आपके अनुरोधको हम टाल भी नहीं सकते, अतः इस समय हमें किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है भविष्यमें आवश्यकता पड़नेपर हम आपसे याचना करेंगे,—अभी हमारा वचन भंडारमें रहे।"

बदले का भाव।

पाठकगण, कुछ समय बाद श्री अकम्पनाचार्य का संघ अनेक स्थानोंमें घूमता हुआ हस्तिनापुरके बगीचेमें पहुंच गया। मुनिराजके शुभागमनका संवाद सुनकर नगर-निवासी उत्साहके साथ वन्दना करनेके लिये वहां गये। उसी समय, राजमंत्रियोंने आचार्यके आनेकी बात सुनकर क्रोधित होकर बदला लेनेका विचार किया। मंत्रियोंमेंसे एकने कहा, भाई, यही मौका है राजासे अपनी मनोभिलाषा प्रकट करनेका। देखो, अभी तक अपमानसे मेरा कलेजा जल रहा है। भाई, इन्हीं दुष्ट साधुओंने हमे राज्यसे निकलवा कर बाहर कराया, हमारी दुर्दशा कराई, हमे गधेपर चढ़ा कर देश-निकाले का दण्ड दिया गया है। भला कहो, अब कौनसी दुर्गति रह गई है। आज, इन्हीं दुष्टोंके कारण हम अपमानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अतः ऐसे समयको अपने हाथसे नहीं जाने देना चाहिये, हमें अपना पूरा बदला लेना चाहिये। दूसरेने कहा, राजा तो इनका भक्त है वह कैसे इनकी दुर्दशा होने देगा। भाई, कोई ऐसा प्रयत्न किया जाय जिसमें बदला लेनेका स्वर्ण सुअवर हाथसे न निकल जाय! इतनेमें बलिने प्रसन्न चित्तसे कहा,—"तुम

लोग किस चिंतामें फँसे हो, अभी हम लोगोंने राजाके प्रबल शत्रु सिंहवलको पकड़ कर उनके ऊपर कितना उपकार किया है, अभी उसके बदलेमें राजा हमे पुरस्कार देनेका वचन दे चुके हैं। अतः, क्याही अच्छा हो कि हम उनसे सात दिनके लिये राज्य-शासन-सूत्र अपने हाथमें ले लेवें, उसी बीचमें हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा, और राजा भी वचन बद्ध होनेके कारण हमारे काममें दखल न दे सकेगा। बस, हमारा बदला पूरा हो जायगा।" सबने मन्त्री बलिके प्रस्तावका समर्थन किया। सर्व सम्मतिकी रायसे बलिने राजाके पास जाकर निवेदन किया,—"दीनबन्धु, अब वह समय आ गया है जिसमे आपके वचनकी पूर्त्ति होनी चाहिये, आपने कृपाकर हमे जो वचन दिये हैं उसके अनुसार काम करनेका समय आ गया है। अतः आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।"

सात दिनकी बादशाहत।

राजा वचन बद्ध थे। उन्हें क्या खबर थी की ऐसे समयमें कोई छल प्रपञ्चका कार्य होगा। वे विचार करने लगे कि इन लोगोंने मेरे साथ कितना उपकार किया है उसके लिये मैंने इसको मनो-भिलाषा पूर्ण करनेका वचन दिया है अतः उस ऋणसे उऋण होकर अपना वचन पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपने मनमे विचार कर राजाने मंत्री बलिसे कहा,—"मैं प्रसन्न हूं, तुम अपने मनकी अभिलाषा प्रगट करो मैं उसे पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूं।" बलिने दृढ़तासे कहा,—"महाराज यदि, आप अपने वचनका पालन करना चाहते हैं तो कृपाकर सात रोजके लिये अपने राज्य शासनको

भार हमें दीजिये, इसीमें हमारा उपकार होगा और आपकी प्रतिज्ञा पालन। राजा बलिकी अभिलाषा सुन कर आश्चर्य-सागरमें गोता खाने लगे—किन्तु, अब पछताये होत क्या चिड़िया चुग गई खेत। लाचार होकर राजाने बलिके हाथमें सात दिनके लिये अपने राज्य-शासनका भार सौंप दिया, यद्यपि उनके हृदयमें किसी भावी-विपत्ति की आशङ्का हो रही थी। बलि को प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, अब तो वह सात दिनका शाहंशाह था।

प्राण लेनेका षड्यन्त्र।

कपटी मंत्रियोंने राज्य-शासनका सूत्र अपने हाथमे आया हुआ देख मुनियोके प्राण लेनेके लिये यज्ञ करनेका बहाना किया, जिससे किसीके मनमें अनिष्ट की आशङ्का न हो। मंत्रियोने संघके समस्त मुनियोंको यज्ञ-मण्डपके बीचमे स्थान दिया। उनके चारो ओर ईंधन जमा कर दिया गया। वेद की ऋचाओं द्वारा यज्ञ आरम्भ किया गया। उसी समय, हजारो निरपराध पशुओंका बलिदान हुआ तथा उनकी अहुति दी जाने लगी। देखते २ दुर्गन्धके मारे वहां रहना असम्भव हो रहा है। दुर्गन्धित धुएंसे आकाश मण्डल इस प्रकार व्याप्त हो गया मानो इस महापापको न देख सकनेके कारण सूर्य अस्त हो गया हो। इस प्रकार, उस समय राक्षस राज का दौर दौरा शुरू हो गया। उस समय, समस्त मुनि समुदाय भयंकर उपसर्ग सहन करने लगा। संघके समस्त मुनि मेरू पहाड़के समान, अचल रह कर ध्यान-मग्न होकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करने लगे। उन्होंने इसे अपने कर्मोंका फल समझ अपने हृदयको मज़बूत बना निम्नलिखित-भावनाका प्रकाश किया॥

चाहे मित्र शत्रु हो कञ्चन, काय, महल या हो श्मशान।
निन्दा-स्तुति हो अर्घ वतारन, असि प्रहार सव एक समान॥

सच है, सच्चे जैन-साधु भयंकरसे भयङ्कर दुःखोंका सामना करनेमे भो नहीं हिचकते। वे भला ऐसे कष्टोंसे क्यों घवड़ाने लगे। यह सभी जानते हैं:—

पाण्डवों को शत्रुओंने दुःख क्या कुछ कम दिया।
हर तरह से कौरवोंने खुलके निज वदला लिया॥
अग्नि की ज्वालामें जलकर वे नहीं विचलित हुए।
धैर्यसे निज शत्रओंके कष्ट पाण्डवने सहे॥
जैन सच्चे हैं तपस्वो वे न भय खाते कभी।
कष्ट की ज्वालामे जल कर दृढ़ सदा रहते सभी॥

पाठकगण! सच्चे जैन तपस्वी अपने ऊपर आनेवाले भयङ्कर कष्टोंसे नहीं घवड़ाते। वे धीरतासे समस्त कष्टोंको सहकर अपने मार्गपर दृढ़ रहते हैं—किन्तु, इसके विपरीत जिनका हृदय कमजोर होता है वे राग-द्वेषादि शत्रुओंका सामना नहीं कर सकते। वे थोड़े दुःखोंको देख कर विचलित हो जाते हैं भला, ऐसे लोग साधुता की क्या रक्षा करेंगे? तथा वे आत्म हित भी नहीं कर सकते हैं जो कष्टोंकी आच नहीं सह सकते वे समताकी रक्षा कैसे करे गे?

कष्टसे छुटकारा।

पाठकगण! हस्तिनापुरमे मुनियोंके ऊपर इसप्रकार की कष्ट की घटा घिर आयो थी। उधर मिथिलामें श्री श्रुतसागर मुनि अपने निमित्त ज्ञानसे मुनियोंके ऊपर आये हुए कष्ट ज्ञात करनेपर

उनके मुंहसे अकस्मात् हाय २ शब्द निकल पड़ा। अरे! मुनियोंको इतना कष्ट हो रहा है। उस समय वहांपर पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक मौजूद थे, उन्होंने महामुनिसे पूछा,—"मुनिराज! किस स्थान पर मुनियोंके ऊपर उपसर्ग हो रहा है?' मुनिराजने कहा,— हस्तिनापुरमें श्री अकम्पनाचार्यके सात सौ मुनियोंके संघके ऊपर दुष्ट वलि द्वारा कष्ट दिया जा रहा है। क्षुल्लकने कहा,—"देव! कौनसा उपाय है जिससे मुनियोंका कष्ट दूर हो।" मुनिराजने कहा,—"हां, एक उपायसे कष्ट दूर हो सकता है, श्री विष्णुकुमार मुनि विक्रिया ऋद्धिके साधक हैं व अगर चाहें तो अपनी ऋद्धिके बलसे कष्ट दूर कर सकते हैं। पुष्पदन्त विना विलम्ब किये, विष्णु-कुमार मुनिके पास पहुंच गये। पुष्पदन्तने उनसे मुनियोंके ऊपर होनेवाले कष्ट कह सुनाये। पहिले विष्णुकुमार मुनिको विश्वास नहीं हुआ, किन्तु, जब उन्होंने अपना हाथ फैला कर देखा तब उनका हाथ बहुत दूर तक चला गया। वे उसी क्षण अविलम्ब हस्तिनापुर चले आये। अपने भाई पद्मराजको सम्बोधित करते हुए कहा, "प्रिय भाई! आपने यह क्या किया? हाय २ आपके देखते देखते तपस्वी मुनियोंपर इस प्रकार अत्याचार हो और आप अत्याचार होता रहे तथा खड़े २ तमाशा देखते हैं। क्या आपको मालूम है कि आपके नगरमें ही निर्दोष मुनियोंके ऊपर अनाचार हो रहा है। सोभी आपके समान धर्मात्मा पुरुषके सामने। क्या आप समझते हैं इस प्रकारका अत्याचार हमारे कुलवालोंके शासनमें अभी तक कभी हुआ था जो आपके शासनमें हो रहा है। आप सोचिए सच्चे तपस्वी मुनि किसीका क्या लेते हैं? वे तपस्यामें लीन रहते हैं उन-

के ऊपर जुल्म होनेसे आपके ऊपर घोर संकट आनेकी सम्भावना है। क्या आप नहीं जानते कि राजाका क्या कर्त्तव्य है ? सज्जनो, मुनियोंकी रक्षा करना और जुल्म करने वाले जालिमोंको दण्ड देना। किन्तु आपके राज्य शासनमें बिलकुल उल्टी गंगा वह रही है। क्या आप नहीं जानते कि ठंडा जल भी गरम होकर शरीर जलाने लगता है। अतः आप इस अत्याचारको रोकिये। नहीं तो आपको भयंकर दुःखका सामना करना पडेगा। अपने प्रिय भ्राता मुनिराजके महत्वपूर्ण शिक्षायुक्त उपदेश सुनकर राजा पद्मराजने विनीत शब्दोंमें कहा,—मुनिराज ! मैं इस समय प्रतिज्ञाके कठिन वन्धनमें जकडा हुआ हूं, लाचार हूं अतः वेइख्तिथार हूं। हाय ! मुझे क्या पता था कि ये छली मुझसे वचन लेकर तपस्वी निर्दोष मुनियोंके ऊपर जुल्म-सितम ढा देंगे। मैंने सात दिनके लिए उन्हें राज्य-शासन भार दे रखा है, अतः उतने दिनों तक उनकी मनमानी वरदास्त करनी पड़ेगी। अतएव मुनिराज, आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिये जिसमें मुनियोंका कष्ट दूर हो जाय। आप हर तरहसे समर्थ हैं जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। देर करना उचित नहीं है। विष्णुकुमार मुनि प्राप्त ऋद्धिके प्रभाव से वावन ब्राह्मणका वेप वना कर, वेदके मंत्र उच्चारण करते हुए वलिके यज्ञ मण्डपमें पहुंच गये। उस समय वहांपर जितने लोग उपस्थित थे, सभी नवागत ब्राह्मणके मुंहसे वेद मन्त्र सुनकर मंत्र मुग्ध हो गये। वलिके आनन्दका ठिकाना नहीं था। वलिने विह्वल होकर कहा, हे ब्राह्मण ! मैं आपके शुभागमनके लिये आपका सहर्ष स्वागत करता हूं। आपने यज्ञ-मण्डपमें आकर वड़ी कृपा की है,

अतः आज मैं आपके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूं, इस समय आप जो कुछ माँगना चाहे माग सकते हैं मैं सहर्ष देनेको प्रस्तुत हूं।

तीन डग भूमिकी इच्छा

बलिकी बात सुनकर विष्णुकुमार मुनिने आश्चर्य प्रकट करने वाली बात कही—दयालु, मेरे समान एक गरीव आदमी अपनी ग़रीबीमें ही संतोप करता है। मुझे, धन-दौलत माले-खजाना नहीं चाहिए। मुझे अपनी ग़रीबी ही मुबारक हो। किन्तु, यदि मैं आप की बात नहीं रक्खूं तो भी ठीक नहीं। अतः यदि आप मुझे तीन डग ज़मीन देनेकी कृपा करें तो मुझ ग़रीव ब्राह्मणका वडा उपकार हो। कृपालु, वस उसीमें अपनी झोंपड़ी वनाकर वेदका स्वाध्याय करूंगा। यदि आपने इतनी दया दिखाई तव मैं निश्चिन्त हो जाऊंगा। यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो तीन डग जमीन दीजिये इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" अन्य ब्राह्मणोंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा,—"महाराज, आपने यह क्या किया, क्या आप इतने संतोपी हैं जो इतनी छोटी चीज़ मांग रहे हैं। अभी क्या बिगड़ा है आपको अपने लिए भले ही कुछ नहीं चाहिए किन्तु हम जाति भाइयोंके लिए ही कोई बड़ी मांग पेश कीजिए। बलिने भी आश्चर्यके भावमें कहा,—हा महाराज! आपने यह क्या किया? मैंने विचार किया था कि आप कोई अच्छी चीज मांगेंगे। कमसे कम मेरी योग्यताका ख्याल कर ही मांगते। परन्तु आपने तीन डग ज़मीन मांगकर मुझे हताश कर दिया। क्याही अच्छा हो कि आप फिरसे कोई दूसरी चीज़ मांगे जो मेरे सामर्थ्यके अनुकूल हो। मैंने

आपको देनेका वचन दे दिया है, अतः आप फिरसे मांगकर अपने मनकी मुराद पूरी कर सकते हैं। मैं फिरसे आपको मौका दे रहा हूं, आपके लिए स्वर्ण-सुअवसर है। अत. आप फिरसे अपनी मांग पेश कीजिए मैं उसे पूर्ण करनेके लिए प्रस्तुत हूं। वलिकी इस प्रकार की वात सुनकर श्रीविष्णुकुमार मुनिने निर्भीकतासे आदर दिया,—दाता। मैंने जो कुछ आपसे मागा है उसके अतिरिक्त मुझे अन्य वस्तुकी आवश्यकता नहीं। यदि आपको देना हो तो, यहांपर अन्य ब्राह्मण मौजूद हैं उन्हें दान देकर अपने मनकी अभिलाषा पूर्ण कोजिये। मैं चाहता हूं सिर्फ तीन डग जमीन।" वलिने कहा,—'अच्छी वात है लीजिये संकल्प-जल' ऐसा कह उसने संकल्प-जल उक्त मुनिके हाथमें दे दिया। इसके वाद उन्होंने एक डगमें सारी पृथ्वी नाप ली। दूसरे डगमें। याने उनका एक पैर सुमेरू गिरिपर था और दूसरा पैर मानुपोत्तर पहाड़पर। अव, तीसरा पैर कहां रक्खें कहीं स्थान ही नहीं। उसी समय उनके प्रभावसे:—

'कांप उठी पृथ्वी उस क्षण, पर्वत भी कम्पित आज हुये।
मर्यादा तज दी सागरने, महा प्रलय से भान हुए॥
देव ग्रहोंके रथ आपसमें, ही टकराते थे कैसे।
मानो भूमंडलपर उस क्षण, प्रलय दृश्य होता जैसे॥

उसी समय, स्वर्गसे देवोंने विष्णुकुमार मुनिके पास आ वलि को वांधकर विनम्र शब्दोंमें कहा, 'प्रभो! क्षमा कीजिए इसी दुष्ट के कारण ऐसी घटना हुई है, वलिने मुनिराजके चरणोंपर गिरकर अपने अपराधोंको क्षमा कराया तथा अपने दुष्कर्मपर हार्दिक पश्चात्ताप किया। अन्तमें मुनियोंका कष्ट दूर हुआ। उसी समय राजा

तथा चारों अभिमानी मंत्रियोंने आचार्यके पास जाकर अपने अपराध क्षमा कराये। सब, उसी क्षण जिनेन्द्र भगवानके भक्त हो गये। सबने अपने हृदयसे मिथ्याभिमान दूरकर दिया। जैन धर्मकी ऐसो महिमा है। इसके बाद देवताओंने प्रसन्न होकर लोगोंको तीन बीणा इसलिये दी जिनके द्वारा उनके यशका गायन कर पुण्यका कार्य होगा। पाठक गण! जिस प्रकार विष्णुकुमार मुनिने वात्सल्य अंगका पालन कर अपने सहधर्मियोंका उपकार किया है उसी प्रकार संसारके अन्य श्रेष्ठ जन परोपकार-कार्य द्वारा यशके भाजन बनेंगे। विष्णुकुमार मुनिने जिस प्रकार जिन भगवानकी भक्तिकर प्रेममें लीन होकर मुनियोंके कष्ट दूर किये, अंतमें तपस्या द्वारा अपने कर्मोंका नाशकर वे मोक्षवासी हुये। अतः मैं (लेखक) प्रार्थना करता हूं कि वे ही मुनिराज मझे भव-सागरसे पारकर मोक्ष-रत्न प्राप्त करावेंगे ऐसी आशा है।
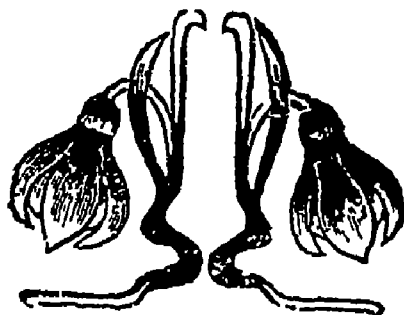
आराधना कथा कोष

बौद्ध साधुओं की परीक्षा

वज्र कुमारकी कथा।

(१३)

श्री जिन प्रभुके परम चरणमें नमस्कार कर जाता हूं।
वज्रकुमार सुमुनिकी रोचक कथा स्वतन्त्र सुनाता हूं॥
जो निज विकट तपस्या वलसे स्वर्ग मोक्ष सुख पाये हैं।
प्रभावनांगके पालन करने वाले सुख उपजाये हैं।

प्रिय पाठक ! किसी समय हस्तिनापुर जिसे आज कल इन्द्रप्रस्थ कहते हैं,—में राजावल राज्य करते थे। वे प्रकाण्ड विद्वान थे तथा राजनीति-विशारद थे। उसी तेजस्वी राजाके गरुड़ नामक मन्त्रीका सोमदत्त नामक पुत्र था। सोमदत्त विद्वान था, उसके रूप गुणको देखकर सभी उसपर मुग्ध हो जाया करते थे। एक दिनकी वात है कि वह अपने मामाके पास गया। उसका मामा अहिक्षत्र-पुरमें निवास करता था। उसने अपने मामासे निवेदन किया, मामा साहव, मैं यहाके राजाका दर्शन करना चाहता हूं अतः कृपा कर आप उनसे परिचय करा देवें।" सुभूति (मामा) मिथ्याभिमानके कारण महाराजके पास उसे नहीं ले जा सका। सोमदत्त समझ गया कि उसका मामा अपने मिथ्याभिमानके कारण उसे राजाके पास नहीं ले जा रहा है। अतः वह स्वयं महाराजके पास चला गया। उसने अपनी विद्वताके वलसे मन्त्री पद प्राप्त कर लिया अतः अपने पुरुपार्थ-वलका ही भरोसा रखना चाहिये जिससे वड़े से वड़ा कार्य सफल हो सकता है। अपने भानजेकी विद्वता देख

कर सुभूतिने अपनी कन्या यज्ञदत्ताकी शादी कर दी। इस प्रकार युगल दम्पति आनन्दसे अपना समय व्यतीत करने लगे। फल स्वरूप उसकी पत्नी गर्भवती हुई। जब उसे चार मासका गर्भ रहा तब उसने स्वप्न देखा। गर्भकालीन अवस्थामें स्त्रियां स्वभावतः स्वप्न देखा करती हैं। अतः उसने आम खानेका निश्चय किया।

आमकी खोज।

उस समय आम फलनेका समय नहीं था। किन्तु, सोमदत्त कुसमयमें ही आम लानेके लिये वनमें चल पड़ा। सच है, जो बुद्धिमान होते हैं वे असमयकी अलभ्य वस्तु पानेके लिये प्रयत्न करते हैं। वनमें पहुंचते ही उसने क्या देखा कि समूचे वनमें आमका एक पेड़ फला हुआ है। उसके नीचे एक तपस्वी बैठे हुए थे। सोमदत्तने अपने मनमें विचार किया कि आश्चर्य है इस समूचे वनमें एक वृक्ष फलसे लदा हुआ है, अतः इन्हीं तपस्वीके प्रभावसे असम्भव बात सम्भव हुई है। उसने पेड़से आम तोड़कर घर भेज दिये। इसके बाद मुनिराजके पास आकर उसने 'संसारके सार' पदार्थ जाननेकी उत्कंठा प्रकट की। महामुनिने कहा,—प्रिय, संसारमें आत्माको कुमार्गसे बचानेवाला सार-पदार्थ धर्म है। वह दो प्रकार का होता है, जिसे मुनि और श्रावक धर्म कहते हैं। मुनिके निम्नलिखित लक्षण हैं:—

अहिंसा, सत्य-भाषण, ब्रह्मचर्य-पालन, अचौर्य और परिग्रह-परित्याग पांच महाव्रत हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप इत्यादि धर्मके दश लक्षण हैं:—इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र

तीन रत्न, पांच प्रकारकी समिति, तीन तरहकी गुप्ति, खड़ा होकर आहार ग्रहण करना, स्नान नहीं करना, सिरके बालोंको हाथोंसे लोंच करना तथा शरीरमे वस्त्र न रखना इत्यादि लक्षण हैं। श्रावक धर्ममे, बारह तरहके व्रतका विधान है। जिनेश्वरकी पूजा, पात्रोंको दान देना, परोपकार, निन्दा तथा किसीकी हानि न करना तथा शान्तिमय जीवन बिताना है। वत्स! मुनि धर्मका पालन सर्वदेश में होता है किन्तु श्रावक धर्मका पालन एकदेशमे होता है। उदाहरणके लिये अहिंसा व्रत ले लो। उसका पालन सर्वदेशमे होगा। याने मुनि, स्थावर जीवोंकी हिंसा नहीं कर सकते, किन्तु श्रावक इसका पालन मोटे रूपमे करेगा। (स्थूल-भावमे) उसे त्रस जीवों की हिंसासे परे रह वनस्पतिके सम्बन्धमें काम लाने योग्य चीजको अपने काममे लाकर अन्यकी रक्षा करना होगा। श्रावक धर्म परम्परा रूपसे मोक्षका आधार है किन्तु मुनि धर्म द्वारा उसी पर्यायसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अतः जो श्रावक धर्म पालन करते हैं उन्हे मुनि धर्मको भी पालन करना होता है, नहीं तो मोक्षको प्राप्ति असम्भव है। तुम निश्चय जानो कि आवागमनका कष्ट बिना मुनि धर्म धारण किये दूर नहीं होता किन्तु, इसमें भी एक विशेषता है कि सभी मुनि धर्म वाले मोक्ष-गामी नहीं होते। सबके लिये परिणामानुसार फल मिलता है। जिसका जैसा परिणाम होगा उसे वैसा फल मिलेगा। जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ इत्यादि आत्म-शत्रुको जिस मात्रामे नाश करनेमें समर्थ होता है वह उसी हिसाबसे मोक्ष-धामका अधिकारी होता है, किन्तु मुनि-धर्मके द्वारा ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, किसी अन्यसे नहीं है।

बालक वज्रकुमार।

मुनिराजके मुंहसे धर्म-सम्बन्धी विश्लेषण सुन कर सोमदत्तने मुनिधर्मको ही सर्वोत्कृष्ट धर्म समझ उसे ग्रहण करनेका दृढ़-निश्चय किया। उसने सर्व-पापनाशक मुनि-धर्म स्वीकार कर लिया। सोमदत्तने अपने गुरुके पास रह पूर्ण रूपेण शास्त्राभ्यास किया, इसके बाद वे नाभिगिरी पहाड़ पर तपस्या करने चले गये। सोमदत्त मुनि वहां पर रह कर कठिन तपस्या करने लगे। उधर समयानुसार यज्ञदत्ताके एक सुन्दर बालक हुआ। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने किसी आदमीके मुंहसे नाभिगिरी पर अपने पतिके रहने की बात सुनी, वह अपने परिवारवालोंको लेकर उक्त पहाड़ पर गयी। वहाँ जाकर उसने अपने पतिको मुनिवेषमें सूरज की तरफ मुख किये तापस योग करते देखा। उसी समय, यज्ञदत्ता क्रोधमें आग बबूला हो गयी। उसने क्रोध पूर्ण शब्दोंमें गर्ज कर कहा,—"नराधम कहींका, मुझसे ब्याह कर तपस्या करने आया है, अब, बताओ यदि, तुम्हें तप करना था तो मुझसे शादी क्यों की, मेरा जीवन बर्बाद क्यों किया। भला मैं किसके आश्रयमें जाकर रहूं। इस बालक की देख-रेख कौन करेगा? यह काम मुझसे नहीं होगा। ले, तू ही इसका लालन-पालन कर।" इस प्रकार दुर्वचन कह वह अपने हृदयके अनमोल हीरेको मुनिराजके पैरोंपर निराश्रित पटक कर घर चली गयी। वह कितनी कर्कशा थी जिसका हृदय अपने लख्ते जिगरके टुकड़ेको, नन्हें बच्चेको इस प्रकार पहाड़ पर जंगली हिंसक जीवोंकी खुराक बनानेके लिये छोड़ते समय टुकड़ा २ नहीं हो गया। सच है जब कर्कशा स्त्री क्रोधके वशमें हो जाती है तब

वह क्या २ अनर्थ नहीं कर देती ? पाठक गण ! अपने कलेजेपर हाथ रख कर माकी ममता देखें जिसने अपने प्रिय संतानके प्रति इस प्रकारका दानवी-व्यवहार किया।

बालक का रक्षक।

प्रिय पाठक, आप लोगोंने अभी २ माता यज्ञदत्ताके क्रूर अत्याचारकी कथा पढ़ी है, अब आगे बढ़िये दिवाकर देव नामक दयालु विद्याधरने उस नवजात शिशु को रक्षाकर अपनी विशाल सहृदयता का परिचय दिया जो स्वय अपने छोटे भाई द्वारा राज्यसे वंचित होकर अपनी स्त्री सहित तीर्थ-यात्रामें निकल पड़ा था। वह अमरावतीका भूत पूर्व राजा था। उसके छोटे भाई पुरन्दरने उसे लड़ाईमें हरा कर भाग जानेके लिये मजबूर किया। दिवाकर संयोगवश मुनिराजके दर्शनार्थ पहुंच गया। उसने मुनिराजके सामने एक तेजस्वी बालकको हँसते २ क्रीडा करते हुए देखा। उसने नन्हे लड़केको गोदीमें लेकर अपनी स्त्री के हाथमें देकर कहा,—"प्रिये! आज हमारा जीवन धन्य हुआ जो ऐसा सुन्दर बालक मिला। युगल-दम्पति, भाग्यसे बालक-रत्न पाकर फूले नहीं समाये। बालक देखने से भाग्यशाली जान पड़ता था, उसके हाथमें वज्रका चिन्ह था जिससे उसका नाम वज्रकुमार रक्खा गया। इसके बाद पति-पत्नीने मुनिराजके चरणोंमें श्रद्धा भक्तिसे नमस्कार कर अपनेको कृतार्थ समझा। बालक लेकर वे घर चले आये। देखिये, यज्ञदत्ताने अपने प्रिय लड़के को निराश्रित छोड़ दिया किन्तु जिन भगवान की कृपा देखिये, उस घोर जंगलके पहाड़ पर अबोध शिशुका रक्षक चला गया। किसीने सत्य कहा है:—

"जोजन अपने पूर्व जन्ममें पुण्य-धर्म कर आते हैं।
निश्चय जानो, धर्मनिष्ठ वे कभी न दुखको पाते हैं॥"

बालक वज्रकुमार दिन २ दूना बढ़ने लगा। उसके सुन्दर बाल रूपको जो कोई देखता, वह मत्र मुग्ध हो जाता। इस प्रकार वह सबको आनन्दित करने लगा।

विवाह कैसे हुआ ?

वज्रकुमार अपने मामा (दिवाकर का साला) राजा विमल-वाहनके यहां—जो कनक पुरीका राजा था,—रह कर थोड़े दिनोंमें शास्त्राध्ययन कर उद्भट विद्वान् हो गया। सभी उसकी प्रखर बुद्धि देखकर आश्चर्य चकित हो जाते थे। एक दिनकी बात है कि वज्रकुमार एक पहाड़ पर घूमनेके लिये चला गया। वहांपर गरुड़ वेग विद्याधर की कन्या पवनवेगा किसी विद्याकी सिद्धि कर रही थी, इतनेमें हवाके झोंकेसे उड़कर एक कांटा उसकी आखमें पड गया जिससे दुःखी होकर उसका हृदय चञ्चल हो गया। संयोगसे वज्रकुमार उसी राहसे निकल पडा, उसने उसकी आखसे कांटा निकाल उसका सन्ताप दूर कर दिया जिससे प्रसन्न होकर कन्या विद्या-साधनामें संलग्न ही रही। समयानुसार उसने सिद्धि प्राप्त कर ली तब उपकार करने वाले वज्रकुमारके पास आकर निवेदन किया,—"कृपालु, यह आपके ही उपकारका फल है कि मैंने विद्या-साधना कर ली है, यदि आप उपकार नहीं करते तो मैं साधनामें अकृतकार्य रहती। किन्तु आपके उपकारका बदला देना मेरे लिये कठिन है क्षुद्र प्राणी हूं ? किन्तु मैंने अपना तुच्छ जीवन आपकी दासी स्वरूप बननेके लिये

समर्पित कर दिया है। देव, मुझे अपनाकर अपनी विशाल सहृद-यताका परिचय दीजिये। देव, मैंने अपने मनमें ध्रुवसा निश्चय कर लिया है कि मैं इस जन्ममें आपके अतिरिक्त किसी अन्य पुरु-षसे व्याह नहीं करूँगी।" इस प्रकार कह कर वह वज्रकुमारकी आज्ञा सुननेके लिये खड़ी हो रही। वज्रकुमारने उस कन्याकी बात सुन कर उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। शुभ-मुहूर्तमें दोनोंका विवाह हो गया। वे विवाहके पवित्र सूत्रमें बंध कर सुखसे समय विताने लगे।

वैराग्य धारण।

अब वज्रकुमार छोटा बालक नहीं रहा बल्कि नवजवान हो गया। एक दिन संयोगसे उसने ज्ञात कर लिया कि उसके चाचाने अपने बड़े भाईको राज्यसे बाहर कर आप राजा बन गया है। उसने एक छोटीसी फौज लेकर अमरावती नगरीके ऊपर चढ़ाई कर दी। उधर, पुरन्दर देव निश्चिन्त था। वज्रकुमारने उसे हरा कर बन्दी बना दिया। अब दिवाकर देव राजा हुआ। जबसे वज्रकुमारने अपने पराक्रमसे पिताको राजा बनाया तबसे सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे, उसके नामका इतना प्रभाव पड़ गया था कि बड़े बड़े नामी शूरवीर उससे भयभीत होने लगे। किन्तु, भाग्यचक्रका फेर देखिये, वही वज्रकुमार संयोगसे वैराग्य धारण कर लेता है जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है। जबसे राजा दिवाकर देव की स्त्रीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ तबसे उसके हृदयमें वज्रकुमारके प्रति दुर्भावना होने लगी। वह सोचती, इसके सामने

मेरे पुत्रको कैसे राज-गद्दी मिलेगी। यदि, राजाने मेरी बात स्वीकार कर ली, तौभी इस वज्रकुमारके मारे मेरा पुत्र राजगद्दीपर नहीं बैठ सकता, अतः इस कण्टकको यहांसे उखाड़ फेकना चाहिये तभी मेरे पुत्रका मार्ग निष्कण्टक होगा। नहीं तो किसीने सच कहा है :—

"क्या ऐसा है कोई जगमें सच्चा त्याग दिखायेगा।
आनेवाली श्री सम्पति को पैरोंसे ठुकरायेगा॥
यह संभव है नहीं सभी निज मतलबके दीवाने हैं।
सुख वैभवके इच्छुक सब हैं नहीं साधुके बाने हैं॥
वज्रकुमार, पुत्रके पथमें, रोड़ा ना अटकायेगा।
यत्न करूं जिसमें वह जल्दी, इस गृहसे हट जायेगा॥

एक दिन वज्रकुमारने अपनी माताके मुंहसे यह कहते हुए सुना, 'देखो, वज्रकुमार बडा दुष्ट है, कहां पैदा हुआ और कहां दुःख देनेके लिये आ बैठा।" माताके मुंहसे ऐसी आश्चर्य जनक बात सुनकर उसके हृदयमें ज्वाला जलने लगी। यह समझ गया कि इस घरमें अब एक क्षण भी रहना नर्क-वासके समान है। उसने पिताके पास जाकर विनम्र शब्दोंमें कहा,—"पिताजी! मैं जानना चाहता हूं कि मेरे सच्चे माता पिता कौन हैं, वे कहाँ रहते हैं? मैं आपके यहां कैसे आ गया। पिताजी, आपने मेरा लालन-पालन पिताके समान किया है. किन्तु आप कृपाकर मेरे माता पिताके सम्बन्धमें सारी बातें बता दीजिये। यह निश्चय समझें यदि आप मुझे नहीं बतायेंगे तो मैं खाना-पीना सब छोड़ दूंगा।" दिवाकर देवने चौंककर कहा,—"पुत्र! आज मैं तुम्हारे मुंहसे अनोखी

बात सुन रहा हूं जिसे सुनकर मेरे हृदयमें अत्यन्त दुःख हो रहा है। क्या तुम्हें ऐसा करना उचित है ? वज्रकुमारने भर्राई हुई आवाजमें कहा,—"पिताजी, आपने सच्चे पिताका कर्त्तव्य पालन किया है। मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा बनाया किन्तु मेरे हृदयमें अपने माता-पिताके सम्बन्धमें जाननेके लिये प्रबल उत्कण्ठा हो रही है, अत आप सच्ची बात कहकर मेरे अशान्त हृदयकी हलचलको शान्त करेंगे। पिताजी, मैं सादर आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझसे सच्ची बात कहें, जिसे जाननेके लिये मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। अतः क्या मैं आशा करूं कि आप मुझसे कुछ भी नहीं छिपायेंगे, बल्कि सभी सच्ची बातें कहकर मेरे मनको शान्त करेंगे। सच है, जब एक बार किसी महान् पुरुषके हृदयमें किसी बातकी आशंका हो जाती है तब वे उसे दूर करके ही दम लेते हैं, वे इस तरह नहीं छोड़ देते। अतः वज्रकुमारकी प्रबल उत्कण्ठा देखकर दिवाकर देवको लाचार हो सब बातें कह देनी पडी। वज्रकुमार शान्त होकर अपने माता पिताके सम्बन्धमें बातें सुनने लगे। अंत में उनके हृदयमें वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। वे उसी समय, विमानपर चढ़ अपने पूज्य पिता मुनिराजके पास चले गये। उनके साथ दिवाकर देव इत्यादि थे। उन दिनों मुनिराज मथुराके निकट किसी गुफामें योग-साधन कर रहे थे। वज्रकुमारने मुनिराजको नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहा,—"मुनिराज, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं साधु होकर तपस्या द्वारा आत्म-कल्याणके परम पवित्र मार्गमें अग्रसर होना चाहता हूं।" वज्रकुमारकी वैराग्य भरी बात सुनकर दिवाकर देवने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा,—

पुत्र ! तुम यह क्या कह रहे हो ? अभी तुम्हारी उम्र कितनी है ? मेरे सामने क्या तुम साधु बनोगे ? क्या ही अच्छा हो कि तुम घर जाकर राज्यका शासन संभालो और मुझे तपस्या करनेका सुअवसर दो। तुम सयाने हो चले, अब मैं निश्चिन्त हो रहा हूं, अतः मुझे तपस्या करनेका मौका दो, पुत्र मेरा कहना स्वीकार करो। यद्यपि दिवाकर देवने वज्रकुमारको मुनि-व्रत लेनेसे विमुख करनेके लिये लाख चेष्टा की किन्तु उस सच्चे तपस्वी वैरागीने मुनिराजसे दीक्षा ले ली। वे उसी दिनसे कठिन कष्ट सहते हुए तपस्याके पवित्र मार्गमें अग्रसर होने लगे। जो चन्द्रमाके समान पवित्र जिन शासनरूपी सिन्धुके बढ़ाने वाले सिद्ध हुए। प्रिय पाठकगण ! वज्रकुमारके मुनि होनेकी कथा लिखी गयी, अब आगेका वर्णन लिखा जाता है। आशा है कि आप इसे श्रद्धा-भक्तिसे सुनेंगे।

दरिद्रा रानी हुई।

प्रिय पाठक ! उसी समय मथुरा नगरीमें राजा पूतगन्ध राज्य करते थे। उर्विला उनकी रानी थी। वह विदुषी सम्यग्दर्शनसे विभूषित थी, उसका अधिकांश समय जिन भगवानकी पूजामें व्यतीत होता था। रानी जिन धर्ममें इतनी श्रद्धा-भक्ति रखती थी कि वह प्रत्येक अष्टान्हिकाके महोत्सवपर आठ दिनतक बड़ी धूम-धामसे पर्व मनाती तथा दानादि कार्य द्वारा जिन धर्मकी महत्ता स्थापित करती। उन दिनों उक्त नगरीमें एक सेठ था जिसका नाम सागरदत्त था। समुद्रदत्ता उसकी पत्नी थी। पूर्व जन्ममें पापके कारण उसके यहां एक कन्याने जन्म लिया था, जिसका नाम दरिद्रा रखा गया।

दरिद्राका जैसा नाम था ठीक उसीके अनुसार फल मिला। दरिद्राके जन्म-कालसे ही सेठके ऊपर विपत्ति आयी। सेठके कुलमें दरिद्राको छोड़कर कोई अन्य नाम लेवा तथा पानी देवा नहीं बचा। सब कुछ स्वाहा हो गया। प्रथम धन-सम्पत्ति गयी इसके बाद कुटुम्बकी बर्बादी। अब दरिद्रताके लिये जीवनका कोई अवलम्ब न रहा, वह लोगोंका जूठा अन्न खाकर जीवन विताने लगी। सच है, पापके कारण जीव दुःख भोगते हैं। एक समयकी बात है कि मथुरा नगरीमें नन्दन और अभिनन्दन नामक दो मुनिराज भिक्षा लेने आये। उसी समय दरिद्रा जूठा अन्न खा रही थी। उसे देख कर अभिनन्दनने नन्दनसे कहा,—"महामुनि! देखिये, यह लड़की कितनी अभागिनी है जो लोगोंका जूठा अन्न खाकर अपना जीवन धारण करती है, बड़े अफसोसकी बात है कि यह दुःखिनी बाला कष्टमय जीवन विता रही है। उसी समय नन्दन मुनिने अपने अवधि ज्ञानसे ज्ञातकर कहा,—"आपका यह कहना ठीक है कि इस दुःखिनी बालाका वर्त्तमान समय दुःखसे भरा हुआ है किन्तु इसका उज्वल भविष्य है। यह अपने पुण्यके बलसे मथुरा नगरीके राजा पूतगंधकी पटरानी होगी। उसी समय वहांपर एक बौद्ध भिक्षु जैन मुनियोंकी बातचीत सुन रहा था। वह यद्यपि बौद्ध साधु था, किन्तु जैन महर्षियोंके वचनपर उसकी श्रद्धा अधिक थी। उसने दरिद्राको अपने स्थानपर ले जाकर उसे सुखसे रखा। अब बालिका दरिद्राने यौवनके विशाल प्राङ्गणमें प्रवेश किया। उसके अङ्ग प्रत्यङ्गसे यौवन फूट कर प्रकाशित होने लगा। उसकी आंखों के सामने मछलियोंकी चंचलता फीकी पड़ गयी। कवि सुन्दरियों

के मुखकी उपमा चन्द्रमासे देते हैं परन्तु दरिद्राके मुख सौन्दर्यके आगे वह भी लज्जित हो रहा। उसके बढ़ते हुए नितम्बके डरसे विचारे स्तनका मुंह काला हो गया। उसकी सुन्दरताका वर्णन किन शब्दोंमे किया जाय। एक दिन नवयौवन दरिद्रा नगरके उपवनमें जाकर पेडकी डालीपर झूला झूल रही थी, दैवयोगसे वहापर मथुराधीश चले आये, उनकी नजर दरिद्रापर पड़ी। राजा उसकी जवानी पर मन्त्र-मुग्ध हो रहे। राजाने दरिद्राका परिचय पूछा। उसने राजाको अपना परिचय तथा रहनेका स्थान बता दिया। राजा उसके सौन्दर्यपर लट्टू हो रहे थे। वे बड़ी कठिनाईसे घर आये। राजा पूतगन्धने श्रीवन्दक (बौद्ध साधु) के पास अपने मन्त्रीको भेजा। मन्त्री महोदय वहां जाकर कहने लगे,—'आपका भाग्य सराहनीय है तथा आपकी कन्या भाग्यशालिनी है जिसके लिये मथुरा नरेश अपना प्राण दे रहा है। अतः महाराजने आपकी भाग्यवती कन्याको अपनी पटरानी बनाना निश्चय किया है, अतः तुम्हारी क्या राय है? श्रीविन्दकने कहा,—"मन्त्रिवर! महाराज का प्रस्ताव मुझे सहर्ष स्वीकार है, किन्तु एक शर्त है जिसकी पूर्ति होनेसे ही इसका विवाह आपके महाराजके साथ हो सकेगा। आप के महाराज यदि बौद्ध धर्ममें दिक्षित हो जाय तभी मैं विवाह कर दूंगा अन्यथा नहीं।" मन्त्री लौट आया, उसने महाराजसे श्रीविन्दककी शर्त कह सुनायी। महाराज तो काममें पागल हो रहे थे उन्होंने शर्त स्वीकार कर ली। सच ही किसीने कहा है:—

'काम विवश मतवाला बनकर, क्या न पाप कर सकते हैं।
कामी धर्म बदलना मानो, मनकी मौज समझते हैं'॥

काम-जालमे फँस मानव जो करे कुकर्म न थोड़ा है।
सब कुछ कर गुजरेगा वह तो महापापका फोड़ा है।

पाठकगण! महाराज पूतगन्धके मनकी मुराद पूरी हुई। दरिद्रा उसकी पटरानी हुई। अब यह दरिद्रा नहीं रही वरन उसका नाम बुद्धदासी हुआ। अब बुद्धदासी पटरानी होकर बौद्धधर्मकी उन्नतिमें सहायता प्रदान करने लगी। यद्यपि जैन धर्मके समान संसारमे कोई उत्कृष्ट धर्म नहीं किन्तु उसे तो वेही पाते हैं जिसके भाग्यमें वदा होता है।

रथ रुका।

उसी समय, अष्टाह्निकाका पवित्र पर्व आ पहुंचा। रानी उर्विलाने अपने पूर्व नियमानुसार, रथ महोत्सवके लिये धूम-धामसे प्रबन्ध कराया। रथ सुन्दर ढङ्गसे सजाया गया, वह निकलने ही वाला था। इतनेमें बुद्धिदासीने महाराजसे कहकर रथ रुकवा दिया कि मेरा रथ पहले निकलेगा इसके वाद उर्विलाका। उस समय महाराजने उचित अनुचितका विचार छोड़ बुद्धिदासीके कथनकी पुष्टि की। सच है:—

मोह-अन्ध जो जन होते हैं वे न देख कुछ सकते हैं।
गौ औ अर्क दूधमें वे हो तनिक भेद नहीं रखते हैं॥

ऐसी दशा राजा पूतगंधकी हुई। अब रानी उर्विलाके हृदयमें जिन भगवानके रथ रुक जानेसे गहरी ठेस लगी। उसने अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया कि जबतक जिनेन्द्र भगवान्का पहिले रथ नहीं निकलेगा तवतक मैं अन्न-जल नहीं ग्रहण करूंगी। वह उसी समय क्षत्रिया नामक गुफामें जा पहुंची जहां महामुनि सोमदत्त

और वज्रकुमार मुनिराज तपस्या करते थे। उर्विलाने उन्हें नम-स्कार कर भर्रायी हुई आवाजमें कहा,—"जैन धर्म रूपी समुद्रकी उन्नति (बढ़ान) करने वाले चन्द्रमाओ! मिथ्यात्व रूपी अन्धकार-को भगानेवाले सूरज! आज मैं धर्म संकटमें फँसी हुई हूं। भगवन् मेरी उससे रक्षा कीजिये। प्रभो, आज जैन धर्मपर घोर संकट छा गया है उसे दूर करनेका प्रयत्न कीजिये। देव, मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जबतक मेरा सर्वदाकी तरह इस बार रथ नहीं निकलेगा मैं अन्न जलतक नहीं ग्रहण करूंगी। प्रभो! बुद्धिदासी महाराजकी प्रिय रानी हो रही है, उसने राजासे कह कर मेरा रथोत्सव रुकवा दिया है, अतः मैं आपकी शरणमें आयी हूं, जैसा चाहे वैसा कीजिये। उसी समय मुनियोंकी वन्दना करनेके लिये दिवाकरदेव तथा अन्य विद्याधर आये। वज्रकुमार मुनिने आगत विद्याधरोंसे कहा,—"देखिये, इस समय जैन धर्मपर महान विपत्ति आई हुई है। बुद्धि-दासीने इसका (रानी) रथ रुकवा दिया है अतः आप लोग वहां जाकर जैसे हो जिनेन्द्र भगवानका रथ निकलवाइये। मुनिराजकी आज्ञा सुनकर समस्त विद्याधर उसी समय मथुरा नगरी चले आये।

'जिनके मनमें धर्म भाव है, वे प्रयत्न खुद करते हैं।
मुनिके कहनेपर वे उसमें सदा अग्रसर रहते हैं॥

रथ निकला।

विद्याधर रानी बुद्धिदासीके पास जाकर समझाने लगे,—"देखिये, सदासे उर्विलाका रथ निकलता आया है। उस पुरानी परम्पराको व्यर्थमें तोड़नेसे तुम्हारा क्या लाभ है। अतः रथ निकल जाने दो।" किन्तु मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं

विरञ्चि सम, विद्याधरोंने सोचा, ये इस तरह नहीं मानेगो 'विन भय होय न प्रोति' की उक्ति ठोक है। बिना टेढ़ी ऊंगली किये घी नहीं निकलता। ऐसा विचार कर उन्होंने रानीके सिपाहियोंको मार-पोटकर भगा दिये। इसके बाद उर्विलाका रथ बड़ी धूम-धाम-से निकला।

जैन धर्ममें।

उस समय, जैन धर्मकी खूब महिमा हुई, राजा तथा रानो बुद्धिदासीपर पवित्र जैन धर्मका प्रभाव पड़े विना वाकी नहीं रहा। उनने पवित्र हृदयसे जिन दीक्षा ले ली, इसके बाद अन्य लोग भो दीक्षित हुए। वज्रकुमार मुनिने जिस भक्ति-भावसे जैन धर्मको मर्यादा स्थापित करनेमें तत्परता दिखलाई अन्य धर्मात्माओंको उचित है कि वे भी संसारकी भलाई करने वाली स्वर्ग मोक्ष प्रदान करने वाली धर्म-प्रभावनाका मार्ग प्रशस्त करें। संसारके उत्तम पुरुष ही मूर्ति-प्रतिष्ठा, पुराने मन्दिरोंका जीर्णोद्धार रथ महोत्सव, विद्यादान, आहार दान, अभय दानादि कार्य द्वारा धर्म मार्गकी उन्नति कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर त्रिभुवन भरमे पूजनीय होते हैं। वे ही अन्तमें मोक्ष धामके वासी होते हैं। अन्तमे मेरी यही मनो-भिलाषा है कि श्री वज्रकुमार मुनिराज, मेरो बुद्धि निर्मल करें जिससे मैं आत्म कल्याण कर मोक्ष धामका अधिवासी वनूं।

श्री मल्लिभूषण आचार्य मूल संघके प्रधान शारदागच्छमें वर्त्तमान थे। वे ज्ञानके आगार, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चरित्रसे विभूषित हैं, मैं उनकी पूजा करता हूं तथा प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे मोक्ष कल्याण प्रदान करें।

नागदत्त मुनिकी कथा

(१४)

"पाठक, पढ़ लें नागदत्त मुनि, की प्रिय उत्तम गाथयें।
जिससे आप सहजमें ही जग-भवसे छुटकारा पायें॥
मोक्ष-राज्यके अधिनायक हैं, पंच परम गुरु कहलाते।
नमस्कार करते हैं हम भी, भक्ति-भाव निज प्रकटाते॥

पाठक, यहांपर जिस समयकी कथा लिखी जाती है उस समय राजगृह मगधराज्यकी राजधानी थी। वहां प्रजापाल राजा राज्य करते थे। प्रजापाल राजामें शासनके जितने आम गुण चाहिये सभी उनमें विद्यमान थे। अर्थात वे न्याय पूर्वक राज्य-शासनका कार्य करते थे। प्रियधर्मा नामक उनकी स्त्री थी। वहभी शील व्रत पालन करने वाली धार्मिक स्वभावकी नारी थी। उसके प्रियधर्म और प्रियमित्र नामक दो पुत्र थे। वे भी पिताके समान ही सच्चरित्र तथा बुद्धिमान थे।

प्रतिज्ञा-पालन

कुछ दिनोंके बाद, दोनों भाई वैराग्य धारणकर साधु हो गये। अंतमें दोनों समाधिमें ही प्राण छोड अच्युत स्वर्गके देव हुये। वहां जाकर दोनोंने आपसमें इस बातकी प्रतिज्ञा की कि जो कोई पहिले स्वर्ग छोड़ मनुष्य योनिमें जन्म धारण करेगा उस समय स्वर्गमें रहनेवाले देवका कर्त्तव्य होगा कि वह उसे सम्बोधित कर, मोक्ष प्रदान करने वाले जैन-धर्ममें दीक्षित करावे।" उनमें प्रियमित्र सबसे पहिले मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुआ। वह उज्जयिनीके राजा नागधर्मका

B Verma

राजा श्रेणिक से रानी चेलनी कहती है कि मैंने झोंपड़ी जला कर साधुओं का उपकार किया है उसके लिये एक सर्प की कथा सुनाती हूं ।

प्रिय पुत्र हुआ। उसकी माताका नाम नागदत्ता था। नागदत्त सांपके साथ खेला करता था जिससे अन्य लोग आश्चर्य चकित हो जाते थे किन्तु वह सदा सांपके साथ क्रीड़ा करनेमेंआनन्द प्राप्त करता था उधर स्वर्गमें रहने वाले प्रियधर्मने संपेरा वेष धर दो भयंकर सांप लेकर उज्जयिनी नगरीमें जहां तहां सांपोंका खेल दिखाना शुरू किया। वह, सबसे कहता कि मैंने सांपोंके साथ क्रीडा करने की अच्छी जानकारी हांसिल की है, अतः इस नगरीमें अगर 'कोई दूसरा व्यक्ति सांपोंके साथ क्रीडा करना जानता हो तो मैं उसे अपनी कला दिखलाऊँ। उसी समय किसीने नागदत्तके पास आकर संपेरेकी वात कह दी। नागदत्तने उसी समय संपेरेको बुलाया। संपेरा तो ऐसा सुयोग खोज ही रहा था जिसमें अपने मित्रको सम्बोधित करनेका मौका मिले। संपेराके आनेपर नागदत्तने घमण्ड में कहा, "तुम अपने सांप पिटारीसे वाहर निकालो मैं उनसे क्रीड़ा करना चाहता हूं। तथा यह जानना चाहता हूं कि तुम्हारे सांप जहरीले हैं या नहीं।" नागदत्तकी अभिमान भरी वात सुन प्रियधर्मने कहा, "भला आप क्या कह रहे हैं? मैं राजकुमारोंके साथ इस प्रकारको हंसी नहीं करता जिसमें प्राण जानेका खतरा हो। मान लीजिये कि मैंने आपके सामने अपने सांप आपके खेलनेके लिये छोड़ दिये; उसी वोचमे अगर सांपने आपको काट खाया तव मेरी क्या दशा होगी? मैं मुफ्तमें मारा जाऊंगा। राजा तो हमारी जान छोड़ेंगे नहीं तव मै ऐसा काम क्यो करूं जिसमें प्राण जानेका खतरा हो, हां अगर आप कहें तो मैं आपके सामने अपनी कला दिखाऊं।"

सांपने काट खाया

नागदत्तने सपेरेकी बात सुनकर कहा, तुम मेरे पितासे डर रहे हो वे मेरे विषयमें पूर्ण रूपसे जानते हैं कि मैं सदा सांपोंसे खेला करता हूं। तुम अभय रहो। अगर तुम्हें विश्वास नहीं होता तो मैं तुम्हें अपने पितासे अभय-दान दिलाता हूं। ऐसा कहकर नागदत्त सपेरेको पिताके पास ले गया। उसने पितासे कहकर उसे (संपेरे) क्षमा दान दिला दिया। नागदत्तको प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था उसने संपेरे (प्रियधर्म) से साप निकालनेके लिये आग्रह किया। संपेरेने पहिले एक साधारण सांप निकालकर बाहर छोड़ दिया। नागदत्त सांपसे खेलने लगा। उसने थोड़े समयमें ही सांपको निस्तेज कर दिया। अब उसकी हिम्मत बढ़ चली थी, उसने अभिमान प्रकट करते हुए कहा, "तुमने एक साधारण निर्बल सांप पिटारीसे निकाल कर मेरी कला निपुणता शक्तिका उपहास किया है। क्या ही अच्छा हो कि इस बार कोई भयङ्कर विषैला सांप निकालकर मेरी शक्तिका परिचय प्राप्त करो।" प्रियधर्म (संपेरे) ने विनम्र शब्दोंमें कहा,—"राजकुमार बस हो चुका आपकी परीक्षाका अंत। आपने सांपको काबूमे कर अपनी कला दिखा दी। अब मुझे दूसरे सांपके विषयमें कुछ भी नहीं चाहिये। मेरे पास एक ऐसा जहरीला सर्पराज है जिसके काटनेसे कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता अतः मैं आपसे कर जोड़ सादर प्रार्थना करूंगा कि मुझे क्षमा करें। पुनः दूसरा सांप निकालनेके लिये आग्रह न करें संयोगसे यदि उसने काट खाया तब मृत्यु निश्चित है।" संपेरा (प्रियधर्म) के लाख कहनेपर भी नागदत्तने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। उसने क्रोध-पूर्ण

शब्दोंमें कहा—"अरे! डरपोक क्यों बनते हो? तुम्हे क्या पता है कि मैं सांपोंको वश करनेमें कितनी क्षमता रखता हूं, याद रक्खो, तुम्हारा यह साधारण सांप तो नगण्य है। मैंने अब तक हजारों भयङ्कर विषैले सांपोंको अपने वशमें किया है। भला तुम क्यों डरते हो? मानलो, उसने मुझे काट खाया तौ भी मुझे इसकी परवा नहीं है। मेरे पास ऐसी २ जड़ीबूटी की दवाइयां हैं जिनसे भयङ्करसे भयङ्कर सांपका विष सहजमे ही शांत हो सकता हैं। नादान, डरना तो मुझे चाहिये, परन्तु तू डरता है।" प्रियधर्मने कहा, "अच्छा, जब आपका ऐसा ही विचार है तब मैं लाचार हूं।" ऐसा कहकर उसने राजा की दुहाई देकर पिटारेसे सांपको निकाल बाहर किया। सांप पिटारेसे निकल फुफकारने लगा। वह इतना जहरीला था कि उसकी फुफकारसे ही लोगोंका सिर चक्कर खा जाता था। नागदत्तको अभिमान था कि वह सांपोंको वशमें करनेमे अद्वितीय है। उसने ज्यों ही सांपको पकड़ना चाहा, त्यों ही उस भयङ्कर सांपने नागदत्त को काट खाया। देखते २ नागदत्त बेहोश होकर धराशायी हो गया। सभी हाहाकार करने लगे। राजाके शोकका ठिकाना नहीं था। चारों ओरसे झाड़-फूंक करने वाले तांत्रिक बुलाये, मगर सबके सब असफल रहे। नागदत्तको कोई नहीं जिला सका। तब तांत्रिकोंने कहा,—"महाराज, राजकुमारको सांपने नहीं काटा है, कालने सांपका वेष धर अपना मतलब सिद्ध किया है। महाराज, अब हमारे वशकी बात नहीं कि हम कालके काटे हुयेको सजीव बना दे। महाराजने संपेरेसे कहा,—भाई, तुम भी अपना जौहर दिखलाओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अगर राजकुमार जीवित हो गये तो मैं अपना

आधा राज्य तुझे दे दूंगा। सपेरे (प्रियधर्म) ने कहा,—"महाराज ! मुझ राज्यकी आवश्यकता नहीं राजकुमारको काल रूपी सांपने काटा है। किन्तु, यदि आप विश्वास दें कि अगर राजकुमार जीवित हो जांयगे तो आप उन्हें मुनिव्रत स्वीकृत कर लेनेकी आज्ञा देंगे तब मैं उद्योग करूं, अगर लग जाय तो अच्छी बात हो। महाराजने सपेरेकी बात स्वीकृत कर ली।

नागदत्त मुनि हुए।

प्रियधर्मने मन्त्र पढ़ कर उसे जीवित कर दिया। राजकुमार उठ बैठे। सब लोग आनन्द मनाने लगे। सच है—

"मिथ्या रूपी विषको पीकर जो अचेत बन जाते हैं।
उपकारी मुनि निज स्वरूपका सच्चा ज्ञान कराते हैं॥

महाराजने नागदत्तसे अपनी प्रतिज्ञाकी बात कही। नागदत्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने एक क्षण बिना विलम्ब किये यमधर महामुनिके पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। उसी समय सपेरेने (प्रिय धर्म) नागदत्त मुनिसे अपना समूचा वृत्तान्त कह नमस्कार कर स्वर्ग लोकको प्रस्थान किया। नागदत्त मुनि अपनी कठिन तपस्या द्वारा अपने निर्मल चारित्रको प्रकटाते हुए कल्पी मुनि हो गये।

चोरके चंगुलमें।

एक दिन वे तीर्थ यात्रा करने निकल पड़े। मार्गमें जाते हुए उन्हें एक भयानक जङ्गल मिला। उस जंगलमें चोर डाकुओंका प्रधान अड्डा था। डाकुओंने मुनिराजको देखकर अपने मनमें विचार किया कि ये हम लोगोंका पता बता देंगे जिससे हमारी चोरी की

कार्यवाही वन्द हो जायगी और हम दण्डित होंगे, इस भयसे डाकू मुनिराजको पकड़ कर सूरदत्त नामक सरदारके पास ले गये।

रिहाई हुई।

सरदारने मुनिराजको देखते ही अपने साथियोंसे डपट कर कहा,—"इन्हे क्यों पकड़ लाये। ये तपस्वो मुनि हैं। संसारका हित-साधन करते हैं। इनसे किसोका अपकार नहीं होगा, नहीं देखते ये कितने सीधे-सादे मुनि हैं। इन्हें जल्दो मुक्त करो, तुम लोगोने मुनिको दुःख देकर वड़ाभारो अपराध किया।" सरदार की वात सुन डाकुओंने मुनिराजको उसो क्षण वन्धन मुक्त कर दिया।

डाकू सरदार मुनि हुआ।

मुनिराज डाकुओंके हाथसे छूट कर ज्योंही आगे बढ़े। उसी राहसे उनकी माता नागदत्ता अपनी कन्याको लिये परिवारवालोंके साथ कौशाम्बी नगरीमें जा रही थी। नागदत्ताका विचार था कि अपनी कन्याका विवाह उक्त नगरीके सेठ जिनदत्तके पुत्र धनपालसे कर उसे दहेजमें प्रचुर धन दूं। नागदत्ताने अपने पुत्र नागदत्तको प्रसन्न होकर नमस्कार किया तथा मुनिराजसे पूछा,—"मुनिराज आगेका मार्ग निष्कंटक तो है न?" मुनिराज विना कुछ उत्तर दिये आगे बढ़ते गये। सच है:—

"सच्चे मुनिका धर्म यही है जो निष्पक्ष भाव रहते।
शत्रु-मित्र को एक दृष्टिसे, सतत काल देखा करते॥"

नागदत्ता आगे चलती गई। इतनेमें डाकुओंने हमला कर उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली। डाकुओंने नागदत्ता की कन्याको

अपने कब्जेमे कर लिया। उसी समय डाकू सरदार सूरदत्तने कहा,—'भाइयो! तुमने देखा मुनिराजका निष्पक्ष भाव। उनके लिये सभी बराबर, चाहे साधू हो या डाकू। इस स्त्रीने उन्हें प्रणाम किया, मगर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। जब हम लोगोंने इसे बांध कर इसका सारा सामान लूट लिया तो भी वे निश्पक्ष रहे, चूं तक नहीं बोले,

"मुनिकी उच्च वृत्ति है ऐसी जो सम दृष्टि सदा रखती॥
शत्रु-मित्र से एक भावमें एक भावना ही रहती॥
दिक् अम्बर मुनि शान्त, धीर, गंभीर सदासे होते हैं।
तत्त्व दर्शियोंमे वे अपना ऊंचा आसन रखते हैं॥
देखा तुम लोगोंने मुनिको, समदर्शीके बाने हैं।
शांत, तत्त्व दर्शी कैसे हैं, महा धीर मरदाने हैं॥

अन्तिम परिणाम

नागदत्ता डाकू-सरदारके मुखसे अपने पुत्रकी प्रशंसा सुनकर बड़ी क्रोधित हुई। वह क्रोधसे कांपने लगी। वह कहने लगी, "देखो, मेरा पुत्र होकर मुझे सचेत नहीं किया, नहीं तो मेरी ऐसी दुर्दशा क्यों होती? उसने सरदारसे कहा,—"मुझे एक छुरी दो, मैं उसी पापीकी मां हूं जिसने अपनी मातासे धोखा-धड़ी की है। मैं जीकर क्या करूंगी, नव महीने तक उसे अपने उदरमे रखकर जैसी दुर्दशा भोगी है इससे अच्छा है कि अपना प्राणान्त कर उसकी मांका अस्तित्व ही मिटा दूं जिसने निर्दयताका व्यवहार किया है। जिसने मेरे पूछनेपर भी उत्तर नहीं दिया, जिसने मुझे-अपनी मांको-उससे जिसने नव महीने तक जिसे उदरमें रक्खा-रास्तेका खतरा नहीं

बताया, मैं ऐसे नालायक पुत्रकी माता कहना उचित नहीं समझती, भाई, जल्दी छुरी दो, मैं अपना खातमा कर दूं।" डाकू सरदारने नागदत्तकी वात सुनकर गद् गद् होकर कहा,—मां! तुम मेरी भी माता हो जिसने ऐसे उन्नतमन्त मुनिराजको उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। माता, तुम केवल उक्त मुनिकी ही माता नहीं हो वरन् मेरी भी माता हो, मेरे अपराधको क्षमा करो, हे क्षमा मूर्ति मां!" ऐसा कहकर सरदारने नागदत्ताके लूटे हुये धनको वापस कर दिया, उसके वाद वह, महामुनि नागदत्तके पास चला गया। मुनिराजकी स्तुति कर उसने दीक्षा ले ली। सूरदत्त मुनिने अपने कठिन तपसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको प्राप्त कर अपने घतिया कर्म नष्ट कर दिये। केवल ज्ञान प्राप्त करनेके वाद वे संसारी जीवोंका कल्याण करने लगे। अन्तमे अपने अघातिया कर्मका नाश कर मोक्ष-धामके वासी हुये। अन्तमें, मेरी (लेखक) यही प्रार्थना है कि दोनों मुनि मुझे शांति प्रदान करें। यही हार्दिक कामना है।

शिवभूति पुरोहित की कथा

(१५)

"जग हित करने वाले जिन प्रभु, जगमें शीश झकाता हूं।
दुर्जन संगति कष्ट-कथा मैं, पाठकगण! लिख जाता हूं॥

किसी समय कौशाम्बी नगरीमे, राजा धनपाल राज्य करते थे। वे बुद्धिमान थे तथा प्रजा-वर्गके ऊपर न्यायतः शासन किया

करते थे। उनके नाम से शत्रु तक कांपते थे। राजाके यहां, पुराणोंका ज्ञाता शिवभूति पुरोहित रहता था। उसकी नगरीमें कल्पपाल और पूर्णचन्द्र नामक शूद्र रहते थे। एक दिनकी बात है कि पूर्णचन्द्रने अपनी लड़कीके विवाहमें पुरोहित महाराजको अपने यहां भोजन करनेके लिये निमन्त्रण दिया। पहिले, शिवभूतिने शूद्रके यहा भोजन करनेमे अपनी असमर्थता बतलाई, किन्तु, कल्पपालने हाथ जोड़कर कहा,—"महाराज! मै आपके भोजनके लिये ब्राह्मणके हाथो रसोई बनवानेका प्रबन्ध करूंगा, तब तो हर्ज नहीं है। आखिर ब्राह्मग देवता, बढ़िया बढ़िया माल खानेका लोभ नहीं छोड़ सके। वे भूल गये कि भोजन ब्राह्मण बनाता है किन्तु भोजनकी सामग्री तो शूद्रके पैसेसे ही आती है। बस निमन्त्रणके नियत समय पर ब्राह्मण शिवभूतिने उक्त शूद्रके यहां डटकर भोजन किया, तर माल खाकर ब्राह्मण अफर गया। मालूम होता था कि उसे भर पेट कभी ऐसा भोजन नहीं मिला था। किन्तु, दैवयोगसे किसीने शिवभूतिको वहां भोजन करते देख लिया, उसने इसकी खबर राजा को दे दी। बस, महाराजने शूद्रके यहां भोजन करने वर्ण-व्यवस्था तोड़ने वाले शिवभूतिको अपने राज्यसे निकाल बाहर किया, पाठक लोभमें पड़कर, उस ब्राह्मगकी कैसी दशा हुई। अतः बुरी संगति छोड़कर अच्छे लोगोंका साथ करना चाहिये जिसमें धर्म, कुल और मर्यादाका भंग न हो। किसीने कहा है:—

'सगति कीजै साधुकी, बनत बनत बनि जाय।
दुर्जनकी संगति तजो, कुल मर्याद नशाय॥"

पवित्र हृदय वाले बालककी कथा ।

(१६)

'बालक जैसा देखेगा वह वैसा ही प्रकटायेगा।
भेद-भाव, छल कपट न कोई रंचमात्र न लायेगा।।
बालकका मन स्वच्छ भावसे पूर्ण रूपही रहता है।
ऐसो बालककी गाथाको थोड़ेमें बतलाता है।।

गहनेके कारण जान गयी।

कौशाम्बी नगरीमें राजा जयपाल राज्य करते थे। उसी नगरीमें समुद्रदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम समुद्रदत्ता था। उसके पुत्रका नाम सागरदत्त था। वह अत्यन्त सुन्दर बालक था। जो कोई उसे देखता उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो जाता। उसे सभी खिलानेके लिये व्यग्र हो जाते। सेठ समुद्रदत्तके बगलमे ही गरीब गोपायन रहता था। सच है दरिद्र होना पूर्व जन्मका महान पाप है जिससे मनुष्य दरिद्रताका दुःख सहता है गोपायनके लड़केका नाम था सोमक। गरीब मां बाप अपने नन्हें लड़केको प्यार करते थे, मगर गोपायनके दिलमें धन-प्राप्त करनेकी इच्छा सदा बलवती रहती थी। आह! गरीबी तेरा सत्यानाश हो। तेरे जालमें फँसकर मनुष्य क्या २ दुष्कर्म नहीं कर डालते हैं। अतः वह येन केन प्रकारेण धन पानेका प्रयत्न करने लगा। दैवयोगसे उसे संयोग मिल गया। सागरदत्त और सोमक एक साथ खेला करते थे। धनी या गरीबके छोटे २ बच्चोंमें छल-कपट नहीं रहता। एक दिन सेठका लड़का

सागरदत्त गोपायनके घर जाकर उसके लड़केके साथ खेलने लगा, जैसा लड़के अक्सर किया करते हैं।

प्राण लिया।

उसी समय गोपायन वहाँ चला आया। उसने वालक सागरदत्त के शरीरमें, सोनेके गहने देखकर लोभ आ गया बस, क्या था शैतान शिरपर सवार हो गया। उस दुष्ट लोभी-पापीने बालकको घरके अन्दर बन्द कर बेरहमी और बेदर्दीसे उसका गला घोंट दिया। किन्तु उसका खुद लड़का पिताका पाप देख रहा था, गोपायनने बालकके गहने लेकर उसे घरमें गाड़ दिया।

हाय मार कर रह गये।

एक दिन वीता, दो दिन चले गये मगर सागरदत्तका कहीं पता नहीं लगा। तब सेठ समुद्रदत्त समझ गया कि गहनेके लोभके कारण उसके लडकेको जान चली गयी। दोनों दम्पति हाय मार-कर रह गये वे कर क्या सकते थे ? उनके हृदयमें शोककी अपार वेदना हुई, उसे शब्दों द्वारा वर्णन करना असम्भव है, अनुभवकी चीज है, उसे वही जानेगा जिसका लडका संसारसे चल बसा हो ! दुखियोंका दुःख दुखिया ही जानते हैं।

पापका भण्डाफोड़।

एक दिन संयोगसे सोमक सेठके घर खेल रहा था, उस दिन समुद्रदत्ताने स्वभाववश उससे पूछा,—"बचा, तुम अकेले खेलते हो, तुम्हारा साथी कहांपर है ? सोमकका हृदय पवित्र था। वह पापी

संसारका घात-प्रतिघात क्या समझे ? उसने तुरन्त कह दिया कि मेरा साथी मेरे घरमें गड़ा है। समुद्रदत्ता अपने प्रिय पुत्रकी दुर्दशा की बात सुनकर धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ी। उसी समय सेठ घर पहुंच गया, वह उपचार कर स्त्रीको होशमें लाया। इसके बाद सेठानीने सोमक द्वारा कही हुई सारी बातें समुद्रदत्तसे कह सुनायीं। समुद्रदत्तने राजाके कोतवालसे अपने लड़केकी हत्या की खबर दी। बस,बातकी बातमें पुलिसने धावा बोल दिया, गोपायनके घरमें एक गड्हेके अन्दर मृत बालक समुद्रदत्तकी छत-विछत लाश बरामद हो गयी गोपायन गिरफ्तार हुआ उसके ऊपर खूनका मामला चला, उसमें उसे फांसीकी सजा मिली। ऐसे पापियोंको ऐसी ही सजा मिलती है, किसीने ठीक ही कहा है:—

"पाप कर्म कर उसे न कोई सदा छिपाये रख सकता।
निश्चय जानो इक दिन उसका भण्डाफोड़ कभी होता॥
जो जैसा करते हैं वैसा अन्त समय फल पाते हैं।
सज्जन पाप कर्मको जगमें निश्चय तज कर जाते हैं॥"

अतः दुःख देने वाले हत्या, चोरी, झूठ, कुचाल कर्म छोड़कर सुख देने वाले दया रूपी जैन-धर्मकी सेवा करनी चाहिये। सच है बाल्य अवस्था निर्दोष तथा अज्ञानकी अवस्था है, उस समय मनुष्य अबोध रहता है। फिर जवानी आती है, उसमें पड़कर मनुष्य अन्धा हो जाता है। काम-वासना इत्यादि संसारी पाप कर्ममें लिप्त हो जाता है। वृद्धावस्थामें समस्त इन्द्रियां बेकार हो जाती हैं, बीच में संसारके झमेलेमें ही जीवन कट जाता है, आत्म-हितकी बात-तक सोचनेको फुर्सत नहीं रहती। अतः मनुष्य जैसे आता है उसी

रूपमें चल देता है। वह आत्म-कल्याण कर नहीं पाता। किसीने ठीक कहा है:—

"दुर्लभ तनको पाकर जगमें व्यर्थ गँवाना ना चहिये।
धर्म-मार्गमें चलकर अपना हित-साधन करना चहिये॥
मानव तन अनमोल रत्न है उसे काम लाना चहिये।
अपने हितके धर्म-मार्गमें तत्पर हो रहना चहिये॥

राजा धनदत्तकी कथा।

---

(१७)

"जैसे सूरजके प्रकाशको उल्लू रोक न सकते हैं।
वैसे पापी जैन-धर्मकी हानि न कुछ कर सकते हैं॥
हैं अनन्त ज्ञानके स्वामी जिन्हें जिनेश्वर कहते हैं।
नमस्कारकर महाराज धनदत्त-कथा हम लिखते हैं॥,

आन्ध्र देशके अन्दर कनकपुर नगरमें राजा धनदत्त शासन करते थे। वे सम्यक्त्वधारी गुणज्ञ धर्मात्मा राजा थे। राजा जैन धर्मका सच्चा अनुयायी था, किन्तु उसका मन्त्री बौद्धमतका माननेवाला था। उसका नाम श्री वन्दक था, महाराज अपने बौद्ध मन्त्रीके सहयोगसे शासन कार्य निर्विघ्नतापूर्वक करते थे, मन्त्री उनके शासन संचालनमें किसी प्रकारका बाधक नहीं बनता था। एक दिनकी बात है कि राजा धनदत्त अपने मन्त्रीके साथ कोठेपर बैठकर राज्यके सम्बन्धमें परामर्श कर रहे थे। इतनेमें आकाश मार्ग-

से दो चारण मुनि जाते हुए दिखलाई दिये। महाराजने उसी समय उन्हें नमस्कार कर अपने यहां उनका आवाहन किया। ठीक है:—

जो सज्जन होते हैं वे संगतिका लाभ उठाते हैं।
साधु-संतके दर्शनसे वे सहज प्रेम नित पाते हैं॥

मन्त्रीका श्रावक होना

महाराजकी प्रार्थनापर उक्त मुनियोंने धर्मोपदेश दिये। मुनियों के उपदेशके प्रभावसे प्रभावित होकर श्री विन्दकने श्रावक व्रत ले लिये। ऋद्धधारी मुनि अपने स्थानको चले गये, बौद्ध गुरुने मन्त्री को अपने यहां आते न देख उसे बुलाया। मन्त्री बौद्ध गुरुके पास जाकर बैठ रहा, बौद्ध गुरुको मन्त्रीने नमस्कार नहीं किया। बौद्ध गुरुके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी, उसने मन्त्रीसे नमस्कार नहीं करनेका कारण पूछा। श्रीवन्दकने अपने विषयमें जैन धर्ममें श्रावक व्रत लेनेकी बात कही तथा चारण मुनियोंके चमत्कार कह सुनाये। बौद्ध गुरु मन ही मन जलने लगा, उसने मन्त्रीसे कहा,—तुम ठगाये गये हो। भला तुम ही ख्याल करो कि आकाशमें कोई कैसे चल सकता है? अतः जैनी राजाने छल-कपटका जाल बिछाकर तुम्हें जैन धर्ममें मिलाया है। तुम निश्चय जानो, जैनी बौद्ध मत वालोंसे द्वेष रखते हैं, वे सदा बौद्ध धर्मकी हानि किया करते हैं। अतः तुम राजासे नहीं कहना, नहीं तो क्या २ अनर्थ होगा? श्रीवन्दक कमजोर हृदयका अस्थिर बुद्धिका आदमी था। वह सिद्धान्तहीन बेपेंदीके लोटेके समान था जो इशारा पाते ही जहाँ तहाँ ढुलक पड़ता है। किन्तु:—

जो पापी होते हैं सबको पाप-पंथ सिखलाते हैं।
अपने बुरे कर्मसे पापी बाज कभी न आते हैं॥
पाठक समझें अग्नि स्वयं जलती है और जलाती है।
स्वयं गरम है और दूसरोंमें गरमी पहुंचाती है॥

पापी मन्त्रीकी आंखे फूटीं।

बस बौद्ध गुरुके बहकावेमे आकर मन्त्रीका विचार बदल गया उसने श्रावक व्रत छोड़ दिया। दूसरे दिन राजाने भरे दरबारमें जैन धर्मकी महानता और चारण मुनियोंके चमत्कार कह सुनाये। सभी आश्चर्य प्रकट करने लगे। तब राजाने अपने कथनको सिद्ध करनेके लिये मन्त्रीकी तरफ अपनी नजर दौड़ाई। किन्तु वह तो दरबारसे ही गायब हो रहा था। राजाने मन्त्रीको बुलाकर उस दिनका दृश्य कहनेके लिये अनुरोध किया। दुष्ट मन्त्रीने कहना शुरू किया,—"महाराज! असम्भव है, न मैंने अपनी आंखों से देखा है और न इस प्रकारकी बात सम्भव हो सकती है।" महाराज अचम्भेमें पड़ गये, किन्तु उसी समय झूठे मन्त्रीकी दोनों आखों फूट गयीं। सभी समझ गये कि राजाका कहना सत्य है, मन्त्री एकदम झूठा है, 'जैसी करनी वैसी भरनी' के अनुसार इसने फल पाया।

"जो पथमें कांटे बोते हैं, उनके हित खाई रहती।
बुरे कर्मकी अन्तिम हालत कभी नहीं अच्छी होती॥
जो सज्जन हों जिन-शासनमें अपना ध्यान लगावेंगे।
मोक्ष-धाम पाकर वे जगमें मनवांछित फल पावेंगे॥

पाठको ! आपको भी उचित है कि आप अपनी निर्मल बुद्धि द्वारा जिन भगवान्‌के चरणोंको भक्ति-भावसे पूजाका पवित्र मोक्ष सुख देने वाले जिन भगवानके भक्त बनेंगे।

ब्रह्मदत्तकी कथा।

(१८)

"जिससे शिक्षा लेकर सज्जन भक्तिभाव हैं प्रकटाते।
सच्चे प्रभु अरहन्त देव हैं परिग्रह को नहिं फटकाते॥
नमस्कार कर उन भगवनको भक्ति-भाव अपनाता हूं।
पाठक पढ़ लें ब्रह्मदत्तकी कथा यहां लिख जाता हूं॥

इसी देशके कापिल्य नगरमें राजा ब्रह्मरथ राज्य करता था। उसकी रानीका नाम रामिली था। रानी बड़ी विदुषी थी, राजा उसे प्यार करते थे। उसी रानीके पुत्रका नाम चक्रवर्त्ती ब्रह्मदत्त था वे समस्त भूमण्डलपर एकाधिपत्य राज्य शासन करते थे।

रसोइयाका प्राणान्त।

महाराजके रसोइयेका नाम विजय सेन था। एक दिन उक्त रसोइयेने महाराजकी थालीमें इतनी गरम खीर परोसी जिसे खाने में महाराज असमर्थ रहे। बस, महाराजने बिना सोचे-विचारे गरमागरम खीर परोसी हुई थाली उठाकर विजयसेनके सिरपर दे मारी। सिर जलनेसे रसोइयेका प्राणान्त हो गया। हाय:—

'धिक्कार है उस क्रोधको, अन्धा बना देता जहां।
परिणाममें प्राणान्त होता, क्या अनर्थ होता वहाँ॥
हित-अहितका ख्याल तजकर क्रोध करते हैं जहां।
जिससे कुगतिमें भोगते हैं जान लो वे दुख महा॥

भीषण बदला।

रसोइया तो जल जानेके कारण मर ही गया किन्तु वह मरने के बाद खारे समुद्रके अन्दर विशाल रत्नद्वीपमें जाकर व्यन्तर देव हुआ उसने अपने विभंगावधिज्ञानसे पूर्व जन्मकी बातें ज्ञात कर लीं। उसका हृदय प्रतिशोधकी धधकती अग्निसे जलने लगा। उसने अपने प्राण-घातक महाराज ब्रह्मदत्तसे बदला लेनेका निश्चय किया। इस प्रकार अपने मनमें विचारकर उसने सन्यासीका वेष धर आम, नारंगी, केला तथा अन्य फल लेकर महाराजको भेंट किया। महाराज, कपटी सन्यासी द्वारा दिये हुए फल खाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुनः फल खानेके लोभमें महाराजने सन्यासी (व्यंतर देव) से विनम्र शब्दोंमें कहा,—"साधुवर! आपने दुर्लभ फल देकर मुझे कृतार्थ किया, किन्तु प्रभो, ऐसे २ उत्तम फल आपने कहां प्राप्त किये हैं जिसे खानेसे मन प्रसन्न हो जाता है। मैंने आज तक ऐसे फल नहीं देखे और न खाये थे। प्रभो! ये फल कहां होते हैं।" कपटी सन्यासी तो चाहता था कि अपने शत्रुसे किसी तरह बदला लें। कहा,—"महाराज, मैं जिस टापूमें रहता हूं वहांके एक सुन्दर बगीचेमें ऐसे उत्तम दुर्लभ फल बहुतायतसे फले हुए हैं। यदि आप चाहें तो वहां चलकर अपनी आँखों देख सकते हैं।"

राजा श्रेणिक ने मुनिराज पर प्रथम शिकारी कुत्ते छोड़े, पीछे उन्हें शांत देख स्वयं बाण छोड़ रहा है।

महाराज उसकी कपटपूर्ण बातोंमें फंस गये। बस वे बिना सोच समझे अज्ञात सन्यासीके साथ चल दिये। ठीक ही कहा है:—

"जो जिह्वाके लोभी होते, सहसा फंस पछताते हैं।
बुरी यातना सहते हैं अरु अपना प्राण गँवाते हैं।

प्राण कैसे गया

व्यन्तरदेव (कपटी सन्यासी) केसाथ जब महाराज समुद्रके बीचों-बीचमें पहुंच गये तब उसने महाराजको मारनेके विचारसे कष्ट देना शुरू किया। महाराज उसी समय पंच नमस्कार मन्त्रकी आराधना करने लगे, तब, उस देवकी सारी शक्ति नष्ट हो गयी। उसने अपना असली रूप प्रकट कर रहा,—"दुष्ट, क्या भूल गया, मैं वही रसोइया हूं जिसे तुमने जलाकर मार डाला था। आज मेरे हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि प्रज्वलित हो उठी है, मैं तुम्हें अपने पूर्व जन्मका बदला लेनेके विचारसे यहां लाया हूं, अब निश्चय जानो मैं तेरी जान लेकर अपना प्रति-शोध ऋण चुकाऊंगा जिसमे तू फिर किसीके साथ उस तरहका व्यवहार नहीं करेगा। हां, एक कार्य करनेसे तेरी रक्षा हो सकती है। यदि तू कहदे कि जैन-धर्म कोई धर्म नहीं है और जलमें पंच नमस्कार मन्त्र लिखकर अपने पैरसे मिटा दे तो तुम्हारी जान बच जायगी। महाराजने उस व्यन्तर के बहकावेमें आकर उसी प्रकार कर दिया जैसा उसने कहा था। उस व्यन्तर देवने उसी समय महाराजको मारकर समुद्रमें डाल दिया। उसने प्राण लेकर अपना बदला चुकाया। चक्रवर्तीके मनमें मिथ्यात्वके भाव आनेके कारण वह सातवें नरकमें गया।

"निश्चय समझो जैन-धर्मपर, जो विश्वास नहीं करते ।
इस असार संसार दुःखमय, में वे सुख नहिं पा सकते ॥
मिथ्या-भाव हृदयमें रखकर, पाप-कर्म कर जाते हैं ।
ब्रह्मदत्त सम नृपति शिरोमणि, घोर नर्क दुख पाते हैं ॥
जो निज हित करने वाले हों, मिथ्या-भाव छोड़ जावें ।
तो सम्यक्त्व भावको भजकर, स्वर्ग-मोक्ष पदको पावें ॥

प्रिय पाठक ! संसारके सबसे महान् देव अरहन्त भगवान हैं । वे संसारके द्वेष, परिग्रहसे परे रहकर इन्द्र, देव तथा चक्रवर्तियोंसे पूजित हैं, जो संसारी जीवोंको भव-सागरसे पार उतारनेके लिये जलयानके समान हैं । ऐसे परम हितकारी भगवान अर्हन्त देवके पवित्र चरणोंमें ध्यान रखनेसे जीवोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त होगा ।

महाराज श्रेणिककी कथा

(१६)

केवल ज्ञान दृष्टिसे जो प्रभु जिन जगको देखा करते ।
जगत्पूज्य श्री जिन चरणोंमें, सादर नमस्कार करते ॥
जिनकी सच्ची पूजासे जन, पतित मोक्ष तक पाते हैं ।
शुभ चरित्र श्रेणिकका लिखकर; जगका हित कर जाते हैं ॥

पाठक ! यहां उन दिनोंकी कथा लिखी जाती है जब-मगधाधिपति महराज श्रेणिक थे । वे सकल विद्याओंमें पण्डित थे । वे राजनीति-शास्त्रके धुरन्धर आचार्य थे । उनकी महारानी चेलनी

धर्मकी मूर्ति थी। वह जैन-धर्ममें अत्यन्त श्रद्धा रखती थी। एक दिनकी बात है कि महाराज श्रेणिकने अपनी रानीसे बौद्ध-धर्मकी प्रशंसा करते हुये कहा, "प्रिये! इस संसारमें बौद्ध-धर्म ही सुख दाता है उसके समान कोई अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है, अतः तुम बौद्ध मत स्वीकार कर लो।" पाठकगण, रानी चेलनी तो जैन-धर्मके रंगमें रंगी हुई थी, भला वह अन्य धर्म क्यों स्वीकार करती, उसने विनीत शब्दोंमें कहा, "महाराज, मैं आपके कथनानुसार बौद्ध धर्म अनुयायियोंकी परीक्षा करूंगी तब निश्चय करूंगी कि मुझे क्या करना चाहिये"?

बौद्ध साधुओंकी पोल खुली

एक दिन महारानीने बौद्ध साधुओंको अपने यहां निमन्त्रण किया। बौद्ध साधु बड़ी धूम-धामसे आये। वे ध्यान लगाकर परमात्माकी पूजा करनेका ढोंग रचने लगे। उन्हें इस प्रकार बक-ध्यान लगाये देख, महारानीने उनसे पूछा,—"साधुवर, आप लोग यह क्या कर रहे हैं।" उन्होंने उत्तर दिया,—"महारानी, हम लोगोंकी पवित्र आत्मा इस अपवित्र शरीरको छोड़कर स्वयं बुद्ध भगवानके रूपमें लीन हो रही है।" साधुओंकी कपट पूर्ण बात सुनकर, रानी चेलनीने मण्डपमें जहां साधु लोग ढोंग करके बैठे थे आग लगवा दी। आग लगते ही समस्त कपटी साधु अपनी जान लेकर भाग चले।

महाराजका क्रोध।

उपरोक्त समस्त वृत्तान्त सुनकर महाराज श्रेणिकने क्रोधमें

आग बबूला होकर रानीसे कहा,—"तुमने क्या अनर्थ किया ? निर्दोष साधुओंकी जान लेनेपर क्यों तुल गयीं ? यदि उनके ऊपर तुम्हारी श्रद्धा नहीं थी तो उसने तुम्हारी क्या हानि की थी जिससे तुमने आग लगाकर प्राण लेनेका निष्ठुर प्रयास किया। रानी चेलनीने विनीत शब्दोंमें कहा,—"नाथ! मैंने जान-बूझकर साधुओंके साथ अन्याय नहीं किया, बल्कि उनके साथ परोपकार किया है। कारण, वे ध्यान लगाकर शाक्षात बुद्ध बन रहे थे। उनका अपवित्र शरीर पृथ्वीपर था। मैंने विवेक-बुद्धिसे विचार किया कि जब ये समस्त साधु अपने अपवित्र शरीर छोड़ बुद्धके शाक्षात आकार बने हुए हैं तब क्या हो अच्छा हो कि ये सर्वदाके लिये विष्णु क्योंन बने रहें ? अपने इस अपवित्र देहका सम्बन्ध छोड़ दें इसी विचारसे मैंने आग लगाई थी। महाराज, आप ही निर्णय करें कि मैंने न्याय किया है या अन्याय। सच पूछिये तो मैंने परोपकारके विचारसे उपरोक्त कार्य किया है। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं आपको इस विषयपर एक कथा सुनाती हूं वह ऐसी है:—"

महाराज! मैं जिस समयकी कथा कह रही हूं उस समय कौशाम्बी वत्स देशकी राजधानी थी। वहाके राजा प्रजापाल थे। वे न्याय-नीतिसे प्रजाके ऊपर सुशासन करते थे। उनका जैसा नाम था वैसे ही उनमें गुण थे। उसी नगरीमें राजा सागरदत्त और समुद्रदत्त नामक दो सेठ रहते थे। एक दिन दोनों सेठने आपसमें शर्त की कि दोनोंके अगर पुत्र और कन्या हुई तो दोनोंका आपसमें विवाह कर प्रीति बनाये रहेंगे। इस प्रकार निश्चय करनेपर सागरदत्तके एक पुत्र हुआ जिसका नाम वसुमित्र रखा गया। किन्तु,

उसमें यही विशेषता थी कि वह दिनमें नागनाथ बन जाता और रात्रिमें सुन्दर जवान। उधर समुद्रदत्तके यहां एक कन्या हुई, उसने अपनी कन्याका नाम नागदत्ता रखा। वह अत्यन्त सुन्दर कन्या थी। समुद्रदत्तने अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वसुमित्रके पुत्रसे विवाह कर अपने वचनकी पूर्त्ति की। किसीने ठीक कहा है:—

"सच्चे जन हैं वही वचन हित कष्ट अनेकों सहते हैं।
पर अपने वचनोंको हरदम पूर्ण सत्य ही करते हैं।
मरते दमतक कठिन प्रतिज्ञाका पालन कर जाते हैं।
अरे! प्रतिज्ञा पालनमें वे कभी न पैर हटाते हैं॥

वसुमित्रका विवाह हो गया। वह दिनमें पिटारीमें बन्द रहता और रात्रिमें दिव्य पुरुष होकर नागदत्ताके साथ विषय-वासनामें लिप्त रहता। इस प्रकार दोनोंका जीवन व्यतीत होता। पाठक! संसारकी विचित्र लीला है। नागदत्ताकी माता अपनी कन्याकी दुरवस्थापर विचारकर दुःखी होती, वह सोचने लगी कि हाय! मेरी सुन्दरी कन्या, सांपसे ब्याह दी गयी, मेरी कन्याका भाग्य फूट गया। नागदत्ता अपनी माताकी बात सुन रही थी, उसने कहा, माता, तू व्यर्थमें क्यों चिन्तित हो रही है, मेरे भाग्यमें जैसा बदा है वह होकर रहेगा, इसमें किसीका दोष नहीं है। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि प्रयत्न किया जाय तो मेरे पतिकी वर्त्तमान हालतमें परिवर्तन हो सकता है। इस प्रकार कहकर नागदत्ताने अपनी मातासे पतिके सम्बन्धकी सारी बात कह दी। रात्रि होते ही वसुमित्र सांपका वेष छोड़ एक सुन्दर जवान पुरुष होकर अपनी स्त्रीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। उधर समुद्रदत्ता छिपकर सारी घटना

देख रही थी, उसने उसी समय पिटारी जला दी। बस, वसुमित्र सर्वदाके लिये मनुष्य बना रहा। नाथ! उसी प्रकार मैंने साधुओं-के सर्वदा विष्णु बने रहने देनेके विचारसे आग लगाई थी। यद्यपि महाराज रानीके युक्ति-युक्त उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं हुए, उनके दिलमें रानीकी चेष्टाको कसक रह गयी थी, किन्तु उस समय उन्होंने प्रकटमे कुछ कहना उचित नहीं समझा। अपने क्रोधको वहीं दबा दिया।

मुनिराजके साथ दुर्व्यवहार।

एक दिनकी बात है कि महाराज श्रेणिक शिकार करने वनमें चले गये उन्होंने वनमें यशोधर महामुनिको आतप योग करते देख क्रोधित होकर मुनिके ऊपर खूंखार कुत्ते छोड़ दिये। महाराजके भयङ्कर कुत्ते बड़े वेगसे मुनिराजके ऊपर दौड़ पड़े किन्तु आश्चर्य-की यह बात हुई कि भयङ्कर कुत्ते मुनिराजके पास आकर उनके तप-प्रतापसे चुपचाप खड़े हो गये। जब महाराजने देखा कि उनके भयङ्कर कुत्ते मुनिराजके सामने जाकर बकरे बन गये तब उनके क्रोधका ठिकाना नहीं था वे क्रोधमें आकर मुनिराजके तरफको तीर निकाल अन्धाधुन्ध चलाने लगे। मगर धन्य हैं मुनिराजका प्रभाव महाराजके छोड़े हुए समस्त तीर उनके शरीरमें फूलके समान लगे। मुनिराजके तपस्याका प्रभाव वर्णनातीत है। किन्तु महाराजने तपस्वी मुनिराजके ऊपर अत्याचार कर उसी समय सातवें नरक-में जानेके लिये योग पैदा कर दिया। उस नरककी आयु तैंतीस सागरकी होती है।

महाराजका पश्चाताप ।

जब महाराज श्रेणिकने मुनिराजके ऊपर अपने कुत्ते तथा तीखे बाणोंका तनिक भी असर नहीं देखा तब उनका हृदय मुनिराजके प्रति कोमल हो गया। वे अपने मनमें पश्चात्ताप करने लगे। महाराजने मुनिराजके पास जाकर अपने अपराधके लिये क्षमा माँगना शुरू किया। मुनिराजने उन्हें क्षमा प्रदान कर पवित्र जैन धर्मका उपदेश दिया। फलस्वरूप महाराज श्रेणिकने उसी समय सम्यकत्व ग्रहण कर लिया। पाठकगण, पवित्र सम्यकत्वके प्रभावसे महाराजके लिये अब प्रथम नरकके भोगनेकी आयु रह गयी जो चौरासी हजार वर्षोंकी होती है।

अन्तिम शुभ परिणाम ।

अन्तमें महाराज श्रेणिकने श्री चित्रगुप्त महामुनिके पास जाकर क्षयोपशम सम्यकत्व प्राप्त किया। इसके अनन्तर उन्होंने भगवान वर्धमान स्वामीके द्वारा क्षायिक सम्यक्त्वसे शुद्ध होकर अंतिम पूज्य तीर्थंकरका सम्बन्ध स्थिर किया। पाठक, महाराज श्रेणिक तीर्थंकर होकर निर्वाण प्राप्त करेंगे। भगवान जिनेन्द्र केवल ज्ञान रूपी प्रदीपके समान हैं जिनेन्द्र देव, विद्याधर तथा चक्रवर्ती तक पूजते हैं उन्हीं भगवानके परम पवित्र उपदेश ग्रहण कर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त कर मोक्षका अधिकारी होता है। अतः ऐसे पवित्र जिन भगवानकी पूजा करना प्रत्येक उच्च मनुष्यका कर्तव्य है।

राजा पद्मरथकी कथा।

(२०)

"जिन चरणोंमें देवराज, अरु महाराज तक नमते हैं।
जिन चरणोंकी सेवा करके महा पतित तक तरते हैं॥
उसी पवित्र भक्तिमें रङ्गकर जिसका मान बढ़ाते हैं।
वही कथा नीचे लिखता हूं जो पढ़ कर सुख पाते हैं॥

मगध देशान्तर्गत मिथिला नामक नगरीमें राजा पद्मरथ राज्य करते थे। वे परोपकारी, दयालु तथा नीति-निपुण राजनीतज्ञ थे। एक दिनकी बात है कि राजा पद्मरथ शिकार खेलने जङ्गलमें गये। उन्होंने एक खरगोशके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया, किन्तु वह इतनी तेजीसे भागा कि बातकी बातमें राजाकी नजरोंसे ओझल हो गया। राजा मन मारकर रह गया, राजाका घोड़ा दौड़ता हुआ कालगुफा नामक गुफाके पास पहुंच चुका था, उसी गुफामें संयोग से सुधर्म मुनिराज तपस्या करते थे। पाठकगण, जिस प्रकार तपा हुआ लोहा जलकी बूंदोंसे शान्त हो जाता है उसी प्रकार परम शान्त तपस्वी मुनिराजके शुभदर्शनसे महाराजका हृदय गद्गद् हो गया। महाराज घोड़ेसे उतर पड़े, उन्होंने श्रद्धा-भक्तिसे मुनिराजको नमस्कार किया। मुनिराजने राजा पद्मरथको धर्मोपदेश देकर उनका मन प्रफुल्लित कर दिया। राजाने हाथ जोड़कर विनीत शब्दोंमें कहा,—'मुनिराज! आप कृपाकर बतावें कि आपके समान कोई अन्य मुनिराज इस संसारमें हैं या नहीं, अगर कोई हैं तो किस

स्थानपर हैं ?" राजाकी जिज्ञासा भरी बात सुनकर मुनिराजने कहा,—"महाराज ! मैं जिन भगवान बारहवं तीर्थंकर वासुपूज्यकी चर्चा करता हूं उनके शरीरका तेज सूर्यके प्रखर तेजके समान है। उनके रोम २ से दिव्य छटा प्रकाशित हो रही है। उनके अनन्य ज्ञानके आगे संसारमें कोई उपमा मिलना असम्भव है। मैं उनके आगे नगण्य हूं। सच है ऐसे दिव्य अलौकिक पुरुषसे हमारी तुलना हो नहीं सकती। मैं उनके सामने कुछ भी नहीं हूं ? इस प्रकार मुनिराजके निस्पृह वचन सुनकर राजाके हृदयमें भगवान वासुपूज्य के दर्शनकी प्रबल इच्छा हुई। वे भगवान्के दर्शनके लिये चल पड़े। महाराजके साथमें अन्य लोग भी दर्शनार्थ चले। उसी समय धन्व-न्तरी और विश्वानुलोम नामक दो देवोंने राजाको भगवान वासु-पूज्यके पास जाते देख उनकी परीक्षा लेना शुरू किया। उसी समय देवोंने घोर उपद्रव करना प्रारम्भ किया, उनके मार्गमें काला सांप मिला। इसके बाद राज्य छत्र दण्डका भंग होना दिखाई पड़ा। इसके उपरान्त पत्थर वर्षा शुरू हुई, अग्निकांड हो गया फिर मूस-लाधार पानी बरसना शुरू हो गया। महाराजके साथ चलने वाले अधिकांश आदमी घायल होकर अधमरेसे हो गये। मन्त्रियोंने इस यात्राको अशुभ करने वाला बताकर महाराजको वापस चलनेके लिये सलाह दी।

दृढ़ प्रतिज्ञा।

किन्तु राजा पद्मरथ अटल बने रहे। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया चाहे जो कुछ परिणाम हो मगर मैं भगवान्का पवित्र दर्शन अवश्य करूंगा। इस प्रकार विचार कर उन्होंने 'नमः श्री वासुप-

ज्याय' कहकर भगवान वासुपूज्यके पास जानेके लिये प्रस्थान कर दिया। देवोंने महाराजकी निश्छल भक्ति देख प्रकट होकर उनकी प्रशंसा की, इसके उपरान्त उक्त देवोंने एक बहुमूल्य हार और एक योजनतक सुनायी देने वाली एक वीणा देकर अपने २ स्थान पर प्रस्थान किया। सच है:—

जिसके शुद्ध हृदयमें वहती जिन प्रभुकी भक्ती-गंगा।
सफल मनोरथ वह होता है इसमें नहीं जरा-शंका॥

दीक्षा धारण।

जिस समय राजा पद्मरथ भगवान वासुपूज्यके पवित्र समवशरणमें पहुंचे उस समय उन्होंने क्या देखा कि भगवान आठप्रतिहार्योंसे युक्त हैं, अनेक देव, विद्याधर राजे, महाराजे भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं। भगवान अपने केवल ज्ञान द्वारा संसारके समस्त तत्त्वोंको जानते हुए पवित्र धर्मोपदेश दे रहे हैं। जन्म-जन्मान्तरोंके मिथ्या भावोंको नाश करने वाले भगवान वासुपूज्यके पवित्र दर्शन कर वे गद्गद् हो गये। राजाने भगवान्‌की स्तुतिकर पूजा की इसके बाद भगवान्‌ने उन्हें पवित्र धर्मोपदेश दिये, जिन्हें सुनकर वे दीक्षा लेकर तपस्वी बन गये। तपस्या द्वारा राजा अवधि तथा मनः पर्यय-ज्ञान प्राप्त कर भगवान् वासुपूज्यके गणधर बन गये।

श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि वे भगवान जिनेश्वरकी सच्ची भक्ती कर मिथ्या भावोंको छोड़ स्वर्ग मोक्षका अधिकारी बनें। जिस प्रकार राजा पद्मरथने भगवान जिनेन्द्रकी सच्ची उपासना कर भक्तराज का आसन पाया इसी प्रकार अन्य लोगोंको करना चाहिये। भगवान जिनेन्द्रकी भक्ति करनेसे कितना फल मिलता है, यह वर्णनातीत

है। सच है उसीके द्वारा संसारके वैभव स्वर्ग मोक्ष तथा अन्य मनोरथ प्राप्त होते हैं। भक्तिके द्वारा ही केवल-ज्ञान द्वारा संसारका कल्याण होता है। इस प्रकार भगवान वासुपूज्य संसारी जीवोंके कल्याणका भाव प्रदान करें तथा कर्मोंके कारण घोर कष्ट सहने-वालोंका उद्धार करें यही मेरी (लेखक) विनम्र प्रार्थना है।

पंच नमस्कार मन्त्रकी महिमाकी कथा।

(२१)

"मोक्ष सुखोंको देने वाले, श्री अरहंत कहाते हैं।
उपाध्याय आचार्य साधुओंको निजशीश झुकाते हैं॥
जपकर नमस्कार मंत्रोंको, स्वर्ग-मोक्षका-सुख पाया।
सेठ सुदर्शनकी गाथाको सुन कर करलो शुचि काया॥

अंगदेशमें चम्पानगरीका राजा गजवाहन था वह अत्यन्त रूपवान तथा बड़ा बहादुर था। उसने अपने समस्त शत्रुओंको पराजित कर अपना राज्य निष्कंटक बना लिया था। उसी राजाकी राजधानीमें एक वृषभदत्त नामक सेठ रहता था, उसकी अर्हद्दासी नामक स्त्री थी। वह शीलवती थी, उसपर सेठ अपना हार्दिक प्यार रखता था। इस प्रकार दोनोंका दाम्पत्य जीवन आनन्दमय व्यतीत होता था।

ग्वालेकी दयाभक्ति।

पाठक! उसी सेठके यहां एक ग्वाला नौकर था। एक दिन

ऐसी घटना घटी जिससे ग्वालेके जीवनमें महान परिवर्तन कर दिया। बात यों हुई कि ग्वाला जंगलसे अपने घर आ रहा था, रास्तेमें उसने एक मुनिराजको एक शिलापर बैठकर ध्यान लगाये देखा। उस समय संध्या हो रही थी, जाड़ेका समय था। ग्वालेने अपने मनमें विचार किया कि इस जाड़ेमें मुनिराज विना वस्त्रके इस शिलापर कैसे रात काटेंगे। दया-भावसे प्रेरित होकर वह अपने घर गया और उसने अपनी स्त्रीसे मुनिराजके सम्बन्धमें सारी बात कह सुनायी। पीछे ग्वाला मुनिराजके पास पहुंचा उसने देखा कि मुनिराजका सारा शरीर ओससे भींग गया है। किन्तु मुनिराज अविचल-भावसे उसी शिलापर बैठे ध्यानमें लीन हैं। उसने भक्ति भावसे प्रेरित होकर उनके शरीरके ओस बिन्दुओंको पोंछ डाला। इस प्रकार ग्वालेने समूची रात मुनिराजकी सेवामें बिताई। प्रातः काल होते ही मुनिराजका ध्यान टूटा। उन्होंने ग्वालेको भक्ति-भाव से सेवामें संलग्न देख उसे पवित्र पंच नमस्कार-मन्त्र दिया जिसे प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग-मोक्ष सदृश दुर्लभ रत्न पाते हैं। मुनिराज भी मंत्रका उच्चारण करते हुए आकाशमें बिहार करने लगे।

ग्वाला का क्या हुआ।

इधर ग्वाला पंचनमस्कार मंत्र की रट लगाने लगा। वह उठते बैठते, सोते-जागते उसी मंत्रका उच्चारण करता। वह किसी कार्यके प्रारम्भ करनेके प्रथम उसी पवित्र मन्त्रकी आराधना करता। इस प्रकार उक्त मन्त्र उसके रोम रोममें व्याप्त हो गया। एक दिन सेठ वृषभदत्तने ग्वालेको मंत्र कहते सुन लिया सेठने मंत्र प्राप्त करनेके सम्बन्धमें उससे पूछा। ग्वालेने मन्त्र पानेके सम्बन्धमें सेठसे मुनि-

राजकी सब बातें कह दीं। वृषभदत्तने प्रसन्न होकर कहा,—"तेरा जीवन धन्य है। तेरा अहो भाग्य जो तूने मुनिराजके दर्शन किये जिनकी पूजा त्रिभुवन भरमें हो रही है। सच है :-

"जो सच्चे मानव हैं जगमें, धर्म-भाव प्रगटाते हैं।
अपने धर्म-प्रेम परिचयमें, पूर्णानन्द जताते हैं॥

ग्वाला सेठका पुत्र हुआ।

एक दिन ऐसी घटना घटी कि उस ग्वाले को मवेशिया नदी पार करने लगी। वह भी पंच नमस्कार मंत्रका स्मर्ण कर मवेशियोंके पीछे नदीमें कूद पड़ा। बरसातके कारण, नदी भरपूर भरी हुई थी। दुर्भाग्यसे कहिये या संयोगसे, नदीमे कूदते ही एक नोकीली लकड़ी उसके पेटमें घुस गयी जिससे उसका पेट फट गया और उसका प्रणान्त हो गया। पवित्र मन्त्रके प्रभावसे वह स्वर्ग जाता किन्तु उसने अपने मनमें सेठ वृषभदत्तके पुत्र होनेकी इच्छा की थी फलस्वरूप वह ग्वाला मरनेके बाद उक्त सेठका पुत्र हुआ। उसने उच्च कामना नहीं की थी अतः सेठका पुत्र हुआ। उसका नाम सुदर्शन रक्खा गया। सुदर्शनके जन्म लेते ही सेठ वृषभदत्तकी दिन दूनी, रात्रि चौगुनी उन्नति हुई। उसकी इज्जत, धन वैभव तथा सम्पत्ति बेहद बढ़ गयी। सच है :—

"पुण्यवान जो नर होते हैं, यश वैभव-सुख पाते हैं।
जहां जहां पर वे जाते हैं—सुख से समय बिताते हैं।।"

सुदर्शनका व्याह।

कुछ दिनोंके बाद, सुदर्शन सयाना हो चला उसी नगरीमें साग-

रदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम,सागरसेना था। मनोरमा उसकी लड़की थी वह सुन्दरी थी। उसीके साथ सुदर्शनका विवाह हुआ अब, सुदर्शनने गृहस्थ जीवनमें प्रवेश किया। युगल-जोड़ी आनन्दसे जीवन बिताने लगी।

रानीका दुराचार

पाठक ! एक दिन सेठ वृषभदत्त समाधिगुप्त महामुनिके दर्शनके लिये गया। उसपर मुनिराजके धर्मोपदेशका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह समस्त धन-वैभव सुख छोड़ दीक्षा लेकर तपस्वी हो गया। अब, सुदर्शनके ऊपर गृह, परिवार, गृहस्थीका समूचा भार आ पड़ा, सुदर्शनकी ख्याति फैलने लगी, राज-दरबार सर्व साधारण तक उसे चाहने लगा। सुदर्शन भी संसारिक कामोंमें कुशल रहा, साथ ही साथ उसने जिन-भगवानकी भक्तिमें अपना अधिकांश समय देना शुरू किया। तबसे उनकी गणना धार्मिक पुरुषोंमें होने लगी। सभी उसके सदाचार, श्रावकव्रत-विधान तथा दान-पुण्य कर्मसे उसकी प्रशंसा करने लगे। वह भी ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर सदाचार पूर्ण जीवन बिताता। इस प्रकार राज-दरबारमें उसकी पूछ ताछ होने लगी। मगधाधिपति उसे खूब मानते। एकदिन महाराज सुदर्शनके साथ उपवनमें टहल रहे थे। महाराज गजवाहनकी रानी भी साथमें थी। रानी सेठ सुदर्शनके रूप-सौन्दर्य देखकर उसपर मोहित हो गयी। उसने अपनी एक दासीसे सुदर्शनके सम्बन्धमें पूछ ताछ की। दासीने हाथ जोड़कर कहा,—"महारानी, वे आपकी नगरीके प्रधान सेठके पुत्र हैं। इनका नाम सुदर्शन है।" रानीने कहा,—"तब तो कितने आनन्दकी बात है कि ये राज्य-रत्न हैं। लेकिन, इनका

सौन्दर्य अपूर्व है। मैंने आज तक, इनके समान सुन्दर पुरुप नहीं देखा है, अहा! इनको देखते ही मेरा मन आकर्षित हो जाता है। मुझे भ्रम है कि-स्वर्गके देव इतने सुन्दर होते हैं या नहीं, अच्छा, तुम तो कहो कि सेठ कैसे लगते हैं? क्या तुमने इनके समान किसी पुरुपको इतना सुन्दर देखा है।" दासीने ठकुरसुहाती बात कही,—"महारानीजी! आपका अनुमान ठीक है। पृथ्वी क्या त्रिभुवन भर में इनके समान सुन्दर रोबीला जवान मिलनेका नहीं है। ये सच-मुचमें सुन्दर पुरुपोंके सरताज हैं। रानीने दासीको अपने मनके अनुकूल पाकर कहा,—"अच्छा, क्या तू मेरा एक काय कर सकती है। सच जानो, मैंने तुझे अपनी अन्तरङ्ग दासी समझकर कहा है, देखना यह बात किसीपर प्रगट न हो। दासीने कहा—मैं तो आपकी दासी हूं, कहिये क्या आज्ञा होती है मैं पूरा करनेके लिये तैयार हूं।"

रानीने कहा, तू कह कि मैं कार्य कर दूंगी, तब मैं कहूंगी। दासीने चौंककर कहा, "महारानीजी, आप विश्वास रक्खें कि मैं अपने वसकी बात पूर्ण करनेको प्रस्तुत हूं मुझसे जहां तक बन पड़ेगा मै आज्ञा-पालन करनेसे मुंह न मोड़ूंगी। उस समय रानी अपनी भावी आशापर फूली नहीं समायी। वह भविष्यकी सुन्दर-कल्पना करने लगी, इतनेमें रानी व्यग्रता प्रगट करती हुई कहने लगी, "देखो, मैं इस नव-जवानपर तन मनसे मोहित हूं। मैंने जबसे इसे देखा है तबसे यह मेरी नजरोंमें समा गया है, मेरा हृदय इस-पर कुर्बान हो रहा है। बस, तू ऐसा प्रयत्न कर कि यह सुन्दर सेठ मेरे पास आवे। नहीं तो मेरा जीना असम्भव है देखना, यह गुप्त

बात तेरे सिवाय कोई दूसरा न जाने नहीं तो......! कहकर रानी चुप हो गयी। बस, दासी फूलकर कुप्पा हो गयी। उसने अपने मनमें विचार किया कि मेरा भाग्य भी पत्थर हो जायेगा। मै माला-माल हो जाऊंगी। रानी तो काममें पीड़ित हो रही है यह मेरे चंगु-लमें है ही। आप इतनीसी बातके लिये क्यों व्यर्थमें परेशान हो रही हैं मैं बातकी बातमें आपके दिलके अरमान पूर्ण करती हूं। संसारमें कौन ऐसी चीज है जो आपको न मिल सके। आप विश्वास रक्खें, घबड़ायें नहीं, आपके मनकी मुराद पूर्ण होगी और जल्दी पूर्ण होगी।" पाठक गण! किसीने ठीक कहा है:—

जो असभ्य होते हैं वे कथा २ न कर्म कर जाते हैं।
अपने दुष्कर्मोंसे देखो कैसे दुःख उठाते हैं॥

तपस्वी सुदर्शन

पाठक! उधर सेठ सुदर्शनने श्रावक-व्रत ग्रहण किये थे। वह संसारमें रहते हुये भी उससे स्वतंत्र होना चाहता था इसलिये वह कभी २ ध्यानमें लीन रहता था। वह अष्टमी और चतुर्दशी तिथि-योंमें अकसर श्मशान-भूमिमें जाया करता था। वह रात्रिके समय श्मशानमें जाता और ध्यानमें लीन रहता। इधर रानीकी दासी तो सुदर्शनको एकान्तमें पानेका मौका ढूंढ़ही रही थी, उसे मौका मिल गया, किन्तु, सबसे पहिले उसने पहरेदारोंके ऊपर अपना रोब ग़ालिब करनेके लिये एक षड़यन्त्र रचा, जो यों है:—उसने कुम्हारसे मनुष्यके आकारके समान मिट्टीकी मूर्ति बनवाई। एक दिन ऐसी घटना घटी वह मिट्टीकी मूर्ति महलमें ले जाने लगी, पहरे-

दारोंने उसे महलमें नहीं जाने दिया। दासी हिम्मत कर आगे बढ़ी, किन्तु पहरेदारोंने रोक लिया। इसपर उसने गुस्सेमें आकर समूची मूर्ति जमीनपर पटक दी। मिट्टीकी मूर्ति जमीनपर गिरते ही चूर-चूर हो गयी। अब, दासीने क्रोध दिखलाकर कड़े शब्दोंमें कहा,—"दुष्टो! क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि महारानीने नर-व्रत धारण किया है जिसमें नरके समान मिट्टीके पुतलेकी आवश्यकता थी जिसे आज मैं ले जा रही थी. किन्तु. तुम लोगोंने मूर्ति तोड़ फोड़ दी। अब, महारानीका व्रत कैसे पूर्ण होगा, वे बिना भोजन किये रहेंगी मैं अभी जाकर उनसे सारी बातें कहकर तुम्हें दण्डित कराती हूं, तुम्हारे दुष्कर्मोंका अभी बदला चुकाती हूं।" पहरेदार भय-भीत हो गये। वे दासीसे हाथ जोड़कर अपराधकी क्षमा कराने लगे। सब लोग कहने लगे, क्षमा करो, महारानीसे कहकर हमें दण्ड न दिलाओ।" दासीने कहा, "अच्छा, मैं इस बार तो क्षमा करती हूं परन्तु तुम लोगोंने अपराध तो बड़ा भारी किया है मगर तुम्हारी हालत देखकर मुझे दया आती है। किन्तु अगर तुमने फिर गल्ती की, तो मुझे कोई चीज या महारानीसे नर-व्रतकी पूर्तिके लिये अगर कोई आदमीकी ही आवश्यकता पड़ी तब तुम लोगोंने रुकावट डाली तब क्या होगा? पहरेदारोंने हाथ जोड़ते हुए कहा,—"इस बार तो क्षमा प्रदान करा दो। दुबारा हम लोग तुम्हारे काममें दखल नहीं देंगे। तुम आने जानेमें स्वतन्त्र हो।" दासीने डांटकर कहा, अच्छा, इस बार तो मैं माफ करे देती हूं किन्तु आइन्देसे ख्याल रखना इस प्रकारकी गुस्ताखी कर हमारे कार्यमें बाधा न डालना, मैं रानीका व्रत पूरा करनेके लिये मिट्टीके पुतलेके लिये जा रही हूं या जैसी

आवश्यकता होगी करूंगी। ऐसा कहकर वह श्मशानमें पहुंच गई वहाँ जाकर उसने देखा कि तपस्वी सुदर्शन ध्यानमें निमग्न हैं। श्मशानकी भूमि भयंकर होती है। चिताओंके जलानेसे उसकी भयङ्करता और बढ़ रही थी। उसी भयङ्कर स्थानमे तपस्वी सुदर्शन कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन थे। बस दासीको अच्छा सुयोग मिला। वह फूली नहीं समायी, उसी समय उसने तपस्वी सुदर्शनको उठा कर रानीके महलमें पहुंचा दिया।

ब्रह्मचारी सुदर्शन।

जिस समय रानीने सेठ सुदर्शनको अपने कमरेमें पाया, वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अपने मनमे विचार किया कि मेरी मनोकामना पूर्ण हुई, वह काम वासनासे मतवाली बन रही थी। उसने सेठ सुदर्शनसे कहा,—"प्यारे! मेरी मनोकामना पूर्ण करो। अपने प्रेमालिङ्गन द्वारा मुझे सुखी करो, देखो, तुम्हारे लिये मुझे कितनी परेशानी उठानी पड़ी अब, आनन्दसे सुख-क्रीड़ाकर जीवन सार्थक करो, मगर तपस्वी सुदर्शन टससे मस नहीं हुए। संसारमें ऐसे जितेन्द्रिय तपस्वी, आदर्श-सदाचारी ब्रह्मचारी कहां मिलेंगे। रानीकी अनेको कुचेष्टाओंपर भी ब्रह्मचारी सुदर्शनका मन विचलित नहीं हुआ। वे जिन भगवानका स्मरण कर इस कष्टसे रक्षा पानेके लिये प्रार्थना करने लगीं। उन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि यदि आज मेरे सदाचारकी रक्षा हो गयी तो मैं इस संसारको छोड़कर वैराग्य धारण कर लूंगा, फिर इस संसारके झमेलोंमें नहीं पड़ूंगा। इस प्रकार निश्चय कर वे ध्यानमे लीन हो

रहे। धन्य हो तपस्वी सुदर्शन तुम्हारी जितनी भी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। भला ऐसे समयमें कौन ऐसा ब्रह्मचारी होगा जो सुन्दरियोंके अनेकों अनुनय-विनयको यों ठुकरा दे, संसारमें मुक्त होकर ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके स्थानपर सुन्दरीके बाहुपाशोंसे बच कर अपने सदाचारकी रक्षा कर सकना तपस्वी सुदर्शनका ही काम है। सच है:—

कठिन कष्ट सहकर भी सज्जन सत्पथ कभी न तजते हैं।
अन्त समयतक दृढ़ व्रत रहकर सदाचार पथ गहते हैं॥

रानी अपनी लाख कोशिश करके थक गई, मगर सुदर्शनका व्रत भंग न हुआ। उसकी बुरी वासना पूरी नहीं हुई, वह लज्जित होकर तपस्वी सुदर्शनको फँसानेका यत्न करने लगी, उसने अपना शरीर नोचकर घाव कर दिये वह उसी समय हल्ला करने लगी,— 'अरे दौड़ो, बचाओ, पापीके हाथोंसे। बस, बस उसका दूसरा षडयन्त्र सफल हुआ, तपस्वी सुदर्शन महलमें ही पकड़ लिये गये। और महाराजके सामने पकड़कर पहुंचा दिये गये। पाठक देखा आपने स्त्रियोंका चरित्र! थोड़ी देर पहले बात क्या थी और अब क्या हो गयी? किसीने सत्य ही कहा है:—

दुराचारिणी नारी जगमें क्या न कर्म कर सकती है।
बुरे कर्म करनेमें कुलटा रंचक नाहिं लजाती है॥

पाठकगण! दुराचारिणी रानीने अपनी बुरी वासना पूरी होते न देख हल्ला मचाकर निर्दोषी ब्रह्मचारी तपस्वी सुदर्शनको बन्दी बना दिया। महाराजने सुदर्शनकी कथा सुनकर क्रोधमें आग-बबूला हो उन्हें फांसीकी सजा दे दी।

तपस्वी सुदर्शनकी रक्षा।

इधर महाराजका हुक्म हुआ,—"दुष्ट पापीको मार डालो।" उधर जल्लादोंने तपस्वीको श्मशान-भूमिमें मार डालनेके लिये ले जाकर खड़ा कर दिया उधर जल्लादकी तलवार चली उधर सुदर्शनकी झुकी हुई गर्दन ज्योंकी त्यों साबित रही, तलवारका वार व्यर्थ गया, सुदर्शनके गर्दनपर वह फूलके समान लगी। सभी आश्चर्य सागरमें गोता खाने लगे। उसी समय देवोंने तपस्वी सुदर्शनकी जय मनाते हुए स्तुति की—तपस्वी तुम धन्य हो। आज संसारमें तुम्हारे समान कोई श्रेष्ठ जिन-भक्त नहीं। ब्रह्मचारी तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत अनुपमेय है। तुम्हारा हृदय सुमेरके समान अचल है। तुमने अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा वह अलौकिक काम किया है जिसकी उपमा त्रिभुवनके इतिहासमें मिलनेकी नहीं देवोंने पुष्प वर्षा की तथा श्रद्धा-भक्तिसे उनकी पूजा की। सच है—

पुण्यवानके दुख भी सुखमें जैसे परिणत होते हैं।
सदाचार रक्षा करनेमें कभी न साहस खोते हैं॥
पुण्य कर्मकर श्रेष्ठ जनोंको धर्म धारना ही चहिये।
जिन प्रभुकी सच्ची भक्तीकर पुण्य पंथ गहना चहिये॥

पाठकगण! पुण्य कामोंमें निम्नलिखित बातें हैं:—जिन भगवानकी पूजा, सत्पात्रोंको दान, ब्रह्मचर्य व्रत पालन, अणुव्रताचार दु:खियों, असहाय पीड़ितोंकी सेवा विद्यादान, विद्यालय स्थापित करना, उसमें सहयोग देकर विद्यार्थियोंको निःशुल्क विद्या दान दिलाना पुण्य कहलाते हैं। उधर किसीने महाराजके कानोंतक,

तपस्वी सुदर्शनके प्रभावका वर्णन कह सुनाया। महाराज अविलम्ब तपस्वीके पास पहुंचे। उन्होंने अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना की।

संसार त्यागी तपस्वी सुदर्शन।

इस घटनासे सुदर्शनके अन्तस्थलमें अत्यन्त ही घृणाका भाव उत्पन्न हो गया। वे उसी समय अपने पुत्र सुकान्तवाहनपर घरका भार सौंप संसार पूज्य विमल वाहन महामुनिके पास जाकर दीक्षित हो गये। मुनिराज सुदर्शनने अपने कठिन तप द्वारा अपने घातिया कर्मोंका नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। अन्तमें उन्होंने सबको परोपकार कल्याण मार्ग दिखलाते हुये अनन्त सुखधाम मोक्षवासकर परमानन्द प्राप्त किया। अतः पंच नमस्कार मंत्रकी अपूर्व महिमाका प्रकरण सुनकर प्रत्येक उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि वे श्रद्धा-भक्तिसे परम पवित्र मन्त्रकी आराधना करें। भगवान जिनचन्द्र, संसार रूपी मनमें सदा अपनी छटा दिखलाते रहें जो श्रुति ज्ञानके सिन्धु हैं। अनेक मुनि देव, विद्याधर चक्रवर्त्ती जिन की पूजा करते हैं जिनकी केवल ज्ञान रूपी कान्ति संसारके पाप रूपी तमको नाश करनेमें चन्द्रमाके समान प्रकाशित रहती है वही हमारी (लेखक) मनोकामना पूर्ण करे ऐसी हार्दिक प्रार्थना है।

चन्द्ररूप बनकर श्री भगवन हृदय कामना सफल करो।
नित २ यही प्रार्थना भगवन ! करते हैं सब विघ्न हरो॥
केवल ज्ञान तुम्हारा जगका ज्ञान प्रकाशित करता है।
हे प्रभु ! सच्चा नाम तुम्हारा जग पापोंको हरता है॥

यममुनि की कथा।

(२२)

"पाठक! श्री यम मुनि कैसे थे, अल्प बुद्धिके ज्ञानी।
कैसे मुक्ति नारि वे पाये, पढ़लो वही कहानी॥
गुरु देवके चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूं।
जो सुख को देनेवाली है, ऐसा ही लिखता हूं॥

उड्र देशान्तर्गत धर्म नामक नगरमें राजायम राज्य करते थे।' उनकी रानीका नाम धनवती था। उसके पुत्रका नाम था गर्दभ और कन्याका नाम था कोणिका, वह अत्यन्त सुन्दरी थी। राजा यमके राजमहलमें अन्य रानियां थीं जिनके पांच सौ पुत्र थे। वे सबके सब वैरागी थे, संसारी मायामें उनका तनिक मन नहीं लगता था। राजा यमके यहां दोर्घ मंत्री था। इस प्रकार उनका समय सुख शांतिसे बीतता था।

कोणिका का भाग्य।

एक दिन एक राज-ज्योतिपीने कोणिका की भाग्य गणना कर बताया कि यह कन्या जिससे व्याही जायगी वह समस्त संसारका सम्राट् होगा। राजा यमने कन्याके भाग्यकी बात सुनकर उसे यत्नसे रखना शुरू किया जिसमें कोई छोटे-मोटे बलवान राजा न देख ले।

राजा मुनि संघसे पराजित हुआ।

उसी समय श्री सुधर्माचार्यका संघ वहां आ गया, जिसमें

पांचसौ मुनि थे। वे संसारके हित-साधनार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भ्रमण कर रहे थे। नगरके समस्त निवासी मुनि-संघके शुभागमनका समाचार सुन उनकी पूजा करने तथा धर्मोपदेश सुनने चले। राजा यमको अपनी विद्वताका घमण्ड था। वह भी मुनियोंकी निन्दा करता हुआ वहां आ पहुंचा। किन्तु, उसके हृदयमें अभिमानके भाव उदित होनेके कारण, उसके बुरे कर्मके उदय होनेसे वह महामूर्ख बन गया। उसकी सारी विद्वता, बुद्धिकी चमत्कारका लोप हो गया। अतः राजा यम उसी समय मूर्खाधिराज बन गये। सच है:—

"उत्तम जन ज्ञानी बननेसे, ज्ञान गर्व नहिं करते हैं।
ज्ञान-रत्नको पाकर वे ही, सदा नम्रता धरते हैं॥
जो निजबल, ऐश्वर्य, जाति तप ऋद्धि योग पर इतराते।
निश्चय जानो गर्व-दुःखसे वे ही महा दुःख पाते॥
अतः श्रेयके इच्छुकको अभिमान नहीं करना चहिये।
गर्व दुःख की महाखान है, उससे दूर सदा रहिये॥

उसी समय राजा यम दन्त रहित हाथीके समान निरर्थक हो गये। अब उन्हें होश आया। उनका सारा मिथ्याभिमान दूर हो गया। उन्होंने उसी समय भगवानके पवित्र चरणोंमें नमस्कार कर धर्मोपदेश सुना। पाठक! धर्मोपदेश सुननेसे हृदय की व्यथा दूर होकर शांति मिलती है। अतः राजाका हृदय अभिमान रहित हो गया।

राजाका वैराग्य धारण।

धर्मोपदेश सुननेका यह असर हुआ कि राजा यमके हृदयमें

संसारके भोग-विलाससे पूर्ण रूपेण वैराग्य उदय हो गया। राजाने उसी समय अपने पांचसौ वैरागी पुत्रोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। राज्य-शासन भार गर्दभ नामक पुत्रके ऊपर पड़ा। राजा यम मूर्ख बने रहे, उन्हें पंच नमस्कार मंत्रका शुद्ध उच्चारण तक नहीं आया जब कि उनके पांचसौ लडके शास्त्राभ्यास द्वारा पूर्ण विद्वान् बन गये। इससे यम मुनिके हृदयमें बहुत दुःख हुआ उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञा लेकर तीर्थ करनेके लिये प्रस्थान कर दिया। उन्हें मार्गमें एक रथ मिला जिसमें गदहे जुते हुए थे। उस पर एक आदमी बैठा हुआ पुरुष यममुनिको कष्ट दे रहा था। मुनिराजने ज्ञानके क्षयोपशम हो जानेसे निम्नलिखित पद्य कहाः—

कट्टसि पुणणिक्खेवसिरे गद्दहा जवंपेच्छसि खादिदुमिति।

अर्थात्—अरे गदहे कष्ट उठानेके बाद ही तुम्हें खानेको मिलेगा यममुनि आगे चले तो क्या देखते हैं कि एक स्थानपर कुछ लड़के खेल खेल रहे हैं उसी समय कोणिका भी किसी तरह चली आयी। कोणिका को देखकर सब लड़के भय भीत हो गये। तब मुनिने आत्माके प्रति निम्न गाथा की रचना की :—

"आणणत्थ किं पलोवह तुम्हे पत्थाण बुद्धि या छिद्दे अच्छई कोणि आ इति।"

वालको! तुम दूसरी ओर क्या देख रहे हो, तुम्हारी बुद्धि पत्थरके समान है उसे छेदनेवाली कोणिका मौजूद है। इसी प्रकार एक दिन मुनिराजने एक मेढकको कमल पत्रकी ओटमें छिपते हुए सर्प की ओर आते देखा उसी समय उन्होंने कहा:—

'अम्हादोत्थि भयं दीहादो दीसदेभयं तुम्हेति।

मुझे अपने प्राणो का तनिक भी भय नहीं है, डर तो तुम्हें ही है।

पुत्रका प्रकोप।

इस प्रकार यम महामुनि उपरोक्त तीनों पाठका अध्ययन करते थे, उन्हे इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं आता था। तीर्थ यात्रा करते हुए वे धर्मपुरमें जा पहुंचे। वे नगरके वाहर वगीचेमें ठहर गये। उस वगीचेमें, यम महामुनि अपने कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन हो गये। जिस समय, मय महामुनिके आनेका समाचार उनके पुत्र राजा गर्दभ तथा उसके मन्त्री दीर्घने सुना तब उसके दिलमें पाप हुआ कि वे (मुनि) हमारा राज्य वापस लेने आये हैं। दोनोंने मुनिराजको मार डालनेके विचारसे आधी रात्रि को प्रस्थान किया। दोनो वहां पहुंच गये जहा यममुनि ध्यानमें लीन थे। दोनोंने मुनिके ऊपर अपनी तलवार खींच ली। किसीने सच ही कहा है :—

"जान लो पाठक, जगतमे राज्य वह धिक्कार है।
मूर्खता है नृपतिकी औ समझको धिक्कार है॥
वीतरागो राज्य लेगा भतभीत जो होता जहां।
धिक्कार है उस बुद्धिको जो समझ लेती है यहां॥
त्याग करके राज्य वैभव शुभयोगका वाना लिया।
आश्चर्य उस मुनिराजपर, निज पुत्रने शंका किया॥

राजा गर्दभ तथा उसके मंत्रीने वारवार अपनी तलवार तानी, मगर, मुनिराजकी गर्दन पर चलानेका उन्हें साहस नहीं हुआ। कई वार उन लोगोंने कुचेष्टा की मगर वे हर वार पस्त-हिम्मत

रहे। उसी समय, यममुनिने अपनी पहली गाथाका परायण किया, उसे सुन कर राजागर्दभ डर गया। वह सोचने लगा—ज्ञात होता है कि मुनिराजने हमें देख लिया। मुनिराजने उसी समय अपनी दूसरी गाथा कही। अब, गर्दभको निश्चय हो गया कि ये हमारा राज्य लेने नहीं आये हैं बल्कि अपनी कन्या कोणिकाको प्यार जताने आये हैं। मुनिराजकी तीसरी गाथा सुनकर उसने अपने मनमें निश्चय किया कि मेरा मन्त्री ही मेरी जानका दुश्मन है। मेरे पूज्य पिता तो मुझे सतर्क करने-आये हैं। वह हाय २ करने लगा। इसके बाद उसने अपने पूज्य पिता यम महामुनिसे धर्मोपदेश सुन कर श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया।

अंतिम परिणाम।

यमधर मुनिराजने अपनी कठिन तपस्याके बलसे सातों ऋद्धियाँ प्राप्त कर लीं। पाठक गण! जब अल्प बुद्धिवाले यमधर महामुनिने उन्नति की चरम सीमाको पार कर दिया तब यदि—अन्य श्रेष्ठ लोग श्रद्धा-भक्तिसे सम्यक-ज्ञानकी सतत आराधना करें तो ऐसी कौनसी अलभ्य वस्तु है जिसकी प्राप्ति न हो पाठक गण! आप लोग भी ख्याल करें कि यमधर महामुनिने अल्प-ज्ञानी होकर जब सातों ऋद्धियोंको प्राप्त कर लिया तब आप लोगोंको भी उचित है कि परम पवित्र सम्यग्ज्ञानको पानेका उपाय करें जिससे स्वर्ग-मोक्ष सुखका साधन प्राप्त हो।

दृढ़सूर्य की कथा

(२३)

"पाठक, केवल ज्ञान-मार्गसे, अखिल तत्व जाने जाते।
जो है स्वर्ग-मोक्ष सुख दाता, जिसे प्राप्त कर सुख पाते॥
श्री जिन-प्रभुको नमस्कार कर, लिखता सूर्य कहानी।
ज्ञान प्रभाव गया स्वर्गोंको हुआ देव दुर्लभ प्राणी॥"

हारकी चोरी

किसी समय, उज्जयिनी नगरीमे राजा धनपाल राज्य करते थे। वे बड़े विख्यात राजा थे। धनमती उनकी रानी थी। एक दिन रानी अपनी दासीके साथ उपवनमें वसन्तकी बहार लूटने चली गयी। उसी समय वहांकी नामी वेश्या वसन्तसेना भी वहां मौजूद थी। उक्त वेश्याने रानीके गलेमें सुन्दर जड़ाऊ बेशकीमती रत्नोंका हार देखा। उसी समय, उसने प्रण कर लिया कि इस हारके विना मेरा जिन्दा रहना असम्भव है। वेश्या दुःखी होकर घर चली आयी वह मन मारकर कुसुमय पलंगपर सो रही। उसका प्रेमी दृढ़सूर्य नामक चोर था। दृढ़सूर्यने अपनी प्रेमिकाको उदास देखकर कहा—"प्रिये! आज तुम उदास क्यों हो? हाय, तुम्हें उदास देखकर मेरा हृदय टुकड़ा २ हुआ जाता है, बोलो, तुम्हे क्या दुःख है? मैं दूर करनेके लिये तैयार हूं। वेश्या तो अपने-यारोंसे इसी प्रकारका वेष बनाकर ठगती हैं। उनके चोचले विचित्र होते हैं। वसन्तसेनाने कहा, "यदि तुम मुझे प्यार करते हो तो मैं रानीके गलेका जड़ाऊ

हार चाहती हूं। तुम निश्चय जानो, उसके विना में जिन्दा नहीं रह सकती और मैं तभी जानूंगी कि तुम मुझे सच्चा प्यार करते हो, अन्यथा तुम्हारे साथ प्रेम रखनेका कोई मतलब नहीं।" दृढ़चोर बड़ा पशो-पेशमें पड़ा। एक तरफ वसन्तसेनाका प्रेम कह रहा था कि तुम जैसे हो हार ले आओ, उधर रानीके गलेसे हार चुराना असम्भव था। फिर भी उसने वेश्याके प्रेममें फंसकर हार चुरानेका दृढ़ निश्चय कर लिया।

चोरीमें फांसीकी सजा

दृढ़चोरने ज्योंही महलमें जाकर रानीके गलेसे हार निकाल कर प्रस्थान करना चाहा, त्यों ही पहरेदारोंकी निगाह उसपर पड़ गई। रत्न जड़ित हारकी ज्योति उसके हाथोंमें कहां छिपती। पहरेदारोंने दृढ़सूर्यको पकड़कर बांध दिया। वह महाराजके सामने पेश किया गया, चोरीकेअपराधमें उसे प्राणदण्डको सजा मिली। जल्लादोंने दृढ़सूर्यको फांसीको तख्तेपर लटका दिया।

दयालु धनदत्त

उसी राहसे जिन-भक्त सेठ धनदत्त जिन-मन्दिरमें दर्शनार्थ जा रहे थे। दृढ़सूर्यने उन्हें दयालु जानकर गिड़गिड़ाकर कहा, "दयालु मैं प्यासा हूं, क्या ही अच्छा होता कि आप मुझे दो घूंट पानी पिलानेकी दया दिखाते। आपको परोपकारी दयालु समझकर मैंने कहा है।" सेठने कहा,—'भाई, मैं तुम्हें पानी पिला देता किन्तु, असमञ्जसमें पड़ा हूं। मैंने बारह वर्षकी कठिन तपस्यासे एक विद्या सीखी है, कहीं ऐसा न हो कि मैं तुम्हारे लिये जल लाने जाकर

अपनी विद्यासे हाथ धोऊं जिसे कितने परिश्रमसे पाया है। उस समय मेरा श्रम व्यर्थ जायगा और साथ ही मुझे कितनी क्षति उठानी पड़ेगी। हां, ऐसा हो सकता है कि मैं जलके लिये जाता हूं, तब तक तुम मेरी विद्याको स्मर्ण रखना, मेरे आनेपर उसे वापस कर देना।" सेठने दृढ़सूर्यको पंच नमस्कारका पवित्र मन्त्र देकर जल लानेके लिये चला गया। इधर दृढ़सूर्य पंच नमस्कारका मन्त्र जपने लगा। मन्त्र जपते २ उसका प्राण पखेरू निकल गया। इतने में सेठ जल ले आया, उस समय तो दृढ़सूर्य मरकर सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ पंच नमस्कारकी ऐसी महिमा है।

सेठपर राजाका कोप

'होम करते हाथ जला' की उक्ति कितनी सत्य है। कहां तो दयालु धर्मात्मा सेठ धनदत्तने पुण्य कार्य किया कहां किसी दुष्टने "देखि न सकहिं पराइ विभूती, सठ दुर्जनकी सहज प्रकृतिके अनुसार राजाके पास जाकर यह शिकायत की—महाराज, मैंने अपनी आँखों देखा है कि सेठ धनदत्तने, फांसी दिये जाने वाले दृढ़सूर्य चोरसे बातें की है अतः उसके घरमें चोरीका माल अवश्य पाया जायगा। नहीं तो उसे क्या आवश्यकता थी मरते हुए चोरसे बात करने की।" सच है, राजाके आंखें नहीं होती, कान होते हैं। बस क्या था, उसी समय राजाने सेठ धनदत्तको पकड़वा लेनेकी आज्ञा दी। टुकड़खोर, दयालु धर्मवीर सेठको पकड़वानेके लिये दौड़ पड़े।

सौधर्मेन्द्रकी कृपा।

उसी समय दृढ़ सूर्यका जीव जो देव हुआ था अपने अवधि ज्ञान से परोपकारी धनदत्तके ऊपर अपने कारण आई हुई विपत्ति जानकर वह द्वारपालके वेषमें सेठके द्वारका पहरेदार बन गया। उसी समय राजाके सिपाही पहुंचे, देवने उन्हें रोका, इसपर सिपाही जबर्दस्ती करनेपर आमादा हो गये तब देवने उन्हें मार-पीटकर भगा दिया। भगे हुए सिपाही राजाके पास जाकर रोने लगे। राजाने क्रोधमें आकर सेठको पकड़वानेके लिये अपने बड़े २ बलवान योद्धा भेजे मगर देवने उन्हें मार-पीटकर धराशायी कर दिया। राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ, और अपनी विशाल सेना लेकर सेठके घर पर धावा बोल दिया। बातकी बातमें सेठका घर चारों ओरसे घेर लिया गया। मगर उस पराक्रमी देवने राजाकी विशाल सेनाको छिन्न भिन्न कर दिया, उसकी सेना भाग गई। राजा भी हटकर भागने लगा, इतनेमें देवने कड़ककर कहा—"कहाँ भागे जा रहे हो, मैं आपको यों भागने नहीं दूंगा। आपकी रक्षा तभी होगी जब धनदत्त आपको क्षमा कर दें। अतः उसीकी शरणमें जाकर उससे क्षमा दान मांगिये।" राजाने उसी समय जिन मन्दिरमें जाकर सेठसे कहा,—"क्षमा करो, मेरी जान बचाओ।" सेठ धनदत्तने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा,—"अरे! तुम कौन हो जो हमारे आदरणीय महाराजको सता रहे हो। देवने अपनी माया वापस ले ली फिर सेठसे कहा,—"सेठजी मैं फांसीपर लटकाया जाने वाला दृढ़सूर्य हूं जिसे आपने कृपाकर पंच नमस्कार महामन्त्र देकर सौधर्म स्वर्गका देव बनाया। मैंने अपने अवधि ज्ञानसे आपके ऊपर

कष्ट देखकर अपना कर्तव्य पालन किया है इसलिये मैं अपने उपकार कर्त्ताकी सहायता करनेके लिये आया हूं। मैने ही अपने मायाजालसे सब कुछ किया है। इस प्रकार कहकर उसने सेठको रत्नजड़ित भूषण दिया, देव तो चला गया, उधर राजाने सेठका परोपकारी स्वभाव देखकर उनका सत्कार किया। सच है, धर्मात्माओंसो सभी मानते हैं। पंच नमस्कारकी महिमा वर्णनातीत है। श्रेष्ट मनुष्योंको चाहिये कि वे उक्त परम पवित्र मंत्रकी आराधना कर श्री जिन भगवानकी भक्ति-रसका पानकर अपनो बुद्धि निर्मल बनावें।

यमपाल चांडालकी कथा।

---

(२४)

"था चांडाल जातिका वह पर जैन-धर्मका प्रेमी था।
शुभ्र साधना करनेमें वह शुद्ध हृदयसे नेमी था॥
था यमपाल नाम उसका, देवोंने उसको मान दिया।
वही कथा लिखता हूं पाठक! प्रभु चरणोंमे शरण लिया॥

धर्म अधर्म।

यहां उस समयको कथा लिखी जा रही है जिस समय काशी नगरीमें पाक शासन नामक राजा राज्य करते थे। एक समय उसके नगरमें महामारीका प्रकोप हो गया, राजाने अपने नगरमे नंदीश्वर पर्वके समय जीव-हिंसा नहीं करनेका ढिंढोरा पिटवाया।

साथ ही उनकी ऐसी आज्ञा थी कि राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला प्राण दण्डकी सजा पायेगा। उसी नगरीमें धर्म नामक एक सेठ पुत्र रहता था, वह बड़ा भारी अधर्मी था। वह सप्त दुर्व्यसनोंका आदी था। वह परले दर्जेका मांसाहारी थी, एक दिन भी विना माँस खाये नहीं रहता, एक दिन वह महाराजके बगीचेमें गया। भेड मारकर उसका कच्चा मांस खा गया। उसकी हड्डियां वहीं गड्ढेमें गाड़ दी। उस भेडके मालिक स्वयं महाराज थे! किसीने ठीक ही कहा है:—

"जो मनुष्य दुर्व्यसनी होते उसमें सदा लीन रहते।
वे प्रति दिन निज पापकर्मको नियम रूपसे हैं करते।

पापका भण्डाफोड़।

दूसरे दिन जब महाराज बगीचेमें गये, अपनी भेड़ न देखकर उन्होंने उसका पता लगाया मगर किसीने भेड़का पता नहीं दिया। अन्तमें महाराजने गुप्तचरोंको पता लगानेके लिये नियुक्त किया। एक दिन राजाका एक गुप्तचर वेष बदले राजाके बागमें टहल रहा था, उसी समय उसने एक मकानके भीतर कुछ आदमियोंकी फुस फुसाहटकी आवाज सुनी। गुप्तचरने धीरेसे मकानके पास जाकर राज मालीको अपनी स्त्रीसे यह कहते हुए पाया कि राजाके भेडको सेठका पुत्र धर्मने मारकर खा लिया है और उसकी हड्डी बगीचेमें गाड़ दी है।" गुप्तचरने महाराजके पास जाकर भेड़के हत्यारेका पता बता दिया। महाराज क्रोधमें लाल हो गये, वे सोचने लगे कि देखो इस दुष्टको, इसने जीव-हिंसाकर राजाज्ञाका उल्लंघन किया है अतः उस दुष्टको फांसीकी सजा देनी चाहिये।" ऐसा दृढ़

निश्चय कर महाराजने राजकोतवालको आज्ञा दी कि हत्यारे धर्म का फांसी दे दी जाय। कोतवालने यमपालको बुला भेजा।

इधर चाण्डालने किसी सर्वौषधि ऋद्धधारी मुनिराजका धर्मोपदेश सुनकर अपने मनमें प्रण कर लिया कि मैं चतुर्दशीके दिन हिंसा नहीं करूंगा, अतः फांसी देनेकी राजाज्ञा सुनकर उसने अपनी स्त्रीसे यह कहा, "देखो ! आज मैं हिंसा कर्म नहीं करूंगा, अतः राजाके आदमी आनेपर कह देना कि वे बाहर चले गये हैं।" ऐसा कहकर वह घरमें छिप रहा। थोड़ी देरके बाद, राजाके आदमी यमपालका द्वार खटखटाने लगे। चाण्डालकी स्त्री घरके बाहर थी उसने कहा, वे घरपर नहीं हैं, कहीं दूसरी जगह चले गये हैं।" राजाके अनुचरोंने कहा, –'देखो, अभागेको, आज ही सेठके लड़केकी फांसीमें बहुत गहने मिलेंगे, तभी वह चला गया, अभागे कहीं का।" गहने पानेके लोभमे पड़कर चांडालकी स्त्रीने इशारेसे सिपाहियोंको बता दिया कि उसका पति घरमे है कहीं बाहर नहीं गया है। इसके बाद वह पतिके नहीं रहनेपर अफसोस करने लगी।

"नारी स्वतः मयाविनि होतीं, लालचमें भी लासानी।
क्या न गजब वे ढ़ा सकती हैं पीकर लालचका पानी ॥

बस, चांडालकी स्त्रीका इशारा पाते ही सिपाही उसके घरमे घुस पड़े। वे यमपालको घरके बाहर खींच लाये। यमपालने इन्कार करते हुये स्पष्ट-भावमें कहा—"आज चतुर्दशीका दिन है, मैंने आजके दिन अहिंसा-व्रत लिया है अतः मैं आज किसी प्रकार जीव-हिंसा करनेका नहीं। चाहे इसके लिये मुझे जैसा भी कष्ट सहन करना पड़े मैं तैयार हूं।"

सिपाहियोंने उसे महाराजके पास ले जाकर पेश कर दिया। महाराज पहिले ही क्रोधसे जल रहे थे, इतनेमें चाडालने उनके सामने ही राजाज्ञा नहीं माननेका सत्याग्रह कर दिखाया। बस,जले घावपर नमकका काम किया, महाराजने पापी धर्मके साथ २ यमपालको भी मौतके घाट उतारे जानेकी क्रूर आज्ञा दे दी। बस, यमपाल धर्मके साथ २-हिंसक जल जीवोंसे भरे तालावोंमें डाल दिये गये।

धर्मको जल जीवोंने उसी समय अपना भोजन बना लिया। अब बच गया यमपाल। उसके व्रतके प्रभावसे उसी समय,स्वर्गके देवताओंने तालवमेंही एक भव्य सिंहासन रखकर उसका पूजा की तथा उसका अभिषेक किया। महाराज तथा प्रजाने शुभ-सम्वाद सुनकर उसे सम्मानित किया। महाराजने यमपाल चांडालको इनाममें बहुत धन दिया। पाठकगण! देवताओंने एक अपवित्र चाण्डालको सम्मानित कर जैन-धर्मको महिमा बढ़ाई। तब श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे भी जैन-धर्ममें सच्ची भक्ति रख स्वर्ग-मोक्षका, सुख प्राप्त करें। अत. चारों वर्ण वालोंको उचित है कि वे अपनो जातिका मिथ्याभिमान न करे। कारण, किसी भी जातिके उत्तम गुण वालों की पूजा होती है न कि रूढ़ि की। देखिये! एक चाण्डालको जिन भगवानमें भक्ति देखकर देवताओंने सम्मानित किया। उसे धन, अलंकार तथा उत्तम २ वस्त्र प्रदान किये। भगवान की कृपासे संसारके वैभव-सुख प्राप्त होते हैं उनको पूजा करनी चाहिये।

'वे' जिनेन्द्र प्रभु जो देवोंसे सदा काल पूजे जाते।
मुझे दान दें मोक्ष-रत्नका यही भावना हैं भाते॥

॥ प्रथम भाग समाप्त ॥

स्वाध्याय प्रेमी इन्हें अवश्य पढ़ें

(तमाम ग्रन्थ सरल भाषामें हैं)

पद्मपुराणजी	१०)	रामचन्द्र चौबीसी पाठ	१)
हरिवंश पुराण	८)	भाद्रपद पूजा संग्रह	॥=)
सुदृष्टि तरंगिनी	७॥)	सरल नित्यपाठ संग्रह	॥)
आदिपुराण	६)	नित्यपाठ गुटका	॥)
बृहद् विमलपुराण	६)	शीलकथा (सचित्र)	।=)
तत्वार्थ राजवार्तिक	५)	दर्शन कथा ,,	॥)
रत्नकरन्ड श्रावकाचार	५॥)	दान कथा ,,	।)
शांतिनाथ पुराण	६।	निशिभोजन कथा ,,	।)
मल्लिनाथ पुराण	४)	मौनव्रत कथा ,,	।)
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय	४)	दौलतजैनपद संग्रह १२५ भजन	॥)
चरचा समाधान	२)		
जैनक्रियाकोष	३)	द्यानतजैनपद	।-)
जैनव्रत कथाकोष	२॥)	भागचन्द भजन	।)
बड़ा पूजाविधान संग्रह	२॥)	जिनेश्वरपद संग्रह	।-)
भक्तामर कथा मंत्र-यंत्र	१॥)	महाचन्द्र-भजन	।)
जैन भारती	१॥)	जैनव्रत कथा	=)॥
षोडशसंस्कार	॥)	सुगंध दशमी कथा	-)॥
वृन्दवन चौबीसी पाठ	१)	रविव्रतकथा	-)॥
रामवनवास	१)	श्रावकवनिता रागनी (सचित्र)	=)

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, १६१।१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

[illegible] ॐ नमः सिद्धेभ्यः *

अन्य मत सार संग्रह ग्रन्थ प्रारंभ्यते ।
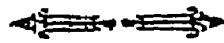
परम शर्म दातार है, ज्ञान ज्योति करि जाण ।
मोह तिमिर के नाश कूं, उदय भयो जिम भानु ॥ १
सुधा नन्द शुद्ध चेतना, परम इष्ट पद पांच ।
सर्वज्ञेय ज्ञायक नमूं, ये आपत जिन सांच ॥ २
इनके भाषे ग्रन्थ कूं, नमि श्रद्धा मन लाय ।
गुरू दिगम्बर नित नमूं, मन वच काय लगाय ॥ ३
दया धर्म को मूल है, सब मत के सिरदार ।
सब मत यों ही कहत हैं, चलना और प्रकार ॥ ४
दया दया सब कोई कहे, दया न जाने कोय ।
जात जीव जाने विना, दया काह से होय ॥ ५
षट काया में जीव बसे, जे नहिं जाने भेद ।
दया धर्म कैसे पले, ये लह जग का खेद ॥ ६
मत के अभिमानी भये, निज हित नाहिं विचार ।
आतम विन पर हित करे, भ्रमत फिरे संसार ॥ ७

वचन का ।

या प्रकार कल्याण होने का कारण दया, धर्म, गुरु और आप्त आगम ये चार प्रकार के आचरण, सो तो या जीव के हितकारी हैं और यासे विपरीत काम भोग की चाह तथा इन्द्री पुष्टता की चाह, पर वस्तु के ग्रहण की चाह व संसार के सुख

की वांछा इसको सुखकारी जान के उनमें प्रवर्त हो रहे हैं सो ये बुद्धि निज आतम सुख की विरोधी है और ये बातें जिस मत में मुख्यता करके मानते हैं उसकी निन्दा करते हैं। एक तो अपने ग्रन्थ में लिखे कूं नहीं मानते दूसरे माने उसको प्रशंसा करनी चाहिये तो प्रशंसा करनी दूर रही परन्तु उल्टी निन्दा करते हैं सो सत्य वस्तु को असत्य जान के त्याग किया और असत्य हू सत्य जान के उसका ग्रहण किया। अब विचार करो कि इसमें कौन कारण सिद्ध भया और कौन बात हितकारी भई याते जैनी लोग मुख्य पंच अणुवृत तथा पंच महावृत जीव दया को पालना, जल का छानना, रात्रि में भोजन का त्याग, तीन मकार कहिये मधु, मदिरा, मांस इनका त्याग, बैंगन, मूला आदि भोजन का त्याग, कन्द, मूल, अभक्ष बोदल आदि करि के मर्यादा बन्द त्याग कहते हैं सो तो जैनी लोग मानते हैं परन्तु अन्य मतों में भी उनके ग्रन्थों में उनके आचार्यों ने ऊपर लिखी हुई बातें बड़ी प्रशंसा योग्य कही हैं परन्तु ये बातें संसारी चाह वाले कूं विरोधी और विषय भोग के कारण ये संसार के चाह वाले कूं हितकारी सो उन्होंके ग्रन्थ में से विषय भोग पुष्टकारी संसार बढ़ाने हारे विपरीत कथन ग्रहण करके ऊपर लिखी हुई सार बातें गौण कर दीं फिर ये बातें उनके ग्रन्थ में सत्यार्थ थीं असत्यार्थ माने सो उनको ग्रन्थ का उनकूं भी श्रद्धा न भया और जिनमत की बातें बहुत पुष्ट भईं। कारण ये बातें जिनमत में आत्मा के हितकारी कही हैं और मत के ग्रन्थन में भी कल्याणकारी कही हैं सो ये बातों से जिनमत की पुष्टता अधिक भई। ये कहने का कारण षट् मत में परस्पर विरोधवादी, प्रतिवादी भये। अब वादी, प्रतिवादी में जिधर साक्षी ज्यादा होय वाकी बात बहुत पुष्ट होय सो जिनमत में मुख्य दया, धर्म आदि

की अन्य ग्रन्थ साक्षी देते है और ऊपर लिखी हुई बातें सो याकी साक्षा में क्या, धर्म ऊपर तो षट् मत साक्षी देते हैं सो भोरे जीव कूं अन्य ग्रन्थ की बात कहां से मालूम होय और ये बातें जैनी लोगों ने सुने से जैन मत की अवगाढ़ प्रतीति दृढ़ श्रद्धा न होय । जिन मत की बातें ऐसी ऐसी अन्य मत में प्रशंसा योग्य कहीं सो हमारी ही श्रद्धा सत्यार्थ है ऐसी परम अवगाढ़ प्रतीति होवे और आगे अन्य मत के ग्रन्थों में भी कहेंगे कि गुरु सूक्ष्म वस्त्र नहीं राखे, परिग्रह न राखे, ऐसी कही है सो ऐसी अन्य मत जैनी कहते हैं और जैनी गुरु का स्वरूप निर्ग्रंथ तिल तुष मात्र परिग्रह रहित दिगम्बर स्वरूप मानते हैं। इस निकृष्ट काल में कितने कलाल वस्त्र, कितनेक सफेद वस्त्र, शाल दुशाला, पालखी इत्यादि गुरू मानते हैं सो देखो जिन मत में लंगोट मात्र परिग्रह राखे सो तो श्रावक की गिनती में अनुमती और शाल दुशाला राखे सो महाव्रती मानत हैं जिसका बड़ा आश्चर्य देखो। आंखो में रज की खटावन नहीं होय उस जगे मूसल की खटावन मान ली उन्होंने भी ग्रन्थ से विपरीत मान लियो। अब ये हम काल कूं दूषण लगाते हैं। कारण ग्रन्थन में भी पंचम काल कूं निकृष्ट कहा है और न्याय भी है। मूर्ख कूं कितनी ही भली बुरी कहो तो उनकूं क्रोध नहीं व्यापे मुना हो करे सो पहिले ही आचार्यों ने विचार किया काल जड़ बुद्धि है और सार को ग्रास करने वालो सो सार को गुनो कियो हुवो ये सोद बेलदार जड़ बुद्धि सो कोई की बुरी न मानें तो पुन उत्तर नहीं करेगा सो या काल कूं दूषण देने की परिपाटी चलाई सो हमने भी उन लोगों के झगड़े के भय से काल कूं दूषण दियो सो अब यहां अन्य मत के ग्रन्थन को श्लोक जिसके नीचे अर्थ लिखूं हूं सो अहो ज्ञानी जन यथा योग्य समझ लीजो

और जिसकूं सन्देह होय तो जिस ग्रन्थ के श्लोक हैं उस ग्रन्थ में देखकर मन को संशय दूर कीजो। ये श्लोक अन्य मत के ग्रन्थ में के ही हैं अलङ्कार रूपी लिखे ये सो मत जान जो। अन्य मत के जे जे ग्रन्थन में कहैं सो आगे वर्णन करूंगा कि ये श्लोक अमुक ग्रन्थ का है ऐसे ही श्लोकों के अर्थ उनके नीचे क्रम से लिखे हैं। भावार्थ फिर लिखना चाहूं परन्तु ये प्रसिद्ध होने वास्ते इसकी प्रति ४००० छापाखाने में छपाया है इस कारण ग्रन्थ बढ़ने के भय से अर्थ का विस्तार न करते जितने श्लोकार्थ लिखते हैं उतना ही कहूंगा।

जैन उपासक कूं कहूँ, साधर्मी ममजान।
विद्याभ्यास करौ सदा, ये हितकारी मान॥ १
पाठशाला जिनमत नहीं, व्याकरण नहिं ज्ञान।
संस्कृत जाने नहीं, कैसे होय वुधिवान॥ २
पढ़ने की विच्छेत से, पंडित विरले जान।
वचन काय मेली न भय, कैसे होय मतिमान॥ ३
मनुष्य जन्म को पायवो, दुर्लभ यह संसार।
औसर मौसर पाय के, अव कीजे हितकार॥ ४
वेणीचंद विनती करे, विद्या पढ़े अपार।
सो कारज अव कीजिये, पाठशाल मनधार॥ ५
वरा चार में होत हैं, वहुधन खरचे चाह।
यामें भी कछु दीजिये, चले धरम की राह॥ ६
दान चार में मुख्य हैं, ज्ञान, दान, फल, मोक्ष।
पढ़ो पढ़ावो रुचि करो, मिटे अविद्या दोष॥ ७

औसर चूके न मिले, मौसर दुर्लभ जान ।
तीव्र उदय में ना वने, विधि मंद उदय जब थान ॥ ८

पुरुषा रथ जब चलत है, सो सब मिले महान ।
तजि आलस अरु कृपणता, विद्या करौ प्रमान ॥ ९

ज्ञान बढ़े लौकिक बढ़े, बढ़े धर्म की रीति ।
निजहित परहितहि बढ़े, बढ़े सज्जन की प्रीति ॥ १०

अन्य मत ग्रंथ के सार कूं, कहूँ सुनौ मनलाय ।
श्रद्धा जिनमत की बढ़े, भरम तिमिर मिट जाय ॥ ११

श्री कृष्ण उवाच ।

श्रूयतां धर्म सर्व स्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रति कूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ १

सर्वस्व धर्म कूं सुनि के हृदय के विषये धारण करो जिससे तुमारि आत्मा करि के दुसरे की आत्मा का बुरा न करो ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कथ मुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते ।
कथंच साध्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति ॥ २

युधिष्ठिर श्री कृष्ण प्रति पूंछते भये कि धर्म की उत्तपत्ति काहे से होती है और काहे से वढ़ता है और किस प्रकार स्थापित होता है और काहे से विनाश कूं प्राप्त होता है ॥२॥

श्री कृष्ण उवाच ।

सत्येनोत्पद्यते धर्मः दया दानेन वर्धते ।
क्षमा यास्थाप्यते धर्मः क्रोध लोभाद्वि नश्यति ॥ ३

सत्य करके धर्म उत्पन्न होता है और दया दान करि के वृद्धि को प्राप्त होता है और क्षमा करके स्थिर होता है और क्रोध लोभ करके विनाश को प्राप्त होता है। इस प्रकार से कृष्ण जी ने युधिष्ठिर प्रति कहा है ॥३॥

श्री कृष्ण उवाच ।

अहिंसा सत्य मस्तेयम् त्याग मैथुन वर्जनम् ।
पंच स्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥ ४

अहिंसा में, सत्य बोलने में, चोरी, मैथुन, परिग्रह के त्याग में, इन पांचों में सम्पूर्ण धर्म आ गये ॥४॥

सर्वे वेदा नतत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ।
सर्वे तीर्थाभिषे काश्च यत्कुर्यात् प्राणिनां दया ॥ ५

सम्पूर्ण वेद भणाया जेता फल न करे और अनेक यज्ञ किया जितनी फल न होय अरहे भारत सारा तीर्थ स्नान किया जेतो फल न होय तेतो फल जीव दया किया होय जो पुरुष जीव दया पाले ताकूं नरक काय कूं होय ॥५॥

अहिंसा लक्षणो धर्मः अधर्मः प्राणिनांवधः ।
तस्माद्धर्माथि भिःलोके कर्तव्या प्राणिनांदया ॥ ६

जीव दया है सो ही धर्म को लक्षण है। अनेक अधर्म को लक्षण जीव वध करनो तातें धर्म का अर्थी जीवनि के विषें समस्त प्राणी ऊपर दया करनी ॥६॥

लोभ मायाभिभूतानां नराणां प्राणिांहतां ।
एषां प्राणि वधो धर्मो, विपरीता भवन्तिते ॥ ७

जो पुरुष लोभ माया करि व्याप्त है, जो मनुष्य प्राणी का वध करता है और प्राणिने वध कर धर्म भाषे है। ते पुरुष धर्म तैं उल्टा जाननां ॥७॥

नश्रोणितार्द्रितं वस्त्रं श्रोणितेनैव शुध्यति ।
श्रोणितार्द्रितं वस्त्रं शुद्धं भवति वारिणा ॥ ८

वस्त्र लोही करि शुद्ध न होय लोही करि गतो हुवो वस्त्र जल करि धोये शुद्ध होय ॥८॥

यदि प्राणि वधे धर्मः स्वर्गश्च खलु जायते ।
संसार मोचकानांतु नरकं केनगम्यते ॥ ९

जो प्राणी वध किये धर्म होय और स्वर्ग की प्राप्ति होय तो नरक काये से होय ॥९॥

अयं प्राणि वधो यज्ञे नास्ति यज्ञस्त्व हिंसकः ।
ततोऽहिंसात्मकः कार्यः सदा यज्ञो युधिष्ठिरः ॥ १०

निश्चय प्राणि को वध यज्ञन विषे होय है और हिंसा पाछे यज्ञ नहीं तातें ऐसो जानि कर जीव दया मय सदा यज्ञ करनो हे युधिष्टर ॥१०॥

इंद्रियाणि पशून्कृत्वा वेदिं कृत्वा तपो मयीं ।
अहिंसा माहुतिं कृत्वा आत्म यज्ञं यजाम्यहम् ॥ ११

अहिंसा मय कैसो है ताको उत्तर कृष्ण कहै है कि इंद्रिय रूपी पशु करिए और तप रूपी वेदिका करिए अहिंसा रूपी

आहुती करिए आत्मा को ऐसो यज्ञ किया अंतरंग कल्याणकारी होय है हे युधिष्ठिर ॥११॥

ध्यानाग्नौ जीव कुंडस्थे दम मारुत दीपिते ।
असत्कर्मेंधनं क्षिप्येत त अग्निहोत्रं कुरूत्तमं ॥ १२

ध्यान रुपी अग्नि और जीव रूपी कुंड ने विपें पांच इन्द्री को दमों वो ताप रूपी पवन करि प्रज्वलित खोटा कर्म रुपी ईंधन जो सकल्प नाश करि हे भव्य ऐसो उत्तम अग्निहोत्र करि ॥१२॥

यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमं ।
यागेन गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ १३

यज्ञ को थम्भ को छेद करि और पशुन को हनि और लोही को कादो करि के ऐसा यज्ञ करि स्वर्ग होय तो नरक कौन प्रकार करि होय ॥१३॥

इति महाभारते शान्ति पर्वाणि प्रथम पादे ॥

मातृ वत्पर दाराणि पर द्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्व भूतानि यः पश्यति सपश्यति ॥ १४

ये श्लोक भारत का शान्ति पर्व विपे माता सदृश्य पर स्त्री देखनी और द्रव्य पापाण सदृश्य देखणूं और अपनी आत्मा सदृश्य सर्व प्राणी जो देखे है सो मोकों देखे है। हे युधिष्टिर ॥१४॥

अहिंसा सर्व जीवेपु तत्वज्ञैः परिभापिता ।
इदंहि मूलं धर्मस्य शेप स्तस्यैव-विस्तरः ॥ १५

दया सर्व जीवा जीवा विषयी कहिये तत्व ज्ञानी पुरुषों ने कही ये ही धर्म को मूल जाणनो और दान, शील, तप भावना सर्व जीव दया ही को विस्तार जाणनो ॥१५॥

अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्य सु संयमं ।
मद्य मांस मधु त्यागो रात्रि भोजन वर्जनं ॥ १६

दया, सत्य और चोरी को वर्जनों, ब्रह्मचर्य और पांच इन्द्री को वसि राखवो, मद्य, मांस, मधु इनको छांड़वो, रात्रि भोजन को त्याग सर्व जीव दया को विस्तार जाणनो ॥१६॥

यथा मम प्रियाः प्राणस्तथा न्यस्यापि देहिनः ।
इति मत्वान कर्तव्यो घोर प्राणि वधो बुधैः ॥ १७

जैसे आपणा प्राण आपणे ने प्रिय है तैसे और जीव कूं भी प्राण प्यारा है ऐसो जानि कर न करनो घोरानि घोर नरक को करन हार प्राणी प्राणी को वध पंडित करि न करना ॥१७॥

प्राणिनां रक्षणं युक्तं मृत्यु भी ताहि जन्तवः ।
आत्मौ पम्ये न जानीहि इष्टं सर्वस्य जीवितं ॥ १८

जीवा को रक्षा करनो युक्त है मरन से निश्चय कर सारा जीव भयभीत है । आपणा प्राण सदृश्य दूसरा का प्राण जानते जो सत्पुरुष तिन कर सर्व जीव कूं जीव प्यारो है ॥१८॥

उद्यतं शस्त्र मालोक्य विषादयंति विह्वलाः ।
जीवाः कम्पन्ति संत्रस्ता नास्ति मृत्युसमं भयम् ॥ १९

म्यान सो उपाड्यो शस्त्र देखि करि जीव विषाद करि विव्हल होय । मर वाका संत्रास करि कम्पायमान होय है जा कारन मरन सदृश्य और भय नहीं ॥१९॥

कंट के नापि विद्धस्य महती वेदना भवेत् ।
चक्रकुंतासियष्टयाद्यैः मार्य माणस्य किंपुनः ॥ २०

कांटा करि कै पगं विधौ जो पग ता विषै घणी वेदना होय है तो चक्र, भाला, तरवार, लाठी प्रमुख मारबे जे जीव ताकूं कहा वेदना न होय ॥२०॥

दीयते मार्य माणस्य कोटिं जीवित मेवच ।
धन कोटिं परित्यज्य जीवो जीवतु मिच्छति ॥ २१

कोईक जीव मारता संता कोटि धनद्यौं कि थारो जीव छांड़ो तो पुरुष कोटि धन को छांड़ि अर अपणा जीवने वांछे ॥२१॥

यो यत्र जायते जंतुःसतत्र शेते चिरं ।
अतः सर्वेषु जीवेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥ २२

जे जीव जहां उपजे ते जीव तहां ही सुख पावैं या कारण तै सर्व जीव विषैं सत् पुरुष हैं जे दया करे हैं ॥२२॥

अमेध्य मध्ये कीटस्य सुरेंद्रस्य सुरालये ।
समान जीविताकांक्षा तुल्यं मृत्यु भयंद्वयोः ॥ २३

विष्टा मांहि कीड़ा ने और इन्द्रलोक विषैं इन्द्र ने सरीखो जीव वाकी वांछा है और मरन को भय भी सरीखो है ॥२३॥

अहिंसा सर्व जीवानामाजन्मापि हिरोचते ।
नित्य मात्मायथा रक्षेत् तथा कार्या परेष्वपि ॥ २४

दया सर्व जीवानो आ जन्म लगि रुचे है जैसे नित्य आपण जीव विषैं जतन कीजे तैसै पराया जीव विषैं भी यत्न करनो ॥२४॥

जीवानां रक्षणं श्रेष्ठं जीवा जीवित कांक्षिणः ।
तस्मात्समस्त दानेभ्यो ऽभय दानं प्रशस्यते ॥ २५

जीवन की रक्षा भली है जीव हैं ते जीवाने चाहै हैं ता कारण सगला दान मांहि अभय दान प्रशंसनीय है ॥२५॥

अहिंसा प्रथमं पुण्यं पुण्यमिंद्रिय निग्रहः ।
सर्व भूत दया पुण्यं क्षमा पुण्यं विशेषतः ॥ २६

जीव दया है सो प्रथम पुण्य है और पांचौ इंद्री को जीतवो दूसरो पुण्य है और छह काय की रक्षा है सो तीसरो पुण्य है । चौथो पुण्य क्षमा है विशेषकरि ॥२६॥

ध्यान पुण्यं तपः पुण्यं ज्ञान पुण्यं सु सत्तमं ।
सत्यं चैवाष्टमं पुण्यं तेन तुष्यंति देवताः ॥ २७

ध्यान पांचमां पुण्य है । तप छट्टो पुण्य है । ज्ञान सातमो पुण्य है । सत्य वचन बोलवो आठवों पुण्य है । ऐसा पुण्यन करि देव संतोष पाय है ॥२७॥

ये श्लोक मार्कंडेय पुराण में है ।

अर्जुन प्रति कृष्ण कहै हैं ।

पृथिव्यामप्यहं पार्थवाया वपि जलेप्यहम् ।
वनस्पति गतश्चाहं सर्वभूत गतोप्यहम् ॥ २८

पृथ्वी विषैं भी मैं ही हूं, वायु विषै भी मैं ही हूं, जल में भी मैं ही हूं और वनस्पति में भी मैं ही हूं और सर्व प्राणि मांहि मैं ही वसूं हूं ॥२८॥

जलेविष्णुः स्थलेविष्णुर्विष्णुः पर्वत मस्तके ।
ज्वाला माला कुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ २९

जल विषें विष्णु, स्थल विषें विष्णु, पर्वतादि सर्व पृथ्वी विषें विष्णु, ज्वाला, माला, अग्नि वनस्पति से विष्णु वसे। सर्व त्रैलोक्य विषें विष्णु करि व्याप्त है ॥२६॥

योमां सर्वगतं मत्वा नच हिंसेत्कदाचन ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मेन प्रणश्यति ॥ ३०

जो मोको विश्व व्यापी जनि कदाचित भी हिंसा न करे ताकूं हूं त्रास प्राप्ति न करूं जो मुझकूं न सतावै ॥३०॥

ये श्लोक विष्णु पुराण का है ।

योददाति सहश्राणि गवा मश्व शता निच ।
अभयं सर्व सत्वेभ्यः स्तद्दानमिति उच्यते ॥ ३१

समस्ता वय वान्दृष्ट्वा नरानूप्राणि वधोद्यतान् ।
पंगुभ्य श्छिन्नहस्तेभ्यः कुष्टिभ्यश्च हसाम्यहं ॥ ३२

कैइक सहश्र गऊदान करै शत घोड़ा दान करे कोई एक सर्व प्राणी ने अभय दान दे तो सर्व ही दान विषें अभय दान मुख्य है। समस्त आंगोपांग युक्त पुरुष ने देखि करि न राने प्राणी का वध विषैं उद्यत देखि करि पांगला प्रतिछन्न हस्त प्रति कुष्टि से अंधि न उनको ये हिंसा का फल है कृत्य सो हो ॥३२॥

कपिला नां सहस्राणि यो द्विजेभ्यः प्रयच्छति ।
एकस्य जीवितं दद्यात् नत तुल्यं युधिष्ठिर ॥ ३३

कोई एक सहस्र कपिला गाय ब्राह्मण ने पुण्य करे। कोई एक जीव दान दे तो अभय दान सदृश्य न होय है। हे युधिष्ठिर ॥३३॥

दत्तमिष्टंतपस्तप्तं तीर्थ सेवा तथा श्रुतं।
सर्वेप्य भय दानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं ॥ ३४

मीठो दान दियो तप तप्पो और तीर्थ सेवा करि तथा शास्त्र सुनो तथापि ये सर्व ही अभय दान की सोलही कला कौन पावै ॥३४॥

नातो भूयस्तपो धर्मः कश्चि दन्योस्ति भूतले।
प्राणिनां भयभीतानांम भयं यावद्दीयते ॥ ३५

दया उपरांति तप और धर्म नहीं पृथ्वी में भयभीत जीवा ने जो अभय दान देते जे जीव सर्व दान दिया ॥३५॥

वरमे कस्य सत्वेभ्यो दत्वाह्य भय लक्षणं।
नतु विप्र सहस्रेभ्यो गोसहस्र मलं कृतम् ॥ ३६

एक प्राणि कूं अभय दान दिया भलो। परन्तु न किंचित सहस्र गऊ ब्राह्मण कूं दान देवो अभय दान की सरवर न करै ॥३६॥

अभयं सर्व सत्वेभ्यो योददाति दयापरः।
तस्य देहाद्वि मुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ३७

अभय दान सर्व जीव ने जो दयावन्त पुरुष देय ता पुरुष ने देहान्तर जाता भय न होय कोई भी ॥३७॥

हेमधेनुधना दीनां दातारः सुलभा भुवि।
दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्व भयप्रदः ॥ ३८

सुवर्ण, गाय, पृथ्वी का देवा वाला पृथ्वी विषें सुलभ है काल पाय और फल की क्षीणता होय है परन्तु ते पुरुष दुर्लभ हैं जे जीवा ने अभय दान दातार हैं ॥३८॥

महता मपि दानानां कालेन क्षीयते फलं ।
भीता भय प्रदानस्य क्षय एव न विद्यते ॥ ३९

मोटापन ज्यों अनेक दान है जिनका काल पाय फल की क्षीण होय है परन्तु भयवन्त जीव कू अभय दान दियो ताका फल को अन्त नहीं ॥३९॥

इति भारते शान्ति पर्वणी का है भारत विषें ।

यथा मेन प्रियो मृत्युः सर्वेषां प्राणिनां तथा ।
तस्मान्मृत्यु भयान्नित्यं त्रातव्याः प्राणिनो बुधैः ॥ ४०

जैसे आपणो मृत्यु प्रिय नहीं तैसे ही सारा जीवा ने जाननो ताते मरण का भय तें नित्य ही पंडिता ने सारा ही की रक्षा करणो ॥४०॥

एकतः क्रतवस्सर्वे समग्र वर दक्षिणाः ।
एकतो भयं भीतस्य प्राणिनः प्राण रक्षणं ॥ ४१

एक तरफ तो सारा ही यज्ञ करिये सम्पूर्ण प्रधान दक्षिणा सहित और एक तरफ भयवन्त प्राणी का प्राण रक्षण फल अधिक होय ॥४१॥

सर्वे सत्वे यथा दानं एक सत्वेच या दया ।
सर्व दान प्रदानानां तेष्वे वैका प्रशस्यते ॥ ४२

सारा जीवा कूं तो अनेक दान देवो और एक जीव की रक्षा करणो सारा दान देवा का विषें एक जीव दया प्रशंसनीय होय ॥४२॥

एकतः कांचनो मेरुः वहु रत्ना वसुन्धरा ।
एकतो भय भीतस्य प्राणिनां प्राण रक्षणं ॥ ४३

एक तरफ तो मेर पर्वत जेतो कंचन दीजे और वहुत रत्न युक्त पृथ्वी दान करिये एक तरफ भयवन्त जीव के प्राण की रक्षा करणी ई को फल अधिक होय है ॥४३॥

यूं कामत्कुण दंशा दीन् ... ...
पुत्र वत्परि रक्षंति ते नराः स्वर्ग गामिनः ॥ ४४

जूंवा का माकण डांस आदि दे जे जीव आपना शरीर करि उपज्या और आपणां शरीर कुं पीड़ा करतां पुत्र सदृश्य जानि रक्षा करें ते पुरुष स्वर्ग गामी होय ॥४४॥

पशूनां येतु हिंसंति ये गृद्भा इव मानवाः ।
ते मृता नरकं यांति नृशंसाः पाप पोषकाः ॥ ४५

जे पशु जीवा ने हने ते गर्दभ समान मनुष्य ते मर कर नरक जांहि निर्दयी पाप का पोषणहारा जाणनां ॥४५॥

सर्व जीव दयार्थंतु येनहिं सन्ति प्राणिनं ।
निश्चितं धर्म संयुक्ता स्तेनराः स्वर्ग गामिनः ॥ ४६

सारा जीवा की दया के अर्थ जो पुरुष जीवांकों हने नहीं निश्चय करिते जीव धर्म विषै संयुक्त होता सता ते मनुष्य स्वर्ग विषैं प्राप्त होय ॥४६॥

सप्त द्वीपंसरत्नंच दद्यात् मेरु सकांचनं ।
यस्य जीव दया नास्ति सर्वे मेतन्निरर्थकं ॥ ४७

कोई एक पहुंच को धरनी रत्न सहित सात द्वीप की

सुवर्ण मय मेरु पर्वत दान करै और जाके जीव की दया न होय । तो सो सारौ पाछलौ दान कियौ वृथा जाय है ॥४७॥

योदद्यात् कांचनं मेरुं कृत्स्नां चैव वसुंधरां ।
एकस्य जीवितं दद्यात् नचतुल्यं युधिष्ठिर ॥ ४८

जो पुरुष कंचन को मेरु दान करै । अथवां सम्पूर्ण पृथ्वी कौ दान कीजिये एक जीव को जीव दान दे तो हे युधिष्ठिर तो जीव दान की सरवर सारा और दान न करै। ये श्लोक महा भारत के मध्य है ।

महा भारते ।

आदेय सुभग सौम्यः त्यागौ वाग्मी यशो ।
निधिःभवत्यभय दानेन चिरंजीवो निरामयः ॥ ४९

आदेय वचन भलौ रूप सौभाग्य भलो आकार दातार पण वचन चातुरी जस इत्यादि । अभय दान का प्रभाव करि होय और रोग रहित मोटौ आयुष्य होय ॥४९॥

स्वल्पायुः विकलो रोगी विचक्षुर्वधिरः खलु ।
वामनःपाम पंडोवा जायते सभवेभवे ॥ ५०

अव जीव हिंसा फल कहै हैं अल्प आयुषो गहल पनो रोगी और नेत्र हीन वहिरो निश्चय करि वामन कुष्टी नपुंसक हिंसाका फल करि भव भव विषै होय ॥५०॥

यादृशी वेदना तीव्रा स्वशरीरे युधिष्ठिर ।
तादृशी सर्व भूतानां आत्मनः सुख मिच्छतां ॥ ५१

जैसी तीव्र वेदना आपणा-शरीर ने होय है। तैसी हे

युधिष्ठिर वेदनां सारा जीवाने होय है। आपणा सुखने इच्छतां ॥५१॥

अहिंसा परमो धर्म्म स्तथा हिंसा परंतपः ।
अहिंसा परमं ज्ञानं अहिंसा परमं पदं ॥ ५२

जीव दया उत्कृष्ट धर्म है। तैसै ही हिंसा परम तप है और अहिंसा मोटो ज्ञान है अहिंसा मोटो पद स्थानक है ॥५२॥

अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमोदयः ।
अहिंसा परमो यज्ञ स्तथा हिंसा परं पदं ॥ ५३

जीव दया उत्कृष्ट दान है। जीव दया है सो उत्कृष्ट दम है। जीव दया मोटो परम यज्ञ है। अहिंसा है सो मोक्ष है। ये श्लोक इतिहास पुराण का है ॥५३॥

इतिहास पुराणे ।

यावज्जीवंच यो मासं विषवत् परिवर्जयेत् ।
वशिष्ठ भगवानाह स्वर्ग लोके सतिष्ठति ॥ ५४

यज्जीव लग जो पुरुष मांस विष समान जानिकर त्यागो वसिष्ठ ऋषीश्वर कहै हैं दा पुरुष को अवतार स्वर्ग लोक विषैं होय ॥५४॥

या वंति पशु रोमाणि पशु गात्रेषु भारत ।
ता वद्वर्ष सहस्राणि पच्यन्ते नरके नराः ॥ ५५

जेता पशू का शरीर विषैं पशू का रोम होय तेता वरस जीव को हिंसा करि मांस भक्षण करण वारो पुरुष नरक ज्वाला विषैं पचे ॥५५॥

आकाश गामिनो विप्राः पतिता मांस भक्षणात् ।
विप्राणां पतनं दृष्ट्वा त्याज्यं मासं विवेकिभिः ॥ ५६

आकाश गामी ब्राह्मण हैं ते माँस भक्षण करि पड्या ब्राह्मणों का पड्वा देखि करि विवेकी पुरुषां का मांस तजनो उचित है ॥५६॥

शुक्र श्रोणित संभूतं मासं यो खादते नराः ।
तेजना कुर्वते शौच्यं हसन्ते तत्र देवताः ॥ ५७

वीर्य और लोही करि उपज्या जो ऐसा मांस कूं जे नर भक्षण करैं फिर स्नान मंजन शौच्य करैं त्या पुरुषां को देखि देवता हँसे ॥५७॥

क्वमांसं क्व शिवे भक्तिः क्वमद्यम् कालि कार्चनं ।
मद्य मासानु रक्तानां दूरे तिष्ठति शंकरः ॥ ५८

मांस को भक्षण करै ताके शिव के विषैं भक्ति कहां मद्य मांस विषै अनुरिक्त जो पुरुष तातैं शिव दूर ही रहै हैं ॥५८॥

किं जाप्यै होम नियमे तीर्थं स्नाने च भारत ।
यदिखा दति मांसानि सर्व मेतन्निरर्थकं ॥ ५९

जाप होम नित्य नियम करि कहा फेर तीर्थ स्नान किये पुन कहा हे भारत जे पुरुष मांस भक्षण करैं ताकी सारी क्रिया वृथा हैं॥५९॥

प्रभा सं पुष्करं गंगा कुरुक्षेत्रं सरस्वती ।
वेदिका चन्द्र भागाच सिन्धुश्चैव महा नदी ॥ ६०

प्रभास तीर्थ पुष्कर तीर्थ गंगा नदी कुरु क्षेत्र सरस्वति वेदिका चंद्रभागा नदी फेर सिंधु महा नदी ॥६०॥

एते तीर्थैः महत्पुण्यं यत्कुर्या दमि जेक्षनं ।
अभक्ष णंच मांसस्य नचतुल्यं युधिष्ठिर ॥ ६१

एता तीर्थ विषैं पुरुष दानादि महा पुण्य करै और जे मांस की त्याग करें है हे युधिष्ठिर इन दोनों विषैं मांस परि त्याग अधिक जाणनों ॥६१॥

तिल सर्षप मात्रन्तु यो मांसं भक्ष्यति नरः ।
सयाति नरकं घोरं यावच्चद्र दिवा करौ ॥ ६२

तिलवा सरस्यूं प्रमाण जो पुरुष मांस भक्षण करै है सो पुरुष नरक विषै जाय है जहां तक चंद्र सूर्य को उदय होया ॥६२॥

केदारेये जलं पीत्वा पुण्य मर्ज यते नरः ।
तसा दष्ट गुणं प्रोक्तं मद्यामिष वि वर्जनम् ॥ ६३

केदार विषैं जल पीय करि जे पुरुष जैसो पुण्य उपार्जै तापुण्य से आठ गुणे पुण्य कह्यो है। मद्य मांस को त्याग करै ॥६३॥ मांस वर्जनाधिकार ।

मूलं समस्त दोषाणं मद्यंयस्मा दुदीरितं ।
तस्मान्मद्यं न पीतव्यं धार्मिकेण विशेषतः ॥ ६४

बीजं मदन वृक्षस्य कोपस्यो दीपनं परं ।
मद्य पानं कथं कार्यं नरेण शुभ कांक्षिणां ॥ ६५

मूल समस्त दोषन को याको नाम मद्य कह्यौ तासूं मद्य पीवनों योग्य नहीं धर्मात्मा पुरुष ने विशेष करि वर्ज करी है ॥६४॥ बीज है काम रूपी वृक्ष को फेर क्रोध उपजाय वामें

मुख्य है ऐसौ मद्यपान कोई प्रकार भी करनो योग नहीं कल्याण का वांछन हारा पुरुष कूं ॥६५॥

महाधिकार ।

मद्ये मांसे मधुनिचा नव नीतेऽत्वहिंगते ।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते सुसूक्ष्मा जन्तु राशयः ॥ ६६

मद्य मांस मधु विषै मांयण छांछ मांहि सूं निकाले संते उत्पन्न होय। अर मरण ने प्राप्त होय महा सूक्ष्म जीवां की राशि जाकी संख्या कही जाय नहीं ये वचन नागपटल ग्रंथ में का है ॥६६॥

सप्त ग्रामेषु यत्पाप मग्नि नाभस्म सात्कृतं ।
तत्पापं जायते जेतोः मधु विंद्वेक भक्षणात् ॥ ६७

सात गांव वरके जो पाप होय जिनमें सू पाप उत्पन्न होय जो पुरुष कूं जो शहद की एक बूंद भक्षण करै अधिक भक्षण करै ता पाप कौ लेखो नहीं ॥६७॥

मेद मूत्र पुरी पाद्यैः रसाद्यैः वर्धितं मधु ।
छर्दि लाला मुख श्रावैर्भक्ष्यन्ते ब्राह्मणैः कथं ॥ ६८

मद मूत्र विष्ठादिकरि और रसादि का आस्वाद मधु इकठी कियौ। माखिन की उवाक उर लाल मुखसों पड़े ताको महुप निपजे ऐसौ मधु ब्राह्मण के भक्षण करिवा योग्य क्यों करि होय ॥६८॥

मूल मध्वाधिकार ।

ये रात्रौ सर्वदा हारं वर्जयंति सुमेधसः ।
तेषां पक्षोप वासस्य फलं मासेन जायते ॥ ६९

जो रात्रि विषै सर्व आहार कूं तजै जे पाडित तिनकूं पक्ष उपवास को फल महीना एक १ मांहि उत्पन्न होय ॥६९॥

नोदक मपि पीतव्यं रात्रौ यत्र युधिष्ठिर ।
तपस्विना विशेषेण ग्रहिणाच्च विवेकिना ॥ ७०

जल पान पीवने को नहीं जा रात्रि विषै हे युधिष्ठिर तपस्वी साधु को विशेष करि के ग्रहस्थ पन जो विवेको होय ताकूं भी रात्रि समय न पीवनो ॥७०॥

मृते स्वजन मात्रेपि सूतकं जायते किल ।
अस्तं गते दिवा नाथे भोजनं क्रियते कथं ॥ ७१

कोई स्वजन कूं मुवे संते तो सूतक काल तौ सूर्य अस्त हुवे संते भोजन कैसे करनौ ॥७१॥

अस्तं गते दिवा नाथे तोयं रुधिर मुच्यते ।
अन्नं मांस समं प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा ॥ ७२

सूर्य के अस्त होत संते जल रुधिर समान कहिए रात्रि समय भोजन मांस समान भक्षण जाणनो मार्कंडेय ऋषीश्वर का वचन कह्या है ॥७२॥ ये श्लोक मार्कंडेय पुराण का है ।

रक्ता भवन्ति तो यानि अन्नानि पिशिता निच ।
रात्रौ भोजन सक्तस्य ग्रासे तन्मांस भक्षणं ॥ ७३

रात्रि समय रक्त सदृश्य जल होय है । अन्न मांस सदृश होय है रात्रि भोजन करता पुरुष कूं ग्रास ग्रास विषैं मांस भक्षण है ॥७३॥

मुहूर्तेनोदितं नक्तं प्रवदंति मनीषिणः ।
नक्षत्र दर्शनं नक्तं नाहं मन्ये गणाधिप ॥ ७४

दोय घड़ी दिवस रहे तापाछे रात्रि बुद्धिवान पुरुष कहै हैं। आकाश विषै रात्रि हुवा संता ना रानि तिणों को जोति कि मैं नहीं मानों हुं ॥७४॥

मेधांपि पीलिका हंति यूका कुर्याज्जलोदरं।
कुरु ते मक्षिका वांति कुष्ट रोगं च कोलिकः ॥ ७५

रात्रि समय भोजन विषै कीड़ी आवे तो भोजन करण हारा को बुद्धि जाय और जूंवा होय तो जलोदर होय। माखी आवे तो वमन होय विस्मरो आवे तो कुष्ट होय ॥७५॥ रात्रि भोजनाधिकार।

तप शील समायुक्तं ब्रह्मचर्य दृढ़ व्रतं।
अलोल ... ... ॥ ७६

तप और शील करि संयुक्त ब्रह्मचर्य वृत विषैं दृढे चपलता रहित मूर्खता रहित पंच इंद्रिय वशित्व ऐसा लक्षण करि संयुक्त अतिथि कहिए। स्नानादि उपभोग से रहित पूजा सत्कार न वांछे। आभूषण शृंगार न करै साधु मांसतें निवृत्ति होय। ऐसा गुण युक्त अतिथि कहिए ॥७६॥

हिरण्ये वा सुवर्णे वा धन धान्ये. तथैव च।
अतिथिं.च विजानीयात् यस्य लोभो न विद्यते ॥ ७७

अन्य घडयो सोनो व घड़ायो सोनो का थाट ताविषै धन और धान्य तैसै ही अतिथि जाणनो ॥७७॥

तिथि पर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना।
अतिथिं च विजानीयात् शेष मभ्यां गतं विदुः ॥ ७८

तिथि वासर सर्व ही पर्व उच्छव जा महा पुरुष ने

छाड्या तासूं अतिथि कहिए और सारा ही भिक्षुक तिन कूं अभ्यागत कहिए पण अतिथि कहिए ॥७८॥

अयाचनक शीलानां दीक्षितानां तपस्विनां ।
अहिंसकानां मुक्तानां कुर्वंति युधिष्ठिर ॥ ७९

नहीं याचवा को स्वभाव है जिनको दीक्षाकर संयुक्त तप कर संयुक्त दया का पालने हारा और संसार का बंधन छूटा ऐसा तपस्वी की वृति करि हे युधिष्ठिर ॥ ७९॥

व्रतिनो ब्राह्मणाज्ञेया क्षत्रियाः शस्त्र पाणयः ।
कृषि कर्म करा वैश्या शूद्राः पेक्षण कारकाः ॥ ८०

ब्रह्मचर्य व्रत का पालने हारा ब्राह्मण कहिजे । शस्त्र धारण करे ताकूं क्षत्री कहिए कृषि करण वाणिज्य का करण हारा वैश्य कहिए । दास पणा करण हारा शूद्र कहिए ॥८०॥

ब्रह्मचर्य तपो युक्तः समः कांचने लोष्टवत् ।
सर्व भूत दया युक्तो ब्राह्मणः सर्व जातिषुः ॥ ८१

ब्रह्मचर्य तप करि सहित तृण सारिखा है कंचन जाके सारा ही जीवां की दया विषैं युक्त ऐसा लक्षण युक्त होय । तिनि कूं सारा ही जाति विषैं ब्राह्मण कहीजे ॥८१॥

ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्येण यथा शिल्पेन शिल्पकः ।
अन्यथा नाम मात्रंस्यात् इन्द्र गोपक कीटवत् ॥ ८२

ब्राह्मण जे कहो जे तिनके ब्रह्मचर्य होय जैसे शिल्प कला में प्रवीण होय ताकूं शिल्पी कहिये । विना ब्रह्मचर्य ब्राह्मण नाम मात्र कहिए । इंद्र गोपक कीड़ा की नांई ॥८२॥

येषां सदांतः श्रुति पूर्ण कर्णा जितेन्द्रिया प्राणिवधे निवृत्ता।
परिग्रहेसंकुचितानिरीहास्तेब्राह्मणास्तारयितुंसमर्थाः ॥ ८३

तिनका शांति परिणाम। पंच इंद्री का दमन हार और शास्त्र सुनि पूर्ण कर्ण जिनका। फेर जितेन्द्रिय हैं जीव हिंसातें निवृत्त है। परिग्रहतें संकोच्य है प्राण जिनने। फेर निर्वांछिक है ऐसा युक्त ब्राह्मण तारण को समर्थ है ॥८३॥

इति महा भारते। ब्राह्मणाधिकार महा भारते शांति पर्वणि फेर महा भारत विषै शांति पर्व विषैं और भी कहे हैं। ते कहिए है।

कै वर्ती गर्भ सम्भूतो व्यासो नाम महा मुनि।
तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिर कारणं ॥ ८४

माछली ज्यों मत्स्य गंधा ताका उदर सूं उपज्यो व्यासन में बड़ा मुनि तपस्या करि ब्राह्मण हुवो। तातें ब्राह्मण हो वाको कारण जाति नहीं ॥८४॥

श्वपा की गर्भ सम्भूतो पाराशर महा मुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिर्न कारणं ॥ ८५

चांडाली गर्भ विषै उपज्या पाराशर नाम मुनि तपका प्रभाव करि ब्राह्मण भया तासें जाति कारण नहीं ॥८५॥

अरणी गर्भ सम्भूत आरण्यक महा मुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिर्न कारणं ॥ ८६

अरणी नाम वृक्ष तां विषैं उपज्यौ। अरण्य नाम मुनि तप कर ब्राह्मण भयौ। जातें जाति कारण नहीं ॥८६॥

शुनकी गर्भ सम्भूतो शुको नाम महा मुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिर्न कारणं ॥ ८७

कुत्ती के गर्भ विषै उपज्यो । शुक नाम महा मुनि तप कर ब्राह्मण भयो । तातैं जाति कारण नहीं ॥८७॥

हस्तिन्या मचलो जात उलूक्यां केश वंवलं ।
अगस्तयोऽगास्ति पुष्पाच्च कौशिकः कुशशः सुतः ॥ ८८

हतनी के उदर अचल नाम ऋपीश्वर हुवा । घुघुनी के पेट केशव और बल उत्पन्न हुए । अगस्ति मुनि अगस्तिया का फूल में सूं उपज्या । कौशिक नाम ऋपीश्वर कुशका पाथरा मांहि सूं उपज्या ॥८८॥

कठिनात् कठिनो जातः शर गुल्माच्च गुल्म को ।
द्रोणाचार्यस्तु कलशात् तितिरि स्तितिरी भवः ॥ ८९

रेणु का पट में फरसराम उपजे । ऋषी शृंग नाम वन विषै मृगणी के पेट से उपजे । माछली के व्यास उपज्या । कलावत नाम ऋषि को शूद्रणी ने जाया ॥८९॥

विश्वामित्रश्च चांडाली वशिष्टं चोर्वशी तथा ।
विप्रा जाति कुला भावे एते तेवैं द्विजोत्तमाः ॥ ९०

विश्वामित्र ऋपीश्वर चांडाली के पेट में उपज्या । वशिष्ट नाम वेश्या का पेट में से उपज्या । ऐता ब्राह्मण जाति कुल के विना ही ब्राह्मण पणो भया ॥९०॥

शीलं प्रधानं कुलं प्रधानं कुलेन किंशील विवर्जितेन् ।
पञ्चोनरानीचकुलेपुजाताः स्वर्गगताः शीलमुपेत्यधीरः ॥९१०

शील प्रधान है कुल प्रधान नहीं। मोटा कुल कूं कहा करै जामें शील न होय। घणाही पुरुष नीच कुल विषै उपज्या। स्वर्ग लोक विषैं प्राप्त हुवा। शील पाल कर लाहलोक ॥६१॥

नैतेषाम ब्राह्मणी विद्या न संस्कारश्च विद्यते।
तपसा ब्राह्मणा जातः तस्माज्जातिर्न कारणं ॥ ९२

एतां के ब्राह्मण सम्बन्धी विद्या भी नहीं। केवल तप करि ब्रह्म कवि हुआ। तातें जा जाति कारण नहीं ॥६२॥

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां वृत धारणं।
ब्रह्मचर्यस्य भंगेन वृतं सर्वं निरर्थकम् ॥ ९३

यो ऋषि कुल को भारत विषैं जानवां। ब्रह्मचर्य है सो मूल जानवो। सारा ही वृता मध्य यो ब्रह्मचर्य भंग किये सारा ही वृत वृथा है ॥६३॥

तांबूल सूक्ष्म वस्त्राणि स्त्री कथेन्द्रिय पोषणं।
दिवा निद्रा सदा क्रोधो यतीनां पातका निषद् ॥ ९४

तांबूल सूक्ष्म वस्त्रों को पहिरवो। स्त्री शृंगारादि कथन इंद्रिया को पोषवो। दिवस विषैं सोवनों। सदा क्रोधी परिणाम जतीश्वरां का ये छै पातिक जानना ॥६४॥

सुख शय्या नवं वस्त्रं तांबूलं स्नान मंडनं।
दन्त काष्ट सुगन्धश्च ब्रह्मचर्यस्य दूषणं ॥ ९५

अपूर्व अलंगित क्रिया सिरख। ऐसा बिछाय करि सोवनो ताकूं सुख शय्या कहिये। तांबूल स्नान और शरीर को मंडन करनो और दंतवन करनो। चोवा प्रमुख अत्तरादिक विलेपन करनो इत्यादि। ब्रह्मचर्य को दूषण है ॥६५॥

ब्रह्मचर्यस्य शुद्धस्य सर्व भूत हितस्य च ।
पदे पदे यज्ञ फलं पृथ्वी तस्य युधिष्ठिर ॥ ९६

शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन हारा कूं सर्व जीवां को हितकारी कूं पद पद यज्ञ किया को फल हे चाले नहीं है युधिष्ठिर ॥९६॥

एकतः चतुरो वेदा ब्रह्मचर्य मथेकत ।
एकतः सर्व पापानि मद्य मासे तथैकतः ॥ ९७

एक तरफ तो चारों वेद को पढ़िबो और ब्रह्मचर्य को पालबो एक तरफ सारा ही पाप करिबो और मद्य मांस को खायबो एक तरफ ॥९७॥

आरम्भे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठिर ।
गृहस्थस्य कुतः शौचं मैथुनाभि रतस्य च ॥ ९८

आरंभ को विषय वर्ते तो हिंसक जीव कूं हे युधिष्ठिर ग्रहस्थस्य शौच कहां सो होय स्त्री सेवन के विषै तत्पर ॥९८॥

मैथुनं येन सेवन्ते ब्रह्मचारी दृढ़ वृताः ।
ते संसार समुद्रस्य पारंगछन्ति मानवाः ॥ ९९

मैथुन न करै ब्रह्मचर्य विषैं दृढ़ परिणाम है । जिनको तेपुरुष ससार समुद्र कूं प्राप्त होंहिं ॥९९॥

अनेकानि सहस्राणि कुमाराः ब्रह्मचारिणः ।
दिवङ्गताहि राजेन्द्र अकृत्वा कुल सन्ततिम् ॥ १००

अनेक सहश्र बाल ब्रह्मचार्य स्वर्ग लोक कूं प्राप्त हुवा हे राजेन्द्र कुल वृद्धि कारणे वाला संतान विना ही स्वर्ग गया ॥१००॥

शुचि भूमि गतं तोयं शुचिर्नारी पतिव्रता ।
शुचिर्धर्म परो राजा ब्रह्मचारी सदा शुचिः ॥ १०१

आकाश पृथ्वी ऊपर यथेष्ट पडया। पीछे जल पवित्र जाणनो और ब्रह्मचारी है सो सदा ही शुद्ध जाणनो ॥१०१॥
ब्रह्मचार्याधिकार महाभारते यो ब्रह्मचर्य को अधिकार है।

यस्मिन् गृहे सदा नार्या मूलक पच्यते जनैः ।
स्मशान तुल्यं तद्वेश्म पितृ भिः परिवर्जितम् ॥ १०२

जाघर विषे सदा मूलोपचाइये है। पुरुष तथा स्त्री करे ताको मंदिर स्मशान सदृश है सो घर प्रथम ही पितृ करि रहित है ॥१०२॥

मूलकेन समश्चान्नं यस्तुंभुक्ते नराधमः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायण शतै रपि ॥ १०३

मूला के साथ जो अधम जो पुरुष भक्षण करै ताको शुद्धता न होय केवल चान्द्रायण सो वार करै तो पन ॥१०३॥

भुक्तं हालाहलं तेन कृतंचा भक्ष्य भक्षणं ।
वृंतेच भक्षणाच्चापि नरोयाति सरौर वं ॥ १०४

ता पुरुष ने हाला हल विष खायो फिर ता पुरुष ने अभक्ष को भक्षण कियो और वृतां को भक्षण कियो। पण पुरुष रोरव नरक विषे जाय ॥१०४॥

मूल शिव पुराणे ।

वरं भुक्तं पुत्र मासं नतु मूलक भक्षणं ।
भक्षणात् नरकांति वर्जनात् स्वर्ग माप्नुयात् ॥ १०५

ये श्लोक शिव पुराण में कह्या है। पुत्र को मांस भक्षण कियो भलो परन्तु मूला को भक्षण कांई नहीं। मूला का भक्षण किये नरक पावे स्वर्ग पावे वर्जन किये संते ॥१०५॥

अज्ञानेन मया देव कृतं मूलक भक्षणं।
तत्पापं यातु गोविन्दं गोविन्दं तव कीर्तनात् ॥ १०६

ये मैंने अज्ञान पणा करि मूला को भक्षण कियो है। गोविंद सो पाप मेरे जावो गोविंद ऐसो नाम वार वार लिया संता ॥१०६॥

रसो नग्न सनं चैव पलाडु मूल पिंडकं।
मधु मांसं सुरा चैव मूल कन्तु विशेषतः ॥ १०७

प्याज को भक्षण फिर कंद विशेष पिंडालू सहन मांस सुरा पान मूली सब ही सूं विशेष त्याग योग्य है ॥१०७॥

प्रभास पुराणे। ये श्लोक प्रभास पुराण के हैं।

मद्य मांसा शनं रात्रौ भोजनं कन्द भक्षणम्।
ये कुर्वन्ति वृथास्तेषां तीर्थ यात्रा जपस्तपः ॥ १०८

मद्य मांस को भक्षण और रात्रि भोजन भक्षण। कंद मूलादिक को भक्षण कर है जे पुरुष तिनको वृथा तीर्थ यात्रा जप तप ॥१०८॥

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः।
वृथाच पौष्करी यात्रा वृथा चांद्रायणं तपः ॥ १०९

ता पुरुष को एकादशी वृथा है तिनको जागरण वृथा फोक है। चांद्रायण को तप भी वृथा ही है ॥१०९॥ पद्म पुराणे। ये श्लोक पद्म पुराण का है।

रक्तं मूलक मत्याह तुल्यं गौमांस भक्षणम् ।
श्वेतं तं विद्धि कौंतेय मूलकं मदिरोपमं ॥ ११०

नाजर और सूरन कंद को यों कहैं हैं । गाय मांस सदृश्य है । धोलो कन्द सारो ही तू जान हे कुंती का पुत्र मूला है सो मदिरा पान समान है ॥११०॥

पितृणां देवता दीनां यः प्रयच्छति मूलकं ।
सयाति नरके घोरे या वचन्द्र दिवाकरौ ॥ १११

पितृ जे हैं तिन कूं देवते हैं तिन कूं जो पुरुष मूला दे जो घोर नरक विषे जाय पण कल्पांत काल पर्यंत भी उद्धार न होय ॥१११॥

कन्द मूलानि ये मूढ़ा सुप्ते देवे जनार्दने ।
भक्षयन्ति नराः पार्थ तेवै नरक गामिनः ॥ ११२

दशशून्यो समश्चक्री दश चक्री समोद्विजः ।
दश द्विज समावेश्या दश वेश्या समो नृपः ॥ ११३

कंद मूल कूं जे पुरुष देव सूता पाछे लेय । देव सूता पाछे भक्षण करे तो हे पार्थ ते पुरुष निश्चय करि नरक गामी अवश्य होय ॥११२॥ दश अहेड़ी समान एक कुम्हार जाणनो । दश वेश्या समान पाप एक राजा को होय ॥११३॥

राज प्रति ग्रहो घोर मुख स्वादो विषोपमः ।
पुत्र मासं वरं प्रोक्तं नतु राज्य परिग्रहः ॥ ११४

ता कारण राज को प्रतिग्रह घोर है । मुख को स्वाद है । परन्तु विष सदृश्य है । पुत्र मांस खावो भलो । परन्तु राज्य

को परिग्रह भलो नहीं ॥११४॥ भारते शांति पर्वणि। ये श्लोक शांति भारत का है।

नील क्षेत्रं वपेद्यस्तु मूलकं चो पदिश्यति ।
नतस्य नर को तारः यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ११५

नील को खेत जो पुरुष बोवे और मूला खावाने उपदेशी ता पुरुष को नरक सुं उद्धार न होय। जब लग चौदा इन्द्र होय ॥११५॥

शाखा मूले दले पुष्पे फले किं जल्क मध्यतः ।
तेजीवाः सन्तित द्वर्णा ··· ··· ॥ ११६

वृक्ष को डाल विषैं पान फूल विषैं फूल लाइए विषे तेता जीव है। तिनका वर्ण उन्हीं सदृश्य है सो जाननो। तिन जीवा की संख्या कर वाकों कौन समर्थ ॥११६॥

गोरसं मास मध्येतु मुद्रादिपु तथैवच ।
भक्ष्यमाणं कृतन्नूनं मांस तुल्यं युधिष्ठिर ॥ ११७

काचो दही का छांछ विषैं। तैसै ही मूंग चणादिक का संयोग करि भक्षणादि किया मांस सदृश्य निश्चय होय है। हे युद्धिष्ठिर ॥११७॥ इतिहास पुराण का ये श्लोक है।

नच सिंहो नच शार्दूलः नच व्याघ्रः शरभो नच ।
अजा पुत्र वलिं दद्या देवो दुर्वल घातकः ॥ ११८

सिंह को वल फेर शार्दूल वलि वाघ को वल नहीं। अष्ट पद को वल नहि। फेर वापडा बोकडा को वलि दिवावे देखो देवपन दुर्वल को घात करै है। सवलां पर कांई भी होय नहीं ॥११८॥

जङ्गमस्थावरं चैव द्विविधं तीर्थं मुच्यते ।
जङ्गमं ऋषयः तीर्थं स्थावरं तु विशेषतः ॥ ११९

चले तासूं जंगम कहिए। थिर रहे तासूं थावर कहिए। ये तीर्थ दोय प्रकार कह्यो जे। जंगम तीर्थ तो ऋषीश्वर हैं और ऋषीश्वर की सेवा करवो सो तीर्थ जाणनो ॥११६॥

अहिंस सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमं ।
भैक्ष्य वृत्त रतायेच ततीर्थं जङ्गमं स्मृतं ॥ १२०

जीव दया सत्य बोलवो चोरी न करनो ब्रह्मचर्य और पंच इन्द्री को संवर और भिक्षा वृती पती वस्तां विषें जे तत्पर होंय सो जंगम तीर्थ कहिए ॥१२०॥

अगाधे विमले शुद्धे सत्य शील समे हृदे ।
स्थातव्यं जङ्गमं तीर्थः ज्ञानार्जव दया परैः ॥ १२१

ऊंडो निर्मल पवित्र ऐसो जो सत्य शील समान है ता विषें रहिनो पणि कौन को रहवो। जंगम तीर्थ कूं जे जंगम तीर्थ कैसा है। ज्ञान और सरल दयावंत है ॥१२१॥ आदित्य पुराणे ये श्लोक आदित्य पुराण का है।

आचार वस्त्राभ लगालितेन ज्ञानांबुनाताति नरोचनित्यं।
सत्यप्रसन्नक्षमशीतलेनकिंतस्यभूयःसलिलेनकृत्यम् ॥ १२२

आचार रूपो वस्त्र छान्यो। ऐसो जो ज्ञान रूपी जल ता करि जो पुरुष स्नान करै है फिर ज्ञान जल ऐसो कहै। सत्य रूपी निर्मल पणो क्षमा रूपी है। सीतल पणो है जामें। ताकूं फेर जल स्नान करि कहा करिये। पानी करि डील भिजोये संते पन स्नान कियो न कहिए। स्नान सो कहीजे। सो पंच

इंद्री को जीत कर उज्वल होय ना पुरुष कूं वाहिर अभ्यंतर पवित्र जाननां ॥१२२॥

सप्त स्नानानि सूक्तानि स्वयमेव स्वयंभुवा ।
द्रव्य भाव विशुध्यर्थं ऋषीणां ब्रह्मचारिणम् ॥ १२३

सप्त स्नान कहे हैं आप ही करि स्वयंभूने वाह्य और आभ्यंतर की शुद्धता के निमित्त ऋषीश्वरां को और ब्रह्म चारीण को ॥ २३॥

आग्नेयं वारुणं ब्रह्मं वायव्यं दिव्य मेवच ।
पार्थवं मानसं चैव स्नानं सप्त विधं स्मृतं ॥ १२४

ऐसा प्रकार अर्थ जाननां ॥१२४॥

आग्नेयं भस्मनां स्नान मन्त्र गाह्यं तु वारुणं ।
आप्तोदिष्ट मयं ब्राम्हं वायव्यं तुग वारंजः ॥ १२५

भस्मकरि विलेपन कीजे। सो आग्नेय स्नान कीजे। दशौ दिशा अवगाहन करै। सो वारुण स्नान कहीजे। आत्म स्वरूप को ध्यान करै सो बृह्म स्नान कहीजे। गायां करि जल गावे सो वायव्य स्नान कहीजे ॥१२५॥

सूर्य दृष्टौ तुयदृष्टं तदिव्य मृषयो विदुः ।
पार्थिवन्तु मृदा स्नानं मनः शुद्धिस्तु मानसम् ॥ १२६

सूर्य दृष्टि सूं जो दृष्टि मिलावनो सो दिव्य स्नान कहीजे। ऋषीश्वरां कूं और पार्थिव स्नान कहीजे। जोगारि करि डोल सो लिप्त करनो और मन की पवित्र ताराखणी। सो मानसी स्नान कहीजे ॥१२६॥

आसनं शयनं पानं नाना पथि तृणा निच ।
मारुते नैव शुध्यन्ति यच्चपुण्यं प्रकीरतम् ॥ १२७

वेसणुपाट प्रमुख गाड़ी प्रमुख नाना प्रकार को तृण मारग विषै ते सर्व पवन ही करि शुद्ध होय और जो चौहटा विषै किराणो माड्यों होय सो पवन करि पवित्र जाणनो ॥१२७॥

मक्षिकाच ऋपि नारी भूमी तोयं हुताशनं ।
जितेन्द्रियश्च मन्त्रश्च मारुतश्च सदा शुचिः ॥ १२८

माखी और आर्या । पृथ्वी विषै पड़ो पानी और अग्नि जितेंद्रिय पुरुष और समस्त मंत्र और पवन पती वस्तां सदा ही पवित्र है ॥१२८॥

नीले वस्त्रे जलं तक्रं यथा गौम्लैच्छ मन्दिरे ।
भिक्षान्नं पञ्च गव्यं च पवित्राणि युगे युगे ॥ १२९

नील वस्त्र विषै जल छाछ जैसी गाय मलेच्छ के घर गई होय तो भी पवित्र ही होय और भिक्षा भोजन और गाय को दूध दही घीव छाछि मूत्र छाणिये पांच वस्तु जुग जुग विषै पवित्र जाणनो ॥१२६॥

नीहारे मूत्र भोजने मृतजात रजस्वलाः ।
इति षट् सर्व जातीय नमा तंगेषु सप्तमम् ॥ १३०

बड़ी बाधा लहुरी बाधा और भोजन सगा कुटंबो के मृतक मनुष्य पुत्र पुत्री को जन्म । ये छह आभड छेलि सघला ही के जानणो । चांडाल विषें सातमी जाननो ॥१३०॥

देवेंद्राणां विवाहेच यज्ञे यात्रादिकोत्सवे ।
संग्रामे हट्ट मार्गेच स्पृष्टा स्पृष्टं न विद्यते ॥ १३१

देवतान का विवाह विषै यज्ञ विषैं । यात्रादिक उत्सव विषै संग्राम विषैं हाट बजार विषै आभड़ छेट नहीं ॥१३१॥

नमृतिका नैव जलं नाप्यग्निर्कर्म शोधनम् ।
शोधयन्त बुधा कर्म ज्ञान ध्यान तपो जलैः ॥ १३२

माटी कर्म शोधन हार नहीं । जल पण पवित्र करण हार नहीं । अग्नि पण कर्म शोधन हार नहीं । पंडित जन कर्म कौं शोधे हैं । ज्ञान ध्यान रूपी जल करि ॥१३२॥ शिव पुराणे ये श्लोक शिव पुराण का है ।

सत्यं तीर्थं तपःस्तीर्थं तीर्थ मिंद्रिय निग्रहः ।
सर्व भूत दया तीर्थं मेत तीर्थं मुदाहतम् ॥ १३३

सत्य वचन बोलवो है सो तीर्थ ही है । पांच इंद्रियनि को निग्रह है सो तीर्थ ही है । सर्व प्राणी की दया राखनी सो भी तीर्थ है । ये तीर्थ शास्त्र विषै भगवान ने कहे हैं ॥१३३॥

समता सर्व भूतेषु मनोवाक्काय निग्रहः ।
पाप ध्यान कषायाणां निग्रहेण शुचिर्भवेत् ॥ १३४

सारा जीवा विषै समचित्त राखवो । मन वचन काय को निग्रह । पाप रूप जो ध्यान और कषायनि के निर्दहे किये संते पवित्र होय ॥१३४॥

आत्मान दीयं यम तोय पूर्णा सत्या वहाशील तटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकंकुरुपांडपुत्र नवारिणाशुध्यतिचांतरात्मा ॥ १३५

आत्मा रूपी नदी । संयम रूपी जल करि पूर्ण होय । सत्य रूपी प्रवाह । शील रूपी तट दया रूपी हैं लहरे जा विषै

ऐसा अंतरंग तीर्थ विषै हैं। पांडु पुत्र स्नान करनो। जल के स्नान किये अंतरंग आत्मा को पवित्र नहीं होय है ॥१३५॥

चित्तमं तर्गतं दुष्टं तीर्थ स्नानेन शुध्यति ।
शत शोपि जलैर्धौतं सुरा भांड़ मिवा शुचि ॥ १३६

जाको चित्त अंतरंग दुष्ट है। सो पुरुष तीर्थ विषें स्नान किये शुद्ध नहीं होय है। सैकड़ां वार पण जल सूं धोये सते। मद्य को भांड़ो अपवित्र ही रहे पवित्र न होय। ॥१३६॥

मृदो भार सहस्रेण जल कुम्भशतेनच ।
न शुध्यति दुराचारः स्नान तीर्थ शतै रपि ॥ १३७

माटी का सहस्र भार डोल सु वसिये पानी का सौ घड़ा करि स्नान करिये अंतरंग का दुराचार शुद्ध न होय। सैकड़ां तीर्थ में स्नान किये सते ॥१३७॥

सत्यं शौचं तपः शौचं शौच मिंद्रिय निग्रह ।
सर्व भूत दया शौचं जल शौचं तु पञ्चमम् ॥ १३८

सत्य वोलवो शौच्य है तप करिवो शौच्य है पंच इंद्रियनि को निग्रह शौच है सारा जीवा की दया भी शौच है पांचमो शौच पाणी में है ये पांच शौच्य शास्त्र में कह्या है ॥१३८॥

आरम्भे वर्तमानस्य मैथुनाभि रतस्य च ।
कुतः शौचं भवेतस्य ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ १३९

आरंभ के विषें वर्तमान है। स्त्री सेवन विषैं तत्पर है। ऐसा को शौच्य कहां सो होय ऐसा ब्राह्मण होय। तिन कूं हे युधिष्ठिर ॥१३९॥

दृष्टि पूतन्य सेत्पादं वस्त्र पूतं पिवेज्जलं ।
सत्य पूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥ १४०

मार्ग विषैं देखिकर चालते पग धारनो वस्त्र करि छान करि जल पीवनो सत्य सहित वचन बोलनो मन सहित शुद्ध आचरन करनो । कूड कपट राखनो नहीं ॥१४०॥

संवत्सरेण यत्पापं कुरुते मत्स्य वन्धकः ।
एकाहेन तदाप्नोति अपूत जल संग्रही ॥ १४१

वर्ष दिन पर्यंत जो पाप धीमर करे मच्छी मार करि सो पाप एक दिन में लागै जो अन गालित जल पीवे ताकूं ॥१४१॥ ये श्लोक विष्णु पुराण का है ।

काम राग मदोन्मत्ता येच स्त्री वश वर्तिनः ।
नते जले न शुध्यन्ति स्नान तीर्थ शतै रपि ॥ १४२

विषय राग करि जो पुरुष उन्मत्त हुवा स्त्रीन के आधीन वर्तो हैं ते पुरुष जल करि शुद्ध न होय सैकड़ां तीर्थ विषैं स्नान करै तोभी ॥१४२॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षण छेदन ताप ताड़नैः ।
तथैव धर्मो विदुषां परीक्ष्यते श्रुतेन देवेन तपो दयागुणैः ॥ १४३

जैसे चार प्रकार सुवर्ण की परीक्षा करिये हैं । कसोटी में कसि करि सुलाख से छेद करि अग्नि विषैं तपाया करि । हथोड़ी कूट करि तैसे ही धर्म पण चार प्रकार करि पंडितन से परिक्षया करनी श्रवण करि तपस्या करि । आचार करि दया करि । ये चारी परीक्षा धर्म की जाणनी ॥१४३॥ ये श्लोक भारत शांति पर्व का है ।

अहिंसा प्रथमा प्रोक्ता यस्मात्सर्वज्ञ तत्प्रिया ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कर्तव्या सा विचक्षणैः ॥ १४४

व्यर्थ सारा धर्म विषैं अहिंसा प्रथम ही ये है । ता कारण सर्वज्ञ भगवान को अहिंसा बहुत प्यारो है । तातैं सर्व ही जतन करि प्रवीण पुरुषां करि अहिंसा करवो योग्य है ॥१४४॥

मरिष्या मीतिय दुक्खं पुरुषस्येह जायते ।
शक्यस्तेनानु मानेन परोपि परि रक्षितुं ॥ १४५

हूं मरोगो ऐसो ऐसो जो दुक्ख या लोक विषैं पुरुष कूं होय है । ताही अनुमान करि किये पर प्राणी को आप समान जानी कर रक्षा करनी ॥१४५॥

नगं मान चकेदारं नगया नच पुष्करं ।
न ज्ञानं नच होमश्च न तपो न जप क्रिया ॥ १४६

गंगा गया भी कांई नहीं । केदार गये भी कांई नहीं प्रयाग गये भी कांई नहीं । पुष्कर गये भी कांई नहीं । घणों शास्त्र पढ़ें तो भी कांई नहीं । होम किये भी कांई नहीं । जप तप कियो या भी होय नहीं ॥१४६॥

न ध्यान मेव न स्नानं न दानं नापि सत्क्रिया ।
सर्वे ते निष्फला यान्ति यस्तु मासं प्रयच्छति ॥ १४७

घटण प्राणा यदि ध्यान किये कांई नहीं । स्नान किये नाहीं । दान किये कांई नहीं ऐसा राहो कह्या ते निष्फल है जो मांस भक्षण करै ताकूं ॥१४७॥

शुक्र श्रोणित सम्भूत ममेध्यं मांस मुच्यते ।
अहो पार्थ अधरूपंहि तस्मात्स्पर्श विवर्जयेत् ॥ १४८

वीर्य और रुधिर सूं उपजो। अपवित्र मांस कहीजे।
जा कारण अमेध्य उपज्यो ता कारण स्पर्शण उवर्ज्यो ॥१४८॥

अमेध्य वस्त्व भक्ष्यत्वात्मनुष्यै रपि वर्जितम्।
देवोप भोगान पिजन्तोः मासं देवोन भुज्यते ॥ १४९

अमेध्य वस्तु भक्षण पणां ते मनुष्य पणो वर्जन करे देवो
पुनीत भोग का भोक्ता मांस कूं देवता कैसे भक्षण
करेंगे ॥१४६॥

देवा नाम ग्रतः कृत्वा घोरं प्राणि वधं नराः।
ये भक्ष्यन्ति मांसंच ते व्रजन्त्य धमां गतिम् ॥ १५०

देवन को आंगै करिके रौद्र जीवां को हतन करे है फेर
हन कर मांस भषहै ते जीव नीच गति विषे हैं। ते जीव नीच
गति विषै प्राप्त होय है ॥१५०॥

मांस पुत्रो पमं कृत्वा सर्व मांस निवर्जयेत्।
दया दान विशुध्यर्थं ऋपिभिः वर्जितं पुरा ॥ १५१

सर्व मांस कूं पुत्र सदृश जान करि तजिये और दया
दान ताकि विशुद्ध के निमित्त ऋषीश्वरां ने मना किया
है ॥१५१॥

नग्रा ह्याणिन देयानि पठ् वस्तू निच पंडितैः।
अग्निः मधु विषं शस्त्रं मद्य मासं तथैव च ॥ १५२

लेनी नहीं देनी नहीं छै वस्तु पंडिता करि अग्नि मधु
विष शस्त्र मद्य मांस ॥१५२॥

घात कश्चातु मन्ताच भक्षण क्रय विक्रया।
लिप्यन्ते प्राण घातेन पञ्चतेतु युधिष्ठिर ॥ १५३

जीव घात को करण हार और सीख को देन हार भक्षण करण हार क्रय विक्रिय करण हार लिप्त होय प्राणी घात करि के ये पांचों ही हे युधिष्ठिर ॥१५३॥

के केतु ब्राह्मणः प्रोक्तः प्रोक्तं किंवा ब्राह्मण लक्षणं ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं तन्मेक थय सुव्रत ॥ १५४

कौन कौन ब्राह्मण कहया कहा ब्राह्मण का लक्षण है इच्छा है जानवा को सो कहो हे विष्णु ॥१५४॥

क्षमा तपो दया ध्यानं सत्यं शीलं धृतिर्घृणा ।
विद्या विज्ञान मास्तिक्य मेतत् ब्राह्मण लक्षणम् ॥ १५५

क्षमा तप दया ध्यान और सत्य फिर शील, धीरज ग्लनि, विद्या और ज्ञान श्रद्धा इतनी वस्तु जामे होवै। ताकूं ब्राह्मण कहिए है ॥१५५॥

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्मचेंद्रिय निग्रहः ।
सर्वे भूत दया ब्रह्म एतत् ब्राह्मण लक्षणम् ॥ १५६

सत्य बोलवो तप तपवो ब्रह्म है पांच इंद्रिय को निग्रह ब्रह्म है सर्व भूता की दया सो भी ब्रह्म है ऐसा ब्राह्मण का लक्षण है ॥१५६॥

शूद्रोपि शील सम्पन्नो गुणवान ब्राह्मणो मतः ।
ब्राह्मणो पिक्रिया हीना शूद्रादप्य धमो भवेत् ॥ १५७

शूद्र में पण शील करि संयुक्त हो सो गुण होय तो ब्राह्मण कहिये ब्राह्मण पणा क्रिया हीन शूद्र येपण। अधम नीच जाणनो ॥१५७॥

सर्व जातिषु चांडालाः सर्व जातिषु ब्राह्मणः ।
ब्राह्मणाश्चापि चांडालः चंडालेष्वपि ब्राह्मणः ॥ १५८

सारो ही जाति विषैं चांडाल हो । सारो ही जाति विषैं ब्राह्मण है । ब्राह्मण विषे पण चांडाल है । चांडाल विषे पण ब्राह्मण है ॥१५८॥

अव्रताच दुराचारा येच भैक्ष्ये तरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्ड येद्राजा चौर भुक्त प्रदायकं ॥ १५९

अव्रति फेर खोटो है आचार जिनको फेर जो भिक्षा व्रति टाल दुसरी आजीविका करैं ता गांव कूं राजा दंडे कौनसा गांव कूं जा गांव विषे चोरान कूं भोजन देई ता गाव कू राजा दंड देय ॥१५९॥

ऋतुकालेऽव्यति क्राल्ने यस्तु सेवते मैथुनं ।
ब्रह्म हत्या फलं तस्य सूत कश्च दिने दिने ॥ १६०

जा स्त्री कूं ऋतु काल व्यतीत हुवा । उपरांति जो मैथुन करै ताकूं ब्रह्म हत्या को पाप है और याके अह दिन दिन प्रति सूतक है ॥१६०॥

ये स्त्री जघो रुसं स्पृष्टा स्वकाम गृद्धाश्चये द्विजाः ।
ये स्पष्टाः गर्भ स्पृष्टा स्तेपि शूद्रा युधिष्टिर ॥ १६१

जे स्त्री की जंघा स्पर्श करै हैं विषय सेवा के लिये बहु आशक्त हैं ब्राह्मण गर्भ वंत स्त्री कूं सेवन करै सोपण शूद्र ही जाननो हे युधिष्टिर ॥१६१॥

यस्तु रक्तेषु दंतेषु वेद मुच्चर ते द्विजः ।
अमेध्यं तस्य जिव्हाग्रे सूतकश्च दिने दिने ॥ १६२

जो ब्राह्मण पान खाय दांतरा ता करि के वेद को अध्ययन करै है ताकि जीभ सदा अपवित्र है और ताके दिन प्रति सूतक जाणनो ॥१६२॥

नाद्यात्पूगी फलं विद्वान ... ... ।
... समं प्रोक्तं चूर्ण योगश्च मद्यवत् ॥ १६३

न खाना पूगी फल पंडित कूं ताड़ को जो दूध ताकी तांई पान मांस समान कह्यो है चूना को जोग है सो मद्य समान है ॥१६३॥

हस्त तल प्रमाणांतु यो भूमिं कृपते द्विजः ।
नश्य ते तस्य ब्रह्मत्वं शूद्रत्वं चाभि जायते ॥ १६४

हथेली जेती भूमि जो ब्राह्मण खोदे ताकी ब्राह्मण पणो न शूद्र पणो होय ॥१६४॥

कृपि वाणिज्य गोरक्षां राज सेवांच किंचनं ।
ये ब्राह्मणः प्रकुर्वन्ति वृषलास्ते न संशयः ॥ १६५

कृपि वाणिज्य ढोंरा को राखवो राज की सेवा ममत्व परिणाम होय जे ब्राह्म येती वस्तां करै ते संशय रहित मूढ जाननां ॥१६५॥

यद्वत्काष्ठ मयो हस्ती यद्वच्चर्म्म मयो मृगः ।
ब्राह्मणस्तु क्रिया हीनस्त्रयस्ते नाम धारकाः ॥ १६६

जैसै लड़का को हाथी नाम धारक होय। जैसै चामड़ा को मृगनाम धारक होय तैसै ही क्रिया हीन ब्राह्मण नाम धारक ही जाणनां ॥१६६॥

अव्रतानां कुशीलानां जाति मात्रेण जीविनाम् ।
... ... ब्रह्मत्वं नोप जायते ॥ १६७

व्रत रहित अव्रति कूं जाति का नाम करि आजीवका करै है ब्राह्मण पणो न होय ॥१६७॥

ये स्त्री वंश गता नित्यं विश्वासो पहताश्चये ।
ये स्त्री पाद रजस्पृष्टः नेपि शूद्रा युधिष्ठिर ॥ १६८

जे ब्राह्मण होय करि स्त्री के आधीन होय और जे विश्वासघात करै है और जे स्त्रियां के पग करि रज कूं स्पर्श करै हैं तिन ब्राह्मण कूं शूद्र जाणनां हे युधिष्ठिर ॥१६८॥

हल कर्षण कर्मादि यस्य विप्रस्य वर्द्धते ।
नहिस ब्राह्मणः प्रोक्तः सर्वे शूद्रा युधिष्ठिर ॥ १६९

हल कर्षण को कर्म जा ब्राह्मण के वधै है सो ब्राह्मण नहीं कहिए। सारा ही प्रवर्ति शूद्र की है हे युधिष्ठिर ॥१६९॥

हिंसकोऽनृत वादीच चौर्यानु परतश्चयः ।
परदारोऽभिगामीच सर्वे ते पतिता द्विजा ॥ १७०

हिंसक और झूंठ को बोलने हारा परधन को हरन हारा पर स्त्री सेवन हारा ऐसा कर्म का करण हार जे ब्राह्मण ते पतित जाननां ॥१७०॥

स्वाध्याय हीना वृपलाः पर कर्मोप जीविनः ।
आकाश गामिनो नेष्टाः सर्व जातिषु निन्दताः ॥ १७१

स्वाध्याय हीन जे ब्राह्मण ते दुष्ट जाननां। पराई चाकरी करि आ जीवका करैं। ऐसो ब्राह्मण जो आकाश गामिनी विद्या

सहित होय पण सारी जात विषें निंदनीय जानणां ॥१७१॥

गो विक्रयास्तुये विप्रा ज्ञेयास्ते मातृ विक्रयाः।
तेन देवाश्च वेदाश्च विक्रया नात्र संशयः॥ १७२

गाय के वेचन हारा जो ब्राह्मण है तिन कुं माता का वेचन हारा जाननां। ता ब्राह्मण ने देवता और वेद सारा ही वेच्या यामें संदेह नहीं ॥१७२॥

भुक्तदाराः सदाचारा भुक्त भोगा जितेन्द्रियाः।
जायन्ते गुरवो नित्यं सर्व भूता भयप्रदाः॥ १७३

त्यागी है स्त्री जाने भला है आचार जाकौ भोग भुक्ताकरि त्याग दिया है। जीती हैं इंद्रिय जाने। ऐसा गुरु होय है। नित्य ही सारा जीवा को भय दूरी करण हारा ॥१७३॥

अधीते चतुरो वेदान् सांगोपांगान् सवृतिकान्।
शूद्रात्प्रति ग्रहं कृत्वा खरो भवति ब्राह्मणः॥ १७४

पाठ करै चौर वेदां को अंग उप अंग सहित वृत सहित और जो शूद्र का घर को दान ले सो ब्राह्मण खर होय ॥१७४॥

खरो द्वादश जन्मानि षट् जन्मा निच शूकरः।
श्वानः ससति जन्मानी त्ये कम् तुरत्रनुव्रतम्॥ १७५

बारा जन्म तो गर्दभ का धरै और साठ जन्म शूकर का धरे, सत्तर जन्म कुत्ता का धरे या प्रकार मनो ऋषीश्वर ने कह्यो ॥१७५॥

अहिंसा सत्यमस्तेयां ब्रह्मचर्या परिग्रही।
काम क्रोध निवृत्तस्तु ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥ १७६

दया सांचा वचन चोरी न करनो शील व्रत परिग्रही मानवा परिग्रह त्यागी विषय और क्रोध सुं निवृत्त ऐसा जो है ताकूं हे युधिष्ठिर ब्राह्मण कहनो ॥१७६॥

सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेन्द्रिय निग्रहः ।
सर्व भूत दया नास्ति एतत् चांडाल लक्षणम् ॥ १७७

सत्य नहीं तप नहीं इन्द्रिया को निग्रह नहीं छै काय कूं रक्षा नहीं ताकूं इन लक्षण करि चांडाल कहीजे ॥१७७॥

चतुर्वेदो पियो भूत्वा चंड कर्म समाचरेत् ।
चांडालः सतु विज्ञेयो नवेदस्तत्रकारणम् ॥ १७८

चार वेद पढ़ि करि के जो पन नीच तहां करै सो चांडाल जानिए । कर्मन कूं वेद को कारण नहीं ॥१७८॥

वर्द्धकी सेवकाश्चैव नक्षत्र तिथि सूचकाः ।
सर्वे शूद्र समा विप्रा मनुना परि कीर्तिताः ॥ १७९

कृष्ण का करन हार सेवा करन हार फेर नक्षत्र तिथि का करन हार ये सर्व ही शूद्र समान जाननां यह मनू ने कह्या है ॥१७६॥

राज प्रतिग्रह धारिणां ब्राह्मणानां युधिष्ठिर ।
पचता मिव बीजानां पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १८०

राजा प्रतिग्रह लेकर भस्म कियो है ब्रह्म वीर्य जिनने ऐसा जो ब्राह्मण तिनकूं हे युधिष्ठिर जैसें बल्या बीज ऊंगे नहीं तैसे ब्राह्मण को फेर दूसरी वार ब्राह्मण पणो न होय ॥१८०॥

इति भारते शांति पर्वणि ब्राह्मणधिकार ।

शृङ्गार मदना स्वादं यस्मात्स्नानं प्रकीर्तितम् ।
तस्मात्स्नानं परित्यक्तं नैष्टिक ब्रह्मचारिभिः ॥ १८१

शरीर की शोभा और काम का उपजावन द्वार है ऐसो स्नान जा कारण कह्यौ। ता कारण स्नान करणो नहीं नैष्ठिक ब्रह्मचारी है जिनको ॥१८१॥

एक रात्रौ व्रतस्यापि या गति ब्रह्मचारिणः ।
तस्या जिह्वा सहस्रेण वक्तुं शक्या युधिष्ठिर ॥ १८२

एक रात्रि ब्रह्मचर्य वृत पाले ता ब्रह्मचारी कों जो गति होय ताकी प्रशंशा सहस्र जीभ करि कहया को समर्थ न होय ॥१८२॥

नैष्टिकं ब्रह्मचर्यंतु येचरन्ति मुनीश्वराः ।
देवा नाम पिते पूज्याः पवित्रास्ते सुवर्णवत् ॥ १८३

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य वृतो को जे मुनीश्वर आचरण करैं हैं ते देवता न करि पुजनीक हैं। जैसे सुवर्ण पवित्र है तैसे पवित्र हैं ॥१८३॥

शीलाना मुत्तमं शीलं व्रतानां मुत्तमं व्रतम् ।
ध्याना ना मुत्तमं ध्यानं ब्रह्मचर्यं सुरक्षितम् ॥ १८४

सारा ही आचार विषैं उत्तम आचार है और सारा ही व्रत विषैं उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत है सारा ही ध्यान विषैं ब्रह्मचर्य ध्यान उत्तम है। ब्रह्मचर्य की रक्षा है सो निश्चय सब व्यवहार उत्तम जाननी ॥१८४॥

पुत्रदार कुटुम्बेषु शक्ताः दृश्यन्ते जन्तवः ।
सरः पं कार्णसि मग्ना जीर्णावन गजाइव ॥ १८५

पुत्र कलत्र कुटंब के विषैं आशक्त हुवा जीव कष्ट पावै है। ताल का कादव विषैं गच्या जीर्ण वनमांहि का हाथी जैसै कष्ट पावै ॥१८५॥

क्रोधस्ताप करश्चापं सर्वस्यो द्वेग कारकः ।
क्रोधः वैरानु जनकः क्रोधश्च सुगति हन्ता ॥ १८६

क्रोध करि आताप होय साग ही जीवां को उद्वेग करै है सो वैर उपजावन हारा है क्रोध है सुगति का हरनहारा है ॥१८६॥

क्रोधो मूल मनर्थानां क्रोधः संसार वर्द्धकः ।
धर्म क्षय करः क्रोधः तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत् ॥ १८७

क्रोध है सो अनर्थ को मूल है। क्रोध है सो संसार का वढ़ावन हारा है क्रोध धर्म को क्षय करण हारा है। ताते क्रोध को वर्जवो योग है ॥१८७॥

सशूरः सात्विको विद्वान् तपस्वीच जितेन्द्रियः।
येन च क्षांति खड्गेन क्रोधशत्रुर्निपातितः ॥ १८८

सोही सूर सोही सात्यिक है सोही पडित है सोही तपस्वी है सोही जितेंद्रिय है जाने या क्षमा खड्ग करि क्रोध वैरी मारो है ॥१८८॥

यस्य क्षांति मयं शस्त्रं क्रोधाग्ने रूप नाशनं ।
नित्य मेव जयः तस्य शत्रूणा मुदयं कुतः ॥ १८९

जाके क्षमा मय शस्त्र है। क्रोध रूपी अग्नि को नाश करण हार ताकी सदा ही जय होय। ताकूं शत्रू को उपजवो कहां सूं होय ॥१८६॥

क्षमा गुणान् प्रवक्ष्यामि संक्षेपेणतु श्रूयतां ।
धर्मार्थ काम मोक्षाणां क्षमा कारण मुच्यते ॥ १९०

क्षमा का गुण कहूं हूं संक्षेप करि तुम सुनो । धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों को कारण क्षमा जाणनो ॥१९०॥

क्षमा शान्तिः क्षमा शस्त्रं क्षमा श्रेयः क्षमा धृतिः ।
क्षमा चित्तश्च वित्तश्च क्षमा रक्षा क्षमा बलं ॥ १९१

क्षमा है सोही शांति है क्षमा ही हथियार जानणां क्षमा कल्याण और क्षमा ही धैर्य है । क्षमा ही चित्त है क्षमा ही वित्त है अर्थात द्रव्य है क्षमा शरीर की रक्षा है । क्षमा ही बल है ॥१९१॥

क्षमा नाथः क्षमा त्राता क्षमा माता क्षमा सुहृत ।
क्षमालब्धिः क्षमालक्ष्मीः क्षमाशोभा क्षमाशुभं ॥ १९२

क्षमा ही ठाकुर जाणनो । क्षमा ही रक्षक है । क्षमा ही माता है । क्षमा लाभ है । क्षमा मित्र है क्षमा लक्ष्मी है । क्षमा पुरुष की शोभा है । क्षमा ही पुरुष कल्याण कर है ॥१९२॥

क्षमा श्लाघ्या क्षमा रक्षा क्षमा कीर्तिः क्षमा यशः ।
क्षमा सत्यश्च शौचं च क्षमा तेजः क्षमा रतिः ॥ १९३

क्षमा ही प्रशंसनीक है क्षमा आचार है । क्षमा कीर्ति है तथा जस है क्षमा सत्य है क्षमा शौच्य है क्षमा ही तेज है क्षमाही रत्न है ॥१९३॥

क्षमा श्रेयः क्षमा पूजा क्षमा शय्या समाहितः ।
क्षमा दानं पवित्रंच क्षमा मांगल्य मुत्तमं ॥ १९४

क्षमा कल्याण है। क्षमा पूजनीक है क्षमा मुक्त ज्ञान है।
क्षमा हित है क्षमा दान है। पवित्र क्षमा उत्तम मंगल है ॥१६४॥

एक पक्षे क्षमा दोषो द्वितीयो नोप लभ्यते।
यदेनं क्षमया युक्तं अशक्तं मन्यते जनैः ॥ १९५

एक बात को क्षमा विषै दोष है और दूसरो कोई दोष नहीं जो यह क्षमा करि संयुग पुरुष कूं असमर्थ कहै है ॥१६५॥

क्षांति तुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परमं सुखं।
न मैत्री सदृशं दानं नास्ति धर्मो दया समः ॥ १९६

क्षमा सदृश्य तप नहीं संतोष समान परम सुख नहीं मैत्री भाव सदृश्य दान नहीं दया समान धर्म नहीं ॥१६६॥

काम क्रोधेन सहितं किं मरण्य करिष्यति ।
अथवा निर्जिता वेतौ किं मरण्यं करिष्यति ॥ १९७

विषय और क्रोध इन दोनों सहित पुरुष को वनवास कहा करै और काम क्रोध जीत्या जिसने ताकूं पुनि वनवास कहा करैगा ॥१६७॥

सकषायस्य चितस्य कषायैः किं प्रयोजनं ।
अथवा निष्कषा यत्वं कषायैः किं प्रयोजनं ॥ १९८

- जाको चित्र कषाय सहित है ताकूं कषाय करि कहा प्रयोजन है ॥१६८॥

किं मरण्य मदां तस्य दांत स्य च किमाश्रयः ।
यत्र यत्र वसेद्दांत, स्तदरण्यं तदाश्रयं ॥ १९९

जिसने अपनी इंद्रिय समें नहीं राखी ताको वनवास हो और जिसने अपनी इंद्रिय जीती ताकूं घर वास कहां जहां जहां जितेंद्रिय वसे सोई वन सोई आश्रम जाणनो ॥१९९॥

सत्याधारस्तपस्तैलं दमोवर्तिः क्षमा शिखा ।
... ... दीपो यत्नेन धार्यते ॥ २००

सत्य रूपी गारि को दिया है ता विषैं तप रूप विषें तेल है और मद रूपी वार्त है क्षमा रूपी शिखा है पाप रूपी अंधकार विषैं प्रवेश करै ऐसा दीपक रत्न सुरूपी ये तातें पाप रूपी अंधकार दूर होय ॥२००॥

दीपो ज्ञान मयो यस्य वर्तिर्यस्य तपो मयी ।
ज्वलते शील तैलेन तमः तस्य न जायते ॥ २०१

दीपक ज्ञान मय होय वाती जाके तप मयी होय प्रज्वले शील रूपी तेल करि ताको अंधकार कहीं न होय ॥२०१॥

सुखेन दान्तः श्वपिति सुखश्च प्रति बुध्यते ।
समं सर्वेषु भूतेषु मनोयस्य प्रसीदति ॥ २०२

सुख कारी सोहे इन्द्रो कोंद मनहार और सुख कारी जगै है समभाव सारा ही जीवा विषैं जाको मन प्रसन्न होय ॥२०२॥

यथाधीते षडंगानि वेदांगांश्चतुरो द्विजः ।
दमेन समही नस्तु न पूजां किं चि दर्हति ॥ २०३

जैसै छह अंग पढ़े और चाखे दपढ़ो । ऐसा जो ब्राह्मण पांच इन्द्री जीत करि सम भाव करि रहित है सो ब्राह्मण पूजनीक पद को योग्य न होय ॥२०३॥

करोति विरतिं धन्यो यः सदा निशि भोजनात् ।
सोर्द्धं पुरुषायुषस्य ··· सुपोषितः ॥ २०४

त्याग करै सो धन्य है। सदा ही रात्रि भोजन कूं ता पुरुष को आधी और बल का निश्चय करि उपवास जाणनां ॥२०४॥

निग्रहीतेन्द्रिय द्वारो यत्रोपविशते मुनिः ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नान्यत्र पुष्क रञ्जनाः ॥ २०५

वश किया है इंद्रिय द्वार जानै ऐसो जहां वैठै मुनीश्वर तहां तहां कुरुक्षेत्र है और तहां ही पुष्कर है और जगे नहीं है ॥२०५॥

सर्वेषामेव शौचानो मर्थ शौचं विशेषतः ।
योर्थेषु शुचिः प्राज्ञः नर्मदा शुचि भिः शुचि ॥ २०६

सारा ही शौच्र विषैं न्याय मार्ग करि लक्ष्मी लेनो यह शौच भी शौच है विशेष नर्मदा स्नान करि पवित्र जो पुरुष तासे पण पवित्र जाणनो ॥२०६॥

यः कुर्यात् सर्व कर्माणि वस्त्र पूतेन वारिणा ।
समुनिः समहा साधुः सयोगी समहा व्रती ॥ २०७

जो करे सारा ही काम वस्त्र करि पानी छानि के सोई मुनि सोई साधु सोई योगी सोई महा व्रती ॥२०७॥

चित्तं रागादिभिर्दुष्टं अलीक वचनैर्मुखं ।
जीव घातादिभिः कायस्तस्य गङ्गापरांमुखी ॥ २०८

जी को चित्त राग द्वेषादि करि व्याप्त है और असत्य

वचन करि मुख व्याप्त है। जीव घात करि काया अपवित्र है जाकी सो वापुरुष ते गगा विमुख है ॥२०८॥

चित्तं समाधिभिः शुद्धं वदनं सत्य भाषणैः।
ब्रह्मचर्यादि भिः कायः शुद्धो गङ्गा विनापिसः ॥ २०९

जाके मन संतोषादि करि शुद्ध है मुख जाको सांच बोलवा करि पवित्र है ब्रह्मचर्यादि करि काया जिनकी निर्मल है सो पुरुष गंगा स्नान विना किया पण शुद्ध है मुख जाको सांच बोलवा करि पवित्र है ब्रह्मचर्यादि करि काया जिनकी निर्मल है जो पुरुष गंगा स्नान विना किया पण शुद्ध हो ॥२०६॥

इदं तीर्थं मिदं तीर्थं ये भ्रमन्ति तपो भ्रष्टाः।
येषां नाम्नापि तीर्थं ही तेषां तीर्थं निरर्थकं ॥ २१०

यो तीर्थ यहां है यो तीर्थ यहां है। जे तप भृष्ट भ्रमत फिरै है। ते तप विना नाम मात्र तीर्थ भ्रमे हैं तिनको तीर्थ वृथा है ॥२१०॥

अशुचिः पाप कर्मायः शुद्ध कर्मा शुचिर्भवेत्।
तस्मात्कर्मात्मकं शौच मन्यत् शौचं निरर्थकं ॥ २११

अशुचि जाको कहिये जे पाप कर्म करें शुद्ध कर्म का करण हारा पवित्र कहिए तातें कर्मात्मक शौच जाणनौ और स्नानादिक शौच वृथा है ॥२११॥

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्व जन्तषु।
तस्य ज्ञानञ्च मोक्षंच किं जटा भस्म चीवरैः ॥ २१२

जाको चित्त सजल हुवो दया करि सारा ही जीवा विषैं

ताही को ज्ञान और मोक्ष जाननो । जटा धारण भस्म विलेपन करि कह्या ॥२१२॥

अग्निहोतृ वने वासः स्वाध्यायो दान सत्क्रिया ।
तान्ये तानि मिथ्यास्यात्पदि भावो न निर्मलः ॥ २१३

अग्नि होता और वन विपे रहनो । अनेक दान देना शास्त्र पढ़ना । असत क्रिया को न करना आदि पहिला कह्या जो मिथ्या है । जो भाव निर्मल नहीं होय तो ॥२१३॥

वनेपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेपि पंचेन्द्रिय निग्रहस्तपः ।
अकुलिते कर्मणियः प्रवर्ततेनिवृत्त रागस्य गृहंतपोवनं ॥ २१४

वन विपै पुन रहै संते रागी पुरुप के दोप उत्पन्न होय है गृह विपै वसता पुनि पंच इंद्रिय को निग्रह करै है पंच इंद्री वस करै तिनकूं तपस्वी जानणां भला मार्ग विपैं जो प्रवर्तन है तिन कूं राग रहित पुरुप कूं घर भी तपो वन सदृश्य है ॥२१४॥

न शब्द साराभ्यस्तस्य मोक्षो न चैव रम्या वसति प्रियस्य ।
न भोजना छादनतत्यरस्य न लोक चित्तग्रहणेरतस्य ॥ २१५

व्याकरण प्रमुख अनेक शास्त्र का पढ़नहारा कूं मोक्ष नहीं । फेर अपूर्व मंदिर वांछन हार कूं मोक्ष नहीं सर्व भोजन और वस्त्रादि विपैं तत्पर ऐसा पुरुप कूं मोक्ष नहीं और मनुष्यं के चित्त हरवा के विपें तत्पर है । ताकूं भी मोक्ष नहीं ॥२१५॥

यदान् कुरते पापं सर्व भूतेपु दारुणं ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २१६

जद पाप करने नहीं । सर्व जीवां कूं भयदायिक काया

करि वचन करि । ताके ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होय ॥२१६॥

यदा सर्वा नृतं त्यक्तं मृपा वादादि वर्जितं ।
अनवद्यश्च भापश्च ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २१७

जा समें सर्व झूठ वोलवो त्यागे असत्य वचन करि रहित पाप रहित वचन भापे । तव ब्रह्म ज्ञान की उत्पत्ति होय ॥२१७॥

अश्वमेध सहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम् ।
अश्वमेध सहस्त्रेपु सत्यमेव विवर्द्धते ॥ २१८

हजार अश्व मेध जज्ञ एक तरफ और सत्य वचन वोलवो एक तरफ सहस्र अश्व मेध जज्ञ करे तो सत्य वचन की महिमा अधिक ही है ॥२१८॥

पर द्रव्यं यदा दृष्ट्वा व्याकुलेत्सर्प वत्तथा ।
धर्म कर्माणि गृहणान्ति ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २१९

जव पर द्रव्य देख कर सर्प के सदृश भय माने धर्म के अर्थ जे पुरुप परद्रव्य ग्रहण करे ॥२१९॥

यदा सर्वं पर द्रव्यं वहिर्वा यदि वा ग्रहे ।
अदत्तं नैव गृहणन्ति ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २२०

जव सर्व ही परद्रव्य वाहर अथवा घर विपैं अदत्त को ग्रहण करै तव ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होय ॥२२०॥

दैवं मानुपं तैरश्च मैथुनं वर्जयेद्यदा ।
कामराग विमुक्तस्य ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २२१

देव मनुष्य तिर्यंच विपैं मैथुन को वर्जन करै तव विपय राग करि रहित पुरुप को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होय ॥२२१॥

यदा मर्व परित्यज्य निसंगो निष्परिग्रहः ।
निश्चितश्च चरेद्धर्मं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २२२

जब सर्व पर त्याग करि निसंग होय। परिग्रह रहित होय चिंता रहित होय धर्म आचरण करै तब ब्रह्म की प्राप्ति होय ॥२२२॥

मुण्डनात् श्रमणोनैव सस्कारात् ब्राह्मणोन च ।
मुनिः वन वा सित्वात् वल कलाच्च तापसः ॥ २२३

मस्तक मंडन किये ते श्रवण जती न होय और जनेउ दीयां ब्राह्मण न होय वन वसे मुनि न होय और भोज पत्रादि पहिरै तामस न होय ॥२२३॥

जीवाडैः मधु सम्भूतं म्लेच्छोच्छिष्टं न संशयः ।
वर्जनीयं सदा विप्रैः परलोकाभि कांक्षिभिः ॥ २२४

जीवां की अंडाकरि मधु उपजै है और म्लेच्छ उच्छिष्ट है। यामें संशय नहीं त्यागनो योग्य है। ब्राह्मण करि परिलोक में सुख चाहै तिन करि ॥२२४॥

पञ्च लक्षण संपूर्णं ... भवेद्विजः ।
महांतं ब्राह्मणं मन्ये शेषा शूद्रा युधिष्ठिर ॥ २२५

पांच लक्षण करि संयुक्त ऐसो ब्राह्मण होयसो महत ब्राह्मण जानना और बाकी शूद्र सदृश हे युधिष्ठिर ॥२२५॥

येषां जपस्तपः शौचं क्षांतिर्मुक्तिर्दया समः ।
... ... -ब्रह्म स्थानं सचाप्यते ॥ २२६

जिनके तप शौच्य होय। क्षमा निर्लोभ दया समता

तिनको 'आयुर्बल क्षय संतते। मोक्ष स्थान की प्राप्ति होय ॥२२६॥

योनि शुद्धाः क्रिया शुद्धाः शील शुद्धाश्चये द्विजाः।
पट कर्म निरताश्चैव द्विजाः पद प्रभाविकाः ॥ २२७

योनि शुद्ध और क्रिया शुद्ध शील शुद्ध ऐसा जो ब्राह्मण पट् कर्म विषैं तत्पर ते ब्रह्म-पद का प्रभाविक-होय ॥२२७॥

नव नीतं यथा दध्नि चन्दनं मलयादिकं।
औषधेभ्यो हितं यद्वत् देवे आरण्यकं तथा ॥ २२८

माखन ते दही माही सूं सारे ही चंदन जैसे मलिया चल जैसे देव विषै आरएयक ऋपो हैं ॥२२८॥

समतातपःसन्तोषःसंयमं चारित्रमार्जवंक्षमा धृतिश्च श्रद्धाच।
अहिंसासत्यमेवचइत्येतद्दशविधंकर्ममुनिभिःपरिकीर्तितं ॥२२९

समता भाव संतोष संयम चारित्र सरल पनो क्षमा धीर्य मन स्थिर तत्व विषै श्रद्धा दया भाव दश प्रकार कर्म कहिए ॥२२९॥ कर्म शब्देन धर्म।

ब्रह्मचर्य तपो युक्ताः समलोष्ठाश्म कांचनाः।
सर्वे भूत दया युक्ता ब्राह्मणाः सर्व जातिषु ॥ २३०

कर्म शब्द करि धर्म जाणनो ब्रह्मचर्य और तप करि युक्त पाषाण सुवर्ण समान है जिनके सारा ही जीवां की दया विषैं युक्त है ऐसा लक्षण युक्त ब्राह्मण सारी जाति विषैं जाणनां ॥२३०॥

शूरा भटाश्च विक्रांता बह्वारम्भ परिग्रहा।
मान संग्राम शीलाश्च क्षत्रियाः सर्व जातिषु ॥ २३१

सुभट पराक्रम वंत तेज वंत घणो आरंभ घणो परिग्र-
मान और संग्राम को है स्वभाव जिनको ऐसा लक्षण है सर्व
जाति विषे क्षत्रिय को ॥२३१॥

पंडिताः कुलजा दक्षा कला कौशल जीविनः ।
कृषि कर्म कराश्चैव वैश्याश्च सर्व जातिषु ॥ २३२

प्रवीन भला कुल विषे उपज्या चतुर बुद्धि की कुशलता
कारि है आजीवका जिनकी और फेर कृपाण पणो करे।
ऐसा लक्षण युक्त सर्व जाति विषैं वैश्य जाणनो ॥२३२॥

शुश्रूषण परा मूर्खा नीच कर्मोप जीविनः ।
परोपकार भृतास्ते शूद्रास्ते सर्व जातिषु ॥ २३३

सेवा करवा विषैं तत्पर और मूर्ख और नीच कर्म आदि
आजीवका करे और दूसरा का किंकर भूत रहे ऐसा सारा
ही जाति विषैं शूद्र जाणनो ॥२३३॥

क्रूराश्चण्डाश्च पापाश्च पर द्रव्यं परि हारिणः ।
निर्दयाः सर्व सत्त्वेषु चांडाला सर्व जातिषु ॥ २३४

दुष्ट कठिन परिणाम और पापी और परद्रव्य का हरन
हार निर्दय परिणाम सारा जीव विषैं ऐसा लक्षण करि युक्त
सारो जाति विषैं चांडाल जाणनां ॥२३४॥

के ब्राह्मण गुणः प्रोक्तः किन्तु ब्राह्मण लक्षणं ।
एतदिच्छा मिविज्ञातुं तत्सर्वं कथय प्रभो ॥ २३५

ब्राह्मण विषै कौन गुण है फेर ब्राह्मण का लक्षण कह्या
है यह जानने की इच्छा करता हूं ते सघला ही भाव मुझ से
कहो हे प्रभो ॥२३५॥

यन्मां पृतुछसि कौंतेय ब्राह्मणानांतु लक्षणं ।
श्रुणुत्वश्च महावाहो महा ज्ञानं सहेतुकं ॥ २३६

जो मोकूं पूछे है हे युधिष्ठिर ब्राह्मण लक्षण सो तु सुनि है महा ज्ञान है सारो ही हेतु कहूं हूं ॥२३६॥

क्षांत्यादिभिर्गुणैर्युक्तोन्यस्तदण्डो निर्मिपः ।
नहिनास्ति सर्व भूतानि प्रोक्तं ब्राह्मण लक्षणं ॥ २३७

देख क्षमा ही गुण युक्त मन वचन काय का दंड करि रहित निर्लोभी सारा जीवां को हने नहीं ये ब्राह्मण का लक्षण है ॥२३७॥

देवानांच मनुष्येषु तिर्यग्योनि गतेषुच ।
मैथुनं येन सेवन्ते तद्धि ब्राह्मण लक्षणं ॥ २३८

देव नाम मनुष्य विषैं और तर्यंच योनि विषैं मैथुन जेन सेवै तेई ब्राह्मण का लक्षण जानना ॥२३८॥

क्षेत्रं यन्त्रं प्रहरण वधूलांगलंगोः तुरंगो धेनुः
द्रविण तरवो हर्म्यं मन्यच्च चित्रं यत्सारं भञ्जन
यति मनो रत्न मालिन्य कुँर्वस्तादृश दानम्
सुगम कृतये नैव देयं कदाचित् ॥ २३९

खेती निमित्त भूमि कुवो हथियार स्त्री हल वृषभ घोड़ा गाय सुगंध अबीर आदि वृक्ष और पण आश्चर्य कारी वस्तु जो आरंभ उपजावे मन रूपी रत्न को मलिन करै ऐसो दान युक्त के कारण कदाचित भी देनो नहीं ॥२३९॥

सुबीज मुखरे उसमुत्पन्नं नैवतु रोहितं ।
तद्विदानं कुपात्रेषु दन्तं भवति निष्फलं ॥ २४०

जैसै भलो बीज ऊखर भूमि विषैं बोयो ऊंगे नहीं तैसै ही द्रव्य कुपात्र विषैं दियो दान निष्फल होय ॥२४०॥

अपात्रे चापियद्दानं दहत्या सप्तमं कुलं ।
हव्यं देवान ग्रहणन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ २४१

अपात्र कूं दान दियो संते सात कुल पर्यंत पुण्य को भस्म करै ताको हवनादि देवता ग्रहण न करैं पिंडदान पितर माता पिता न ग्रहण करैं ॥२४१॥

यथा मम प्रियोत्यात्मा सुख मिच्छति सर्वदा ।
सर्वेषामेव जीवानां नित्य मेव सुखं प्रियं ॥ २४२

जैसै म्हारो आत्मा मोकूं प्रिय है और सदा ही सुख इच्छो हो तैसैं ही सारा जीवा कों नित्य ही सुख प्यारो है ॥२४२॥

पृथ्वीं रत्न सम्पूर्णा ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
एकस्य जीवितं दद्यात्त्फलेन न संभवेत् ॥ २४३

पृथ्वी सारो रत्न से भरी ब्राह्मण को पुण्य करैं और एक जीव कूं जीव दान दे तोभी जीव दान का फल अधिक भी होय ॥२४३॥

अस्थि वसति रुद्रश्च मांसे वसति केशवः ।
शुक्रे वसति ब्रह्मा च तस्मन्-मासं न भक्षयेत् ॥ २४४

हाड़ के विषें रुद्र वसे हैं। मांस के विषैं केशव वसै हैं। वीर्य विषैं ब्रह्मा वसै हैं। तासें मांस भक्षण करण नहीं ॥२४४॥

निस्कांच नस्या मुक्तस्य दीक्षितस्य तपस्विनः।
ब्रह्म युक्तस्य कौंतेय भैक्षुक व्रतचारिणः ॥ २४५

धन धान्यादि परिग्रह रहित सर्व संग कों परि त्याग करण हार दीक्षा करि सहित तपस्वी ब्रह्मचार करि संयुक्त हैं युधिष्ठिर भिक्षुक ब्रह्मचारी ॥२४५॥

अदीक्षि तस्य च मुक्तंस्य भैक्षं भुञ्जति योद्विजः।
आत्मानं नरकं नयति दाता रंचन संशयः ॥ २४६

दिक्षा करि रहित परिग्रह सहित भिक्षा माँग करि भोजन करै जो ब्राह्म सों अपनी आत्मा कूं नरक विषैं थापे और दातार कूं पण यामें संदेह नहीं ॥२४६॥

योददाति मधुश्राद्धे मोहितो धर्म लिप्सया।
ते यान्ति नरकं घोरं खाद कैः सहलंपटैः ॥ २४७

जो मधु श्राद्ध विषै दे अज्ञान युक्त धर्म की वांछा करि जो पुरुष नरक विषै जाय पान हार लंपट तिन करि सहित ॥२४७॥

नीलिकाम् वापयेद्यस्तु मूलकं भक्षते तुयः।
नतस्य नरको तारो या वदाहुश्च संप्लवं ॥ २४८

नील को खावे मूला को जो भक्षण करिये ताको नरक में उद्धार न होय। जब लग हायाद्री की प्रवर्ति रहै ॥२४८॥

यस्तु ... मूलकादिक भक्षकः।
अन्त काले समूढात्मा स्मरिष्यति तिमा प्रिये ॥ २४९

जो पुरुष वैंगण कलिंगड़ां मूला आदि भक्षण करै मरण काल विषैं सों पुरुष सुमरण नहीं करै है प्रीति करि ॥२४९॥

मूलकेन समश्वान्नं भुंक्ते यस्तु द्विजाधमः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत् चान्द्रायण शतै रपि ॥ १५०

मूला के साथ जो पुरुष अन्न भोजन करै ताकी शुद्धता न होय सैकड़ां चांद्रायण किया संता पण ॥२५०॥

दन्तोछिष्टं वर्जनीयं पक्क विल्व फलं तथा ।
दिनेपितं दधि चैव मेघनादस्य नालिकां ॥ २५१

दूसरा को उच्छिष्ट त्यागनो पाको वील फल सोला प्रहर उपरांत दही इस लोक ··· ··· ··· ॥२५१॥ प्रभास पुराणे ।

येन कामादि संरभान द्वेपा धर्मे मुत व्रजेत् ।
यथोक्त कारी सौम्यश्च ससु मृत्युश्च विश्रते ॥ २५२

जो धर्म करि कामादिक आरंभ उपजे ता धर्म कूं द्वेप करि त्यजिये जैसो शास्त्र विषैं कह्यो तैसो करे सतोप परिणाम होय सो पुरुष सुख मृत्यु पावे ॥२५२॥

लूतास्थितेतु गलितेये विन्दौ संति जन्तवः ।
सूक्ष्म भ्रमर समानास्ते नैव मान्ति त्रिविष्टये ॥ २५३

मकड़ी का जाला विषै तेता जल विंदू रहै ता वूंद विषैं एता जीव हैं जो सूक्ष्म जीव भ्रमर समान काया तोभी त्रिलोक विषै नहीं ॥२५३॥

कुसुंभ कुंकुमा भावस्तु निश्चितः सूक्ष्म जन्तुभिः ।
सुदृढे नापि वस्त्रेणा शक्यं शोध यितुं जलं ॥ २५४

कुसुंभ के शरीर के रंग का जल सदृशे सूक्ष्म जंतुभिः करे भरयो जल है ताकूं वहुत दृष्ट वस्त्रकरि के पन शोध्यो न

जाय तोभी अपन कूं खर्च माफिक वरतनो जो जतन पूर्वक छानि करि वशेवरनो ॥२५४॥

इति महा भारते त्रय अधिकार ।

नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनं ।
दान वा विहित रात्रौ भोजनन्तु विशेषतः ॥ २५५

होम और स्नान रात्रि में योग्य नहीं श्राद्ध और देवता पूजा और दान देनो एती वस्तु रात्रि समय भोजन अयोग्य है ॥२५५॥

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य नदात्मानं सृजाम्यहं ॥ २५६

जद जद धर्म की ग्लानि होय है भारत तहां धर्म को सन्मान होय ताके कारण में आत्मा कूं उपजाऊं ॥२५६॥

वृन्ता कश्चक लिंगञ्च दग्ध मन्नं मसूरिकां ।
उदरे यस्य तिष्ठन्ति तस्य दूर तरो हरिः ॥ २५७

वेंगण कलिंगड़ो वल्यो अन्न मसूर जाका उदर विषें तिष्टै हैं तासो हरि दूरि रहै है ॥२५७॥

दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते वलं ।
सम्भोगात् हरते वीर्यं नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ॥ २५८

देखवा करि चित्त हर्यो जाय स्पर्शन किया वल हरे संगम किया वीर्य हरैं ते नारी प्रत्यक्ष पणो राक्षसी है ॥२५८॥

यस्य स्त्री तस्य सम्भोगा न स्त्री कस्य भोगभूः ।
स्त्रियंत्यक्त्वाजगत्कं जगत्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ २५९

जाके स्त्री होय ताकूं भोगी कहिए। स्त्री रहित ब्रह्मचारी कूं भोगी न कहिए। स्त्री कूं जाने तजी ताने जगत तज्यो। जगत को तजे सुखी होय ॥२५९॥ भारत पुराणे ये श्लोक भारत का है।

तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ट पाषाण मृन्मये।
प्रतिमा दौ मनो येषां ते नरा मूढ़ चेतसः॥ २६०

जल रूपी तीर्थ विषैं पशु होम होय ता यज्ञ विषै काष्ट पाषाण माटी की प्रतिमा विषै जिन पुरुषां को मन है तिनको मूढ़ बुद्धि कहिजे ॥२६०॥ गीता सार विषें कहैं हैं।

... ... ॥ २६१

वात कफ पित्त रूप शरीर ता विषैं जाको आत्म बुद्धि होय वा स्त्री पुत्रादिकनि में ममत्व बुद्धि होय भूमि का विकार जो प्रतिमा दिक तिन विषैं पूज्य बुद्धि फेर तीर्थ बुद्धि पाणी विषै होय सो पुरुष तत्व ज्ञानी पुरुष विषैं ऐसा है जैसा तिर्यंच विषैं गर्दभ ॥२६१॥ भागवते दशम स्कंधे ये श्लोक भागवत का दशम स्कंध का है।

सूक्ष्माणि जन्तूनि जलाश्रयाणि जलस्य वर्णाकृति संस्थानि।
तस्माज्जलंजीवदयानिमित्तंनिरग्रन्थशूराःपरिवर्जयंति ॥२६२

सूक्ष्म जीव जल के विषैं रहै हैं फेर जल सदृश्य जल आकार संयुक्त है तासे जलत्व को जीव दया निमित्त निर्ग्रंथ आचार तजै हैं ॥२६२॥ मनुस्मृतौ मनु महाराज कहै हैं।

अष्ट षष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं लभेत्।
श्री आदिनाथ देवस्य सरणेनापि तत्फलं ॥ २६३

अङ्सट तीर्थ विषैं यात्रा किये जो फल होय सो फल श्री ऋषभदेव के सुमरण से होय है तथा भागवत में कह्यो कि अपुत्र गतिर्नास्ति ॥२६३॥

पुनाम नरक गति कूं प्राप्त न करे सो पुत्र कहिए। जिस कूं पुत्र नहीं उसकूं गति नहीं सो या जीव कूं अनंत काल भया अनंत वार पुत्र भए परन्तु चारि गति में भ्रमण करता किया सो च्यारु गति कौनसो, नरक, तिर्यंच, देव, मनुष्य, इन चारि गति में फिरया। परन्तु या जीव कूं पंचम गति जो मोक्ष सो गति नहीं भई और पुत्र तो अनंत वार हुये यातें वे कहना कुछ यथा योग्य नहीं परन्तु अब उत्प्रेक्षा वचन अलंकार करि अपेक्षा सूं कथंचित अपुत्रस्य गतिर्नास्ति ये सत्य है सो कौण अपेक्षा या सत्य मान्या सो अब कहै हैं ये चेतन पुरुष याकूं विवेक नामा पुत्र हुए विना पंचम गति जो मोक्ष सो कदापि न होय सो अनादि काल से इस चेतन पुरुष कुमति के मनि के साथ पुरुषार्थ पणा करै सो कुमति कूं जन्म जन्मांतर परजाय में पुत्र भए सो असंख्यात भए जैसे शूकर बहुत पुत्र जणै पण क्या कारज कारि भए जैसै जगत में बहुत पुत्र जणती है परन्तु वे पुत्र कुछ माता पिता कूं निश्चय करि के पंचम गति कूं नहीं प्राप्त करैगें और तीर्थंकर की माता एक तीर्थंकर ही पुत्र जणै है फेर दूसरा पुत्र माता कूं कभी नहीं होय वे नेम है सो यो तीर्थंकर पुत्र हुवा सो माता पिता कूं निश्चय करि के पंचम गति जो मोक्ष सो होवैगो तैसै ये चेतन पुरुष ने सुमति के साथ आलम जो भया अर पुरुषार्थ पणा ताके योग से सुमति के पुत्र न भया। अब जद ये चेतन पुरुष जद पुरुषार्थ करै जद सुमति कूं एक ही विवेक नामा पुत्र होवे जद चेतन की गति होय। जैसै तीर्थंकर होतैं माता

पिता की पंचम गति होय और धर्म कारज में तथा कर्म-कारज मे तथा क्रिया कांड में सर्व ही कारज में विवेक मुख्य है। विवेक सहित कारज में थोड़ा ही धन लगावे तो जस आवै। विवेक बिना घनो खरचे तो भी अपयस आवै। याते सर्व काम में विवेक मुख्य है सो या अपेक्षा किते अपुत्र गतिर्नासी नो संभवे है। सो तो ये अपेक्षा श्याद्वाध साधे सिद्ध होय। एकांत पक्ष वाले की वात खंडित होवै बिना श्याद्वाद लागे बिना सिद्धि न होय और बिना सिद्धि भए प्रयोजन सिद्धि न होय प्रयोजन सिद्धि भए बिना कारज सिद्धि न होय और कारज सिद्धि बिना परिश्रम करना वृथा है। जैसे तेल के अर्थ रेत कूं घाणी में डाल घाणी फेरवोई करै सो उसका तेल अर्थ पूरण न होय परिश्रम खेद कारण वृथा है। तातें पंचम गति जो मोक्ष तैं एकांत पक्ष तैं सिद्धि न होय। स्याद्वाद करि सिद्धि होय। देखो अपुत्रस्य गतिर्नास्ति ये पक्ष स्याद्वाद तै सत्यार्थ भया यामें जैन मत्त का स्याद्वाद कहो या कथंचित कहो ये पक्ष सत्योरथ भया जद एकांत पक्ष असत्यारथ भया यातें जैन मत्त की गाढ़ प्रतीति भई कोई द्रव्य की परीक्षा में उसी जाति का द्रव्य दूसरे पाप जोड़ी से मिलाने में न्यूनाधिक नजर आता है यातें कहे करि कहा विवेक बिना सब विद्या ही पढया निरर्थक है। जैसे विवेक सहित विद्या काम देवै तैसै विवेक बिना पढयो मूर्ख समान है। याको दृष्टांत कहै हैं।

यातें अब दृष्टान्त मैं, फेर कहूं महाराज।
तर्क विचार विवेक बिन, विद्या करै न काज॥ १

एक शङ्कर नामा विप्र था, दूजो माधौ नाम।
प्रथम ज्योतिष बहु पढ़यौ, माधव तर्क निधानं॥ २

दोऊ देशान्तर चालिया, उतन्यास खर तीर ।
तहां नगर की नारी इक, आई भरण कूं नीर ॥ ३

घट भर सिर पर धारियो, चलत भई जब नार ।
पांव खिसल जब गिर पड़ी, फूटो घट निरधार ॥ ४

तब यह खिसयानी भई, दाव विप्र के वान ।
याहि शुभाशुभ कहयौ तब, शङ्कर कहै वखान ॥ ५

तब ज्योतिप विचारि कै, कहत भयो सुचित्त ।
याकौ पति देशान्त में, मरण भयो निश्चित्त ॥ ६

तब माधौ नामा विप्र जो, विवेक तर्क निधान ।
आज आयकै मिलहिगो, तुम निश्चित यह जान ॥ ७

तब ये दोऊ आपस में, करत रहे विवाद ।
नारी तो ठांड़ी भई, सुनती थी सब नाद ॥ ८

भाई मेरी वार्ता, करि कहै अचरज कार ।
यातें विनती करत हों, सो सन्देह निवार ॥ ९

एक कहै पति मृतक है, दूजौ कहि मिल आज ।
ये दो मुझ दुख सुख भयौ, चलौ परीक्षा काज ॥ १०

दोऊ वीर मुझ घर चलौ, देऊं भोजन मनहार ।
जीम करि आराम करौ, सन्ध्या होसी सार ॥ ११

दोऊ में जाकी वात मिल, सो विद्या भण्डार ।
आपस में क्यों झगड़ौ करौ, चार पहर कौ कार ॥ १२

तब दोऊ द्विज चालिया, नारी घर मनोहार ।
परीक्ष्या की उम्मेद धरि, मन में करत विचार ॥ १३

शङ्कर विद्या गरभ ये, निश्चय हरप मझार ।
माधौ तरक विचार में, जीमें दोऊ सुखकार ॥ १४

दिन करि अस्ताचल गयौ, नारी करे विचार ।
अब दुख आये के सुख सुनूं कहा लिखी करतार ॥ १५

इतने में पति आ मिले, नारी हरप न माय ।
शङ्कर कौ मुख ऊतरयौ, माधो सुख नहिं माव ॥ १६

तब शङ्कर हा हाय करि, करत भयो जु पुकार ।
जन्म तक विद्या पढ़यौ, सो भई मूढ़ गंवार ॥ १७

माधौ वह तो न पढ़यौ, सो तो भयो विद्वान ।
ताते अब सब ग्रन्थ कूं, दधि डालूं मन आन ॥ १८

इस मन में पछिताय के, कहै माधौ सो सार ।
तुमरी बात सांची हुई, कौन विद्या मनोहार ॥ १९

तब माधव कहता भया, विद्या तुमारी सांच ।
पण याकूं विवेक विना, रतन किये ज्यों कांच ॥ २०

घट फूट याकौ फल कहयौ, पण कीनों नाहिं विचार ।
पति मरण की बात कहि, सो झूंठ भई दुखकार ॥ २१

मैं विवेक विचारियौ, देखो घट पै जाय ।
जल धारा जल सूं मिली, जाय सरोवर माय ॥ २२

यातें तरक विचारि कें, कहि पति आज आय ।
सो तो मैं निश्चय कही, ईश्वर मोय सहाय ॥ २३

जो घट फूटि धरनि में, छूक जात जहां ताहि ।
पति मरण की खवर मिले, यामें संशय नाहिं ॥ २४

फेर कथा यह कहत हों, सो सुन जो दे कान ।
चतुर होय विचारियो, लीजो सार निशान ॥ २५

सागर नामा विप्र था, सो बड़ा विद्वान ।
दूजा विप्र ब्रह्मदत्त था, विद्या बहुत न जान ॥ २६

तरक विवेकी अति घणा, दोऊ मिले मनु आन ।
आपस में वार्ता करे, तहां आये वनिक एक ठान ॥ २७

एक वस्तु एक हाथ में, पूंछे विप्र मन हार ।
मुझ कर की वस्तु कहो, ज्योतिष करे विचार ॥ २८

वींध्यौ फत्तर जानियो, सागर कहै चितार ।
तुम कर में घट्टी कही, ब्रह्मदत्त मन आन ॥ २९

वींध्या रत्न कहता भया, तरक ज्ञान से लाय ।
वाणिक ने मूंठी खोल के, जब ही दई बताय ॥ ३०

माणिक की मणि छेद की, देखी विस्मित थाय ।
सागर को मूं ऊतरयौ, ब्रह्मदत्त हरपाय ॥ ३१

सागर से कहता भया, सोचत जो मन लाय ।
मैं या विद्या सीख्यौ नहीं, तुम घटि कहि मन भाय ॥ ३२

तब मन में मैं चिन्तई, घड़ी हात नहिं माय ।
यातें विंध्यौ फत्तर, जाण्यो करौ विचार ॥ ३३

छेद सहित में रतन कहयौ, मावे हात मझार ।
अब सागर मन चिन्तवै, विवेक विना नहीं सार ॥ ३४

थोड़ी विद्या भी पढ़यौ, विवेक करे सिरदार ।
विन विवेक कौ नर पशु, याकौ यह निरधार ॥ ३५

वचन का ।

याते विवेक विना किसी वात की सिद्धि नहीं तो विवेक पुत्र विना पंचम गत जो मोक्ष सो कैसे होय याते या वात सिद्धि भई कि विवेक विना पंचम गत जो मोक्ष सो कदापि न होय इतना ही प्रयोजन । अहो जैन के उपासक मम साधर्मी गुणी जन गुण ग्राहक हो देखो । जैन मत की प्रशंसा वातां अन्य मत में भी प्रशंसा योग कही सो देखकर हम भौत प्रसन्न हुये, वड़ी खुशी मानी । जैसे वादी ने कोई वात कही सो वात प्रतिवादी सत्य ऐसे वचन कहे । जदवादी कूं कितना हर्ष होवे जिसका अनुभव विचारो तैसे हमको भी वड़ा हर्ष भया । प्रतिपक्षी जो अन्य मत याने हमारे जैन मत की कारजकारी वातां सो प्रशंसा योग्य कही सो या हर्ष की पूर्णता ग्रन्थन में लिखी न जाय । सो भाई औगुण पर दृष्टी न देतां गुण ग्रहण करना श्रेष्ठ होय याते गुण ग्रहण करना याही वात या जीव की हितकारी है । वस्तु अनन्त धर्म है या कहने में जुदे न रहै याते गुण ग्राही पणौ हितकारी और औगुण ग्राही पणौ अहितकारी जान करि गुण ग्राही रहौ । कथंचित पणा सह याते अवगुण ग्राही और एक गुण ग्राही का दृष्टान्त कहूं हूं सो यथा योग्य समझ लीजो ।

दो पुरुष, एक गुण ग्राही दूसरा औगुण ग्राही ये दोनों किसी कूं चले सो रास्ते में एक आम के झाड़ पर आम बहुत सघन लगा देख्या। सो दोनों की इच्छा आम खाने की भई सो दोनों ने एक भाव से आम पर फत्तर मारे सो सघन फल लगे थे सो दोनों के फत्तर से आम के दो गुच्छे गिर पड़े दोनों के हाथ आये। जद जो गुणग्राही पुरुष था उसने विचारा देखो आम सतपुरुष सारसा और देखो मेरी दुष्टता। मैं उनकूं फत्तर की मारी और देखो ये आम सतपुरुष समान मेरे फत्तर की मार पर निगा नहीं देता। मेरे कूं आम खाने कूं दिया सो गुण ग्राही ने तो ये विचारी और औगुन ग्राही पुरुष था याने विचारी देखो इस आम के झाड़ की दुष्टता। मैं इस दुष्ट कूं फत्तर मारे जद फत्तर की मार सही जद आम खाने कूं दिया याते ये अब फत्तर ही मारने योग्य हैं। ऐसी बात औगुणग्राही ने विचारी। अहो सज्जन पुरुष हो! देखो आम का झाड़ एक, दो दोनों का भाव आम खाने का एक, और दोनों ने एक भाव से फत्तर मारे और आम खाने कूं दोनों को मिले परन्तु दोनों का भाव जुदा जुदा। तो अपणे स्वभाव मुजब कर लिया। गुण ग्राही था याने गुण लिया और औगुण ग्राही था याने औगुण लिया। याते भाई गुण ग्राही रहणो हितकारी है और जगत लौकिक तथा जस कूं चाहे है सो गुण ग्राही पुरुष का बड़ा लौकिक जस होता है और जगत का प्यारा होता है जिन कारण ते चित्त निराकुल रह कर चित्त निर्मल रहता है और जगत का मित्र होता है सो भाई गुण ग्राही पण ही श्रेष्ठ जीव के हितकारी हैं सो गुण ग्रहण करते रहें। या कारण मन है।

शङ्कराचार्य के विजय में श्लोक का वाक्य लिखा है कि—

मन एवमनुष्याणां, कारणं वन्ध मोक्षयोः।

ये जीव कूं काय तथा वचन योग कूं चलाय मान मुख्य कारण मन है। तातैं दूसरा कूं चलाय मान करैं तो तिनका निज पणे का चलाय मान का क्या देखणा। देवा नांम नसाणां सो देखो मनो योग की प्रबलता तैं इन्द्र तांडव नृत्य में अपूर्व अपूर्व चेष्टा चितवन मे न आवै तैसा चेष्टा करैं है और जैसो नारद मुनि कूं कलह प्रिय तथा पर विघन संतोषी। देखो द्रोपदी ने बे मालूम नारद का सनमान न किया इतने में क्रोधाय मान होके वन में जाय विचारता भया अब ये द्रोपदी का पराया द्वीप वाले से हरण कराके बहुत दुख देऊं उनका दुख देख देख नृत्य करिए हर्ष सूं नांचूंगा हम विना वाजे नृत्य करने वाले फेर बाजा बज्या अब हमारे नृत्य का क्या देखना पहिले ही हम विघन संतोषी यामें द्रोपदी ने हमारा अपमान किया। अब द्रोपदी का दुक्ख देख कर हम संतोष मानेंगें इसके हर्ष भाव का हमारा क्या देखणा जैसै ही मन विचारी। हम स्वेत स्वभाव चंचल हैं हमकूं रोकने वाला तो विचार है सो जिस चेतन नामा पुरुष के हाथ विचार नामा अंकुश नहीं होय तो ये मन मदोन्मत्त भया मन रूपी जोग जैसो चेतन पुरुष का समता रूपी जो अपूर्व बगीचा सो ये मदोन्मत्त मन क्या ये समता रूपी बगीचे का विध्वंस न करैगा अवश्य करैगा। जैसै कोई एक बद घोड़े पर सवार भया और विचार रूपी लगाम जो हाथ में न राखी तो अब यो बद घोड़ा कौन से देश तथां कौन से वन तथा कौन से भयानक खाड़े में पटकेगा सो निश्चय करि कहीं भीं पटकेगा यामें संशय नहीं तैसै ये चेतन पुरुष अनादि काल से दुश्मन रूपी बद अश्व पर सवार हुए और विचार रूपी लगाम हाथ न राखी भ्रम निद्रा में झुके जद अनंतवार नरक निगोद पशु गत रूपी खाड़े में या मन रूपी अश्व ने पटके। कहीं कोई काल में ये चेतन कुछ जागृत भया

और विचार रूपी लगाम हाथ में ली। जद वो मन रूपी दुष्ट अश्व कुछ सीधा चलने लगा जद कहीं कहीं देवगत मनुष्य गत में ले जाता भया यामें ये मन जो वद घोड़ा इसकूं वश्य करने वाले तो चाबुक सवार एक योगीश्वर हैं सोभी ये पराई वस्तु जो परद्रव्य येही भया जो बगीचा सो ये मन रूपी घोड़ा छूट जायगा तो इस बगीचे का नाश करैगा। पराया झगड़ा आवैगा तो कितनेक काल झगड़ना पड़ेगा फेर झगड़ने ते वैर भाव बंधैगा फेर इसकी संतति भवोभव चली जायगी। इनकी संगति से हमकूं दुक्ख भुगतना पड़ैगा ऐसी विचार करि इस डर तें मुनिराज जंगल में वनवास करि के इस मन रूपी घोड़े का भोग विषय खुराक बंद करि कैं वैराग्य स्तंभ कूं बांध कर संयम घास खिला कर मन की चंचलता मेंट के स्थरी भूत करते भये जद काय के तथा वचन के योग भी थिर होते भये जद उपाधिक भाव मिटै जद चेतन की निज स्वरूप की खबर पड़ती जाय तैसै निराकुल सुख की प्राप्ति होती जाय एक ही। जद यहां कोई कहै ये तो योगेश्वर मुनीराज करैं परन्तु ग्रहस्थाचारी क्या करै ताकूं कहै हैं ग्रहस्थाचार में ये जीव का मन अनेक प्रकार भली बुरी वस्तु पर भटकता ही फिरै। जद खोटी वस्तु पर जावे जद जीव कूं दुक्ख का कारण आगामी होय वर्तमान में यो मन खुशी माने। ये शरीर कूं भोग विषय भोगावे मन तो भोगे नहीं अब तो नपुंसक भोग सके नहीं। विकल्प करै संयोग मिलावै संयोग मिलै जद आप खुशी मानै जद जीव कूं आगामी दुक्ख का कारण यातें जाणी गई। ये मन भी नारद सार से पराया विघन में संतोष मान नारद मुनि सारसा विघन सतोषी है तथा जैसै नपुंसक पुरुष आपती भोग सके नहीं और दूसरे का भोग करा करि आप देखि देख खुशी मानै। तैसै ये मन नपुंसक भी कहिए याते या मन रूपी

अश्व कूं बुरी वस्तु पर न जाने देणा या मन रूपी घोड़े कूं पर स्त्री परधन ये भये तृण। याते ये तृण मत खानेद्यो विचार रूपी लगाम हाथ राखो। हाथ भयो हृदय सो हृदय रूपी हाथ में विचार रूपो लगाम राखो इत्ता पर ये महस्याचारी सवार क ''। इस कारण ते रोकते रोकते बुरी वस्तु पर जावै ये दुष्ट बड़ा चंचल है सो बुरी वस्तु पर जावै जैसे शूकर विष्टा ढूंढतो ही फिरै तैसे ही मन पर स्त्री पर धन ये ही सम्यक्त प्रकार वीतरागी पुरुष कूं भिष्टा समान भापा और याके अर्थ मन भटकवोई करै। जद विचार रूपी लगाम खेंच राखो और याकौ पाछो फेरो और याकूं ओलंभोद्यो ऐसे कै और दुष्ट मन घोड़े तेरे कूं संयम रूपी घांस खानो छोड़ कर पर स्त्री परधन भिष्टा पर जानो जो गयो अरे नीच भिष्टा पर तो शूकर जावै और शूकर को पालन ही चांडाल जाति करै ऊंच जाति शिखे नहीं ताते पशू जाति मैं तेरै कूं पशू की उपमा दीजो। पशू में अश्व समान कोई उत्तम पशु नहीं और तेरो पालन करने वालों में जो ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य ये उत्तम जाति सोया पर स्त्री या परधन भिष्टा पर कहां तूं विस्तरे है और तूं मेरे कूं कहां ले भटकै है या प्रकार बोलाणो देख कर खेंच के मकान पै लावो। विचार रूपी लगाम ढीलो मत राखो और वारंवार आपणी निंदा करो विचार रूपी लगाम हाथ राख कर लगे दोष की निंदा महां करने से पाप कर्म का तीव्रपणा नहीं होता स्वल्प बंध होता है सो भी वारंवार अपनी निंदा ग्रहण करै से कर्म निरस होते हैं। मुख्यपने या जीव के कल्याणकारी मन की शुद्धता है देखो येही पुरुष माता भगनि पुत्री से आलिंगन करै हैं और ये ही पुरुष आपनी स्त्री के शरीर से आलिंगन करै हैं जिसमें यथा योग भाव सोई मन की शुद्धता। याते अपने मन कूं वश करो अरे मन तूं अनादि काल से कनक और कामिनी को चाह रूपी अग्नि में जल रह्या सो

देखो इस जगत में लक्ष्मी वेश्या समान कहीं भी तुमने स्थिर देखी नहीं याने वेश्या समान जानके इनमें से ममत्व भाव तजो और कामिनी जो नारी सो जगत में नारो के वास्ते ब्रह्मा कूं पांच मुख करने पड़े हमेशा मुनी पद से पारवती के वास्ते चतुर्भये। राधा ने विष्णु कूं भुलाये अब कहां लोक है। बड़े बड़े पुरुष कूं नारी ते आंख्या की टमकार मात्र से भुला दिये भगवान कूं शिष्य ने प्रश्न किया जगत में कौन सी वस्तु गहन है जद भगवान कही स्त्री चरित्र गहन है सो स्त्री चरित्र लिखने वास्ते जगत में कागद ही पूरे न पड़े और श्याई करने से समुद्र में न मावै और लिखने वालो शारदा हजार करसूं न लिख सके तो हमारी क्या शक्ति है देखो भरतरी शतक में—

शंभु स्वयंभु हरयो हरिणे क्षणानां।
येना क्रियंत सततं ग्रह कर्म दासः॥
वाचाम गोचर चरित्र विचित्रताय।
तस्मै नमो भगवते कुसमा युधय॥

शिव ब्रह्मा विष्णु ये तीनु देव सृष्टी का करता उत्पत्ति स्थिति तथा लय का कर्त्ता ऐसे महान परन्तु याकूं ये काम मदन तैं नारी के घर सेवक दास कर रक्खे सो ये चरित्र वर्णन में न आवे ऐसी कही ही याते ऐसौ जो मदन तिनकूं दूर ही से नमस्कार करूं हूं के मेरे पै तुमारी दृष्टि मत पड़यौ और जैसै, जगत के जीव विषय भोग में लग करि धर्म कूं भूलै तैसै तुम हमकूं भूलौ या कारण तुमकू नमस्कार ब्रह्मा विष्णु महेश ये ईश्वर याकूं मदन ने वश किये याते मदन ईश्वर ऐसा जो मदन ताको विध्वंस करने वाले जो सर्वज्ञ वीतराग सो भए परम परम ईश्वर तुम कूं वारंवार नमस्कार होहु। काये कूं के तुमारे चरण रूपी पङ्कज हमारे हृदय में वसो सो तुमारे

भक्ति के प्रसाद तें मदन दूर भाग जावै तातै ऐसा जो मदन जिसका रहने का स्थान नारी सो उनका चरित्र तौ अपरंपार है परन्तु हे मन तेरे कूं स्त्री चरित्र की दो कथा कहता हूं सो सुन तोकूं संबोधने वास्ते कहूं हूं सो एकाग्र चित्त करि के सुन एक अचंभा नार नगरी तहां प्रहलादसिंह नाम रजपूत रहता था सो उनके गंगावती नाम नारी सुन्दरपण गुण में द्गुणी थी सो वह नगर में बलदेव नाम वणिक बसै सो ये मोदी खाना कौ व्यापार को धंधौ करै सो प्रहलादसिंह ठाकुर को तथा बलदेव सेठ वनिक पुत्र इनको आपस में भाई चारो भहुत थो नित रोज आपस में मिलें विना रहै वे नहीं सो मिल कर नगर बाहर सलाह करने वास्ते आपस में हाथ पकड़ के विनोद की वारता करते चले जांय परन्तु इनका घर इन बलदेव सेठ ने देखा नहीं एक दिन का बात है बल्देव सेठ उगाही करने वास्ते जाता था सो रस्ता में देखा जामें ठाकुर प्रहलाद-सिंह की नारी गंगावती खड़ी थी सो उनके नेत्र बल्देव पर जाय पड़े जद ये तो पुरुष की जाति भोदू तो भाई गंगावती देखती भई जद ये भी देखतो भयो सो दोनों के नेत्र मिल गए जद गंगावती के नेत्र के द्वारै मुख मुलका कैं बुलाने की सैन करी जद बल्देव उनके घर में गया उनकूं आदर करि विछौना बैठने कूं डाला और एक उनका लड़का पांच सात वरष का था उसकूं पैसो देकै पान लाने कूं भेजा जब तक आपस में भोग करि कैं गंगावती नारी ने बल्देव कूं बहुत स्नेह जनाया लड़का इधर से इतने में पान लेकर आया जद बल्देव कूं तांबूल देकर कह्या यार फेर आवोगे तब बल्देव बोल्या अब तो तुम से नवीन प्रीति हुई है अब मेरे कूं तुमारे विना चैन कहां कल जरूर आऊंगा ऐसी कह कर अपने घर गयौ इतने में प्रहलादसिंह राजमहल में से उसकी बदली पहरे पर

से हुई जब बल्देव के घर आकर कहता भया चलो मित्र हवा खावै तब बल्देव कही चलो तब ये घर तथा गंगावती नारी मित्र की है ऐसी तो जाणी नहीं ठाकुर से मित्रता ज्यादा सो बल्देव मन में विचारी आज को हकीकत मित्र कों कही चाहिये और जो मित्र से वारता छिपावै सो मित्र कायेका तातैं कहता भया हे मित्र ठाकुर साहिब तुम मेरे परम मित्र हो और आज कुछ नवीन वारता भई सो तुमको मित्र जाणि करि कहूं हू और पिता, बंधू के भी आगै कहने की नहीं परन्तु तेरे कूं मित्र जाण करि कहूं हू सो चित्त लगाय करि सुण। आज कई दिन में मध्यान्ह के समय में उगाही करने वास्ते जाता था सो गैल में न जानें किसकी नारी खड़ी थी उसके आंगे एक बड़ा ऊंचा नीम का दरखत है सो वो नारी मेरे सामने देखती भई जद में भी उसके सामने देखतो भयो सो दोनों के नेत्र आपस में मिल गए मेरे कूं घर में लेगई फेर जो हकीकत थी सो आद अंत कहता भया और प्रहलादसिंह जैसे सुनता भया तैसे निश्चय होती भई कि ये तो मेरा ही घर और मेरी ही नारी सो बलदेव मित्र के वचन इनको छाती पर वज्रपात से पड़ते भये परन्तु ये राजपूत सो याने आपना घर को तथा नारी को जानवो बलदेव सूं न कहता भया। बलदेव जात को वणिक भोलो सो ये परम मित्र भेद जानता न भया सो ठाकुर से सारी हकीकत कह चुका जद ठाकुर कही के फेर जावोगा तब बलदेव कही उस नारी ने बड़ा प्रेम सूं बुलाया है सो सवेरे फेर जाऊंगा। जद प्रहलादसिंह विचारी कि सवेरे याकूं पकड़ूंगा ऐसी विचारी दूजे दिन बलदेव गया जद नारी ने किवाड़ की सांकल लगाई थी सो कितनीक देर पीछे ठाकुर आया और लगी देख पुकारता भया। जद बलदेव घबराने लगा जद गंगावती कही फिकर मत करो मैं गुदड़ी ओढूं हूं सो मेरे लारै आओ किवाड़

खोलों जद किवाड़ के पीछे छिप जाओ वो घर में चला जाय जद तूं झट निकल जा कल फेर आना । सो वलदेव ने ऐसो ही करी घर कूं चला आया । ठाकुर घर में देखता भया वलदेव नजर नहीं आया सो ठाकुर विचारता भया आज नहीं आया । मेरी नारी तो ऐसी दिखे नहीं सो न जाने वलदेव ने झूंठ तो न कही होय आज को आने की कही थी सो दिखे नहीं चलो आज हवा खाने वास्ते जावें सो मिल जावेगा सो दोनों आपस में मिले जद ठाकुर ने पूंछी मित्र आज गये थे जद वलदेव कही हां गया था सो सारी आद अन्त हकीकत कही फेर सुनकर वड़ा चिन्तावान होता भया और कहता भया मित्र फेर जाओगे तब याने कही हां मित्र फिर जाऊंगा । जद दूसरे दिन वलदेव फेर गया जद दूसरे दिन भी विछाना की वलकटी में छिपा कर विछौना खड़ा रख दिया और ठाकुर किवाड़ के पीछे इधर उधर झांकता भया सो वलदेव नजर न आया । ठाकुर वाहर गया जद गंगावती ने वलदेव कूं विछौना में से निकाल करि कहती भई जाओ अब कल आना । तब वलदेव कही आऊं तो सही वखत के ऊपर तेरा भरतार आता है जद नारी बोली तूं भय मत करे अरे यार तेरे वाल कू धक्का न आणे दूंगी । जब याने कही ठीक है कारण तिलनी पुरुष कूं भय कहां । जद फेर हवा खाने कूं गये दोनों मित्र ठाकुर और वणिक मिले फिर ठाकुर ने पूंछी आज गये थे जद वलदेव कहता भया हां मेरे मित्र गया था सो हकीकत आदि अन्त कहता भया सो ये तो कहता जाय और ठाकुर कें शरीर में अग्नि की ज्वाला लगती जाय फेर कही मित्र सवेरे जाओगे जद वलदेव कही जाऊंगा । जद दूसरे दिन गंगावती के घर वलदेव आता भया तब किवाड़ लग्या देखी ठाकुर ने हांक पाड़ी जद वांस की वुणी हुई एक कोठी थी जिसमें थोड़ा वणो कपास भर्यो थो सो या कोठी में

बलदेव कूं बिठा कर ढकनो ढक दियो और कहती भई जो कदाचित् मेरौ पति ढकने कूं हाथ लगावे तो भीतर कपास है यामें छिप जाना ऐसी कहकर किवाड़ की सांकल खोली। प्रहलादसिंह किवाड़ के पिछाड़ी तथा बिछौना खुला खोचरा सब देखता भया। जद गंगावती बहुत रोस करके मूड़ौ बांको कर बैठी पति सामने नहीं देखै जद प्रहलादसिंह बोल्या हे प्रिया आज तूं मोपै खफा क्यों? रोजीना मैं घर आऊं जद मेरे सामने देख रहती हुई आज मूड़ो बांको कर बैठी सो कहा हो गया बोल तो सही तब गंगावती बोली तुम रोजीना घर में आवौ जद तुमारी चेष्टा हसत मुख देखती थी जद मैं भी हंसती थी आज तीन चार दिन हुआ तुमारी चेष्टा कलाली के घर मदिरा पिया कर घर में इधर उधर मदिरा के नशा में भूलत हौ कदी किवाड़ कदी बिछौणा खोणों देखकर मदिरा पिया की गेल सारखी तुमारी चेष्टा देखूं हूं सो बातो रोजीना मोसो मेरे कूं सहन न होय मदिरा के नशा में मेरे कूं कहीं कुछ कह बैठोगे तो मै एक पती हूं मेरे से सह्या न जायगा याते मैं विचारी मदिरावान पुरुष से बात भी न करनी भरतार हुआ तो क्या कारण। इस वास्ते मैं मेरी सोच में नीची देख रही हूं जद ठाकुर बोल्या हे प्रिया मेरे कूं तूने कभी भी मदिरा पिया देख्या हू था सो मेरे कूं गेल काहे की। जद गंगावती बोली मदिरा की गेल नहीं होगी तो मेरे कोई सौक नारी मिली होगी तो याको नशा होगी। जद प्रहलादसिंह बोला हे प्रिया ये बात भी नहीं है खोटे दोष क्यों लगावे। जद नारी बोली हे खैर या नहीं होगी तो कोई के मुख से घर बार की खोटी वार्ता सुनी होगी जिसकी गेल चढ़ी होगी हमरी हमसे कहा छिपेगी जद उस ठाकुर ने हंसकर गंगावती का हाथ पकड़ा जद गंगावती बोली कोरा मुख से कांई वणावना कहो हौ कुछ पेड़ा

मिठाई लाये हो। जद प्रहलादसिंह पड़ोस में हलवाई था उनसे पाव भर का चार पेड़ा ले आयो सो गंगावती ने दो पेड़े ठाकुर के हाथ में देकर हंसकर कहती भई कि स्वामी अपनो निशाणा मारने में वड़े चतुर हो हम तो नारी को जात परन्तु तुमारी हमारी आज निसाण मारने की परीक्षा करें सो एक पास की कोठी को छिद्र है सो एक एक पेड़ा से निशाण मारे भला तुम चूको हो कि हम चूके हैं सो तुमारो हमारी निशाण की परीक्षा भी होगी और अपने घर के रक्षक कुल देवता याके हाथ पेड़ा लगेंगे सो याकूं भोग भी लग जायगा। देवता को भोग दिये विना खाए नहीं सो सव वात वन जायगी। जद ठाकुर कही ऐसे ही सही दोनों ने पेड़े मारे सो कोठी के छिद्र द्वारे होकर भीतर जाय पड़े सो वलदेव तो दो पेड़े खावता भया और प्रहलादसिंह गंगावती के एक एक पेड़ा रह गया सो दोनों ने खाया और ठाकुर फेर घर में से वाहर गया जद गंगावती ने वलदेव कू कपास की कोठी में से निकाल कर उनकूं कह्या जाओ फेर ठाकुर वलदेव सूं मिला जद वलदेव ने सारी हकीकत कही जद ठाकुर कूं ज्वाला लग गई फेर ठाकुर पूंछी मित्र फिर भी जाओगे जद वलदेव बोल्या हां मित्र जाऊंगा। जद दूसरे दिन फेर गया जद ठाकुर विचारी कि घर कूं आग लगा दूं सो भीतर को भीतर जल मरेगो सो दूसरे दिन वक्त पर आकर आग लगाई सो ठाकुर ने फेर विचारी नारी कूं तो बचाय लूं जद पुकारता भया जद गंगावती ने वलदेव कूं आपना कपड़ा की सन्दूक में वैठाय करि ताला लगाय करि कूची आपने पास रखकर किवाड़ खोलती भई जद ठाकुर ने कही तूं वाहर आ जा मैं घर कूं आग लगाऊंगा जद ये आगी लगाकर आग लगाता भया जद गंगावती उच्च स्वर कर रोवती भई और कहती भई हे प्रिया घर खुशी से वालो मेरी मनाई नहीं परन्तु मेरे

पिहर की कपड़ा की सन्दूक उठाय लाओ जद दोनों ही गये सो गंगावती ने हाथ लगाकर पेटी प्रहलादसिंह के सिर पर धर कर बाहर निकाल लाये घर जलता भये । सन्दूक में बलदेव डरया सो डर के मारे पेशाब हो गई सो ठाकुर के आंग पर पेटी की सन्धि में से मूत्र आ पड़ा जद ठाकुर बोला हे प्रिया सन्दूक में से जल कहां से आया जद उच्च स्वर करि रोवने लगी कहती भई मेरे पिता की साथ में काशी यात्रा गई थी सो गंगाजल की शीशी लाई थी सो सन्दूक में धरी थी हाय हाय तुमने फोड़ डाली उसका जल निकल आया सो तुमनें बुरा काम किया सो ठाकुर गंगाजल समझ करि मूंढ़ में बिन्दु लगाता भया जद मूत्र तो खारा होता है जद ठाकुर का मुख खारा हो गया जद मूं जद मूंढ़ो बिगाड़ करि कहता भया ये गंगाजल का जल खारा क्यों ? जद गंगावती बोली मैं दवा वास्ते सन्दूक में सेंधा लोण की पुड़ी रक्खी थी सो गंगाजल की शीशी फूटी सो वे पुड़ी भींजकर जल में मिली दिखै हैं जिसते खारो लाग्यो होसी ऐसी कही घर भी जल गया । देखो स्त्री का चरित्र गंगावती कूं करम करके आप सांची बनी बलदेव मित्र कूं सांची कहता था उसकूं झूंठ बनाई पति सांचा उसकूं झूंठ बनाया सो तो दूर रह्यो परन्तु या नारी ने बलदेव जो यार था याका मूत्र पति कूं तीरथ बता के मुख में लिवाया । अहो चेतन महाराज, स्त्री चरित्र देखो तुमारे में और यामें क्या भेद तुम भया प्रहलादसिंह ठाकुर गंगावती सो कुमति भई और बलदेव जू पांचू मत सोई भये भये कुमति के यार उनके ज्ञान को जल भयो अंग मैल सो मूत्र समान । सो कुमति तुमसे अनन्त काल से तीरथ बता बता करि पाती है । फेर कहूं सो सुनो ।

एक नगर अयुध्या का राजा देवरथ रानी रक्ता नाम सो राजा रानी सो अति आशक्त राज काज सब मन्त्री को सौंप

करि आप राजा रानी के महल से बाहर निकसे नहीं भोगा में आशक्त सो मन्त्री कपट विचारी राजा कूं निकाल देना और राज आपना करना । जद मन्त्री कही हे स्वामी नारी का महल छोड़ो राज का काम करो और नारी नहीं छूटै तो राज छोड़ौ नगर से निकल जाओ दोनों में एक तुमारी खुशी आवे सो करौ तब राजा ने राज नगर छोड़नौ कबूल करयौ परन्तु नारी छोड़नी कबूल न करी इतना नारी पर प्रेम करता भया । नगर छोड़ राजा रानी वनवासो लियौ जातां जातां एक वन के विषें जमना नदी वह रही थी तहां झाड़ी सघन छाया लग रही तहां रमणीक जन देख करि राजा रानी उस वन में एक वृक्ष की छाया में ठहरते भये राजा वन के फल लाया, रानी ने रसोई करी राजा रानी रसोई जीमीं और कितनीक वेर में सूरज अस्त होता भया सो मानूं अस्त नहीं हुआ राणी का चरित्र देखना पड़ेगा सो मानूं देखने नहीं चाहै सो मानूं पश्चिम दिशा थे भई गुफा सो सूर्य यामें छिप गया । अथानन्तर रात्रि जो स्त्री चरित्र की सखी सो अपनी सखी जाण तमाशा देखने कूं आई सो रात्रि विषें थोड़ा नजीक एक झाड़ के नीचे झोपड़ी में एक पांगू रहता था शरीर महा रूप हीन सो ये गायन कला करता था सो रानी सुन के मोहित भई याके मन में या राजा कूं कब निद्रा लगे और मैं कब याके पास जाऊं सो दोनों रस्ते के थके हुये आये थे सो कितनीक वेर में राजा कूं निद्रा लग गई थी परन्तु राणी थकी थी तो भी जागती रही क्योंकि याकूं तो काम रूपी भुजंग गायन को स्वरूप धर कर रानी के कान में प्रवेश कर डस्यो सो याकी जहर की लहर में डोले याकूं निद्रा काये की आवे । राजा कूं निद्रावान देख करि उस पंगू के पास गई और कहती भई हे स्वामी मेरे जीव की रक्षा करो मेरे से भोग करो मैं तुमारा गायन सुनके आशक्त हुई हूं सो मोकूं

जीव दान दो। जद कुवड़ा याकूं कहता भया मेरे शरीर की या दशा और तूं तो बड़ी रूपवन्त राजा की राणी सारसी दिखे है सो तूं यहां से जल्दी जाती रहै तेरा पति आवेगा तो मेरा प्राण लेवेगा। जद रानी बोली हमारा पति तो भर निद्रा में है फिकर मत करो ऐसी कहकर या पंगू के अंग कूं स्पर्श करती भई जद कुवड़ा राणी को बहुत आशक्त जान के कहता भया तेरे मन में ऐसी होय तो तेरे पति कूं जीव से मार करि फेर मेरे पास आणा तेरे कूं अंगीकार करूंगा फेर रानी कही या तो सही है दो मेरे कूं वचन मैं पति कूं मार आऊंगी जद कुवड़े ने राणी कूं वचन दिया हाय हाय देखो नारी का चरित्र और देखो काम भुजंग की गहलता। राजा सो भरतार और राजा ने या रानी वास्ते राज काज छोड़ के वनोवास लियौ और या नारी महा कुरूपी दालिद्री और शरीर से पंगू या पर मोहित होके ऐसा जो राजा पति याकूं मारने का उद्यम विचारती भई। इतने में राजा जागृत भया नारी कूं पास देखो नहीं जद दो तीन हांके पाड़ी जद ये प्राप्त भई। राजा पूंछो हे प्राण वल्लभे रात्री के समय कहां गई थी। जद राणी बोली हे प्रभू जंगल का मामला तुम कूं निद्रा लगी देखी मैं पहरा देती थी सो लघु शङ्का को वैठ गई जद आपने जागृत होके मुझे हांक पाड़ी सो मैं बोली नहीं, लघु शङ्का करिके जद उठी जद वोली परन्तु राजा का चित्त तो रानी में और रानी का चित्त कुवड़े में सो रानी राजा कूं मारने का उपाय विचारती भई दिन ऊग आया जद रानी राजा से कपट करिके बोलती भई हे स्वामी मेरी एक प्रतिज्ञा है सो करो मेरी मानता है कि या वन में जमुना नदी है याकी पूजा खूब पुष्प माला से पति का शरीर शोभायमान करिकें आपन दोनों जनाऊं जोड़ी सूं या नदी की पूजा करेंगे सो मेरी मानता पूरी करो। तब राजा बोलो हे प्रिया तेरे जीव वास्ते राज काज

तजौ यामें कौण वड़ी वात है तेरी मनसा मूजव करूंगा। जद रानी बोली तुम जाओ सो वन के आछे आछे पुष्प लाओ सो मैं हार गूंथोंगी। जद राजा फूल लेने कूं वन में गया पीछे रानी वन में गई सो एक मृतक जानवर पड़ा था उसकी नशा जाल निकाल लाई जिसकी जेणी तात निकाल कर राखी इतने में राजा पुष्प लेके आया जद रानी बोली मै हार गूंथों हों तुम स्नान करि आओ सो ये न्हाने कूं गया। रानी ने तांत में हार गूंथो राजा के सब अंग में और गला में शोभा करि के हाथ में पचारती लेके मंगल गीत गाती बड़ा हर्ष सूं नदी तीर दोनों जना जाता भया जाय करि नदी की पूजा करी और रानी राजा के पीछे खड़ी रह कर जो हार फूल के वनाये थे तामें फांस की नाथा सो फांस खेंच के राजा कूं नदी में ढकेल दिया पानी वहुत था राजा नदी में वहने लगा नारी कुवड़ा के पास जाकर पति मारने की चतुराई कहके कुवड़े के संग रमती भई सो धिक्कार हो ऐसै नारी चरित्र कूं कोई वड़ा रूपवान देखती तो भी इस निर्लज्ज पापिणी कूं ऐसा करना योग्य न था याने कुवड़े सूं मोह करि निज पति कूं समुद्र डाला देखो नारी चरित्र अब कुवड़े से रमती भई याकी सेवा चाकरी करती भई वन में से वांस की लकड़ी लाकर एक टोकरी वुनकर उस पंगू को टोकरे में वैठा करि गामोगाम भिक्षा मांगती भई सो लोक याकूं पतिवरता जानि दान देते भये यह गामोगाम भ्रमण करती फिरै लोक जाने कि याका पंगू पति जान के सिर पर लिया फिरै है सो पतिवरता है ऐसी लोक प्रशंसा करै गामोगाम फिरै और याने राजा कूं नदी में पटक्या सो दैवयोग से इसके हाथ लकड़ी का ठूंड़ लग्या सो इसके आधार ते वहता चला आया सो एक नगर के तीर लग्या उस नगर का राजा मर गया था उसके पुत्र नहीं था सो मंत्री ने सलाह करि और हाथी को सूंड़ में पुष्प माला दी हाथी जिसके गले में

माला डारे उसकूं राज अभिषेक करनां ये निश्चय वातें करते ही नगर के तीर नदी में सूं निकल नगर में जाय दूर सों यों तमासा देखता था सो हाथी ने याका गला में माला डाली सूंड़ में उठाय लियो मस्तक पर वैठाय लियो जद इसकूं राज अभिषेक करने लगे जद ये वोला मैं नारी का मुख नहीं देखूं ये वात कबूल होय तो राज करूं जद मंत्री और सव खुशी भये ये तो वहुत उत्तम है जद इनकूं राजगादी पर वैठाया ये न्याय पूर्वक राज करके प्रजा पालता भया और वा नारी फिरती फिरती इस नगर में आई राजा के आंगे लोगो ने वड़ी प्रशंसा करी कि महाराज इस नगर में एक वड़ी पतिव्रता नारी आई है जद मंत्री ने कहया देखो तो सही पड़दो राखो। परन्तु ऐसी पतिव्रता बुलाओ सही पंगु गायन अच्छा करै है सो राजा ने आड़ा पड़दा लगा कर याकूं बुलाई सो सिर पर पंगू की टोकरी लेकर चली आई तव मंत्री ने याकी हकीकत पूंछी जद या आपनी पतिव्रता की कथा सभा के लोगों को कहती भई मेरे माता पिता ने या पंगू से परिणाई हैं। सो मैं विचारी मेरे नसीव में ऐसा ही भरतार लिख्या था सो माता पिता कूं ऐसी ही बुद्धि आई अव माता पिता कूं दोष काये कूं लगाऊं। सो मैं पतिव्रता ने एक पत्नी वाल पणा में गुरू पास व्रत लिया है कि जो माता पिता परिणावें सो पति और वाकी मेरे सव भ्रात पितासम सो ये मेरे स्वामी मैं याकी नारी सो मैं याकूं लिया फिरूं हूं और आपनो उदर पोषण करो हौं ऐसी कही जद राजा ने पड़दा के भीतर से याका शब्द सुन कर जानता भया ये तो मेरी रानी सारसा शब्द मालूम पड़े है सो अचरज में आय पड़दा कूं दूर किया देखो तो याकी रानी जव राजा बोल्या हे पतिव्रता तेरे सारखी पतिव्रता विधाता और कूं न बनावै मेरे कूं पहिचान मैं कौन हूं जद ये नारी अपना चरित्र

और आपना पति राजा कूं जानि कर नीचे देखती भई और जमीन खोदती भई ऊपर नजर न करती भई महा लज्जा वान भई जद मंत्री आदि सभा के लोक अचरज कूं प्राप्त भए मंत्री राजा से पूंछने लग्यो जद राजा मन में बड़ा वैराग्य धारता भया तोहू नारी चरित्र का अति हांस भई सो राजा हँस के कहता भया हे सभा के लोगो या पतिव्रता की कथा जगत लोक तुम कूं क्या मालूम। परन्तु मुझको मालूम है सो सब चित्त दे के सुनो यामें भी अपनी आदि अंत कथा तुम कूं अचरज करने सरीखी आजावेगी सो नारी और पंगु सुनते थे सभा में नारी का तथा अपना वरणन किया सो सुनके सभा के लोक हँस के कहते भये या नारी चरित्र कूं धिक्कार होइ और पतिव्रता के स्वाग कूं धिक्कार होहू ऐसी वारंवार धिक्कार देते भये राजा नारी चरित्र देख करि वैराग्य चितवन करता भया इस कारण सब सज्जन लोगों सें प्रार्थना है कि स्त्री के चरित्र ममत्व कूं तजो और नारी पर विश्वास कभी मत राखो जिस चेतन पुरुष कूं अपनी आत्मा का सुख या हित की वांछा होय तो कनक और कामिनी के से ममत्व तजो ये मन कूं उपदेश है। देखो ये जीव सुख की वांछा है परन्तु या जीव कूं लोभी गुरू मिलै सो लोभी गुरु कों निज हित परहित का विचार नहीं रहता सो न्याय है देखो भरतरी शतक में ये श्लोक कह्या है।

लोभेश्चेद् गुणे .... इसका अर्थ ये है कि जिस पुरुष कूं लोभ है उसकूं जगत का कोण औगुण सीखना वाकी रह्या वे सर्व औगुण का भरया है सो दृष्टांत देकर कहते हैं। एक पुंडरीक नामा नगर था तहां शंभू नाम राजा ताके परवत नाम पुराणिक। ताके गुणवंत नामा पुत्र सो परवत नामा पुराणिक याकूं राज से रुपैया रोज पैसा महिना का तीस रुपैया मिले और राजा कूं नित्य पुरान सुनावे। एक दिन परवत

पुराणिक याकूं कुछ काम वास्ते परगांव जाने का काम परया जद राजा से पंद्रे दिन की छुट्टी मांग करि गुनवान नाम पुत्र कूं कहया कि तुम राजा कूं पुराण सुनाने जाया करौ मैं आऊं जहां तक ऐसी कह कर परवत तो परगांव कूं गया और उसका पुत्र नित प्रति राजा कूं पुराण सुनावे एक दिन पुराण में कथा आई कि जो राई मात्र मांस खावे नरक विषैं वैतरणी नदी में पड़े ऐसी कथा सुनके राजा आश्चर्य कूं प्राप्त भये और मन में विचारता भया केई वरष हमकूं पुराण सुनते भया परन्तु ये वात पुराणिक ने हमकूं कभी नहीं सुनाई ऐसा विचार कर राजा गुणवत से कहता भया महाराज पुराण इसी जगे थल राखो और तुम कल से मत आवो तुमारा पिता आवेंगे जद पुराण सुनावेगें। ऐसी कह कर गुणवंत कूं विदा किया फेर कितनेक दिनों में परवत घर कूं आया जद पुत्र से पूंछो राजा कूं पुराण सुनाने जाता है जब पुत्र ने सब वृतांत कहे। जद पिता बोला मांस खाय के नरक में जायगा तो वे जायगा तुमने तो तुमारी आजीवका गमाई तुमने ये काम बहुत बुरा किया ये पिता के वचन सुन कर पुत्र कहता भया ऐसें माया चार कर के अभिप्राय का अर्थ और प्रकार करकें सुनावे तो पहिले हम नरक में जावें सो ऐसा लोभ नहीं चाहते और लोभी पिता के घर रह कर हमारी आत्मा को अकल्याण करणों ऐसी वात हम नहीं चाहते हम तो देशांतर जावेंगे जद परवत ने विचारी ये काम तो बुरा भया आजीवका गई और पुत्र भी गया याते अब ऐसी युगत करौ जिसमें राजा खुशी होकर आजीवका बनी रहे और पुत्र भी वन्या रहै ऐसी युगत विचार के राजसभा में गया राजा कूं आशीर्वाद करकें तिष्टा जद राजा कहो पुराण थल राख्या यहां से बांचो जद परवत पुराण लेकर बैठा जिसमें कथा निकली कि जो राई मात्र मांस खावे

सो वैतरणी नदी तथा नरक में पड़े जद चांत्र करि पुराणिक राजा कूं अर्थ सुनाता भया जो पुरुष सरी गिणतो तक माणो गिणती मांस खावे उनकी शक्ति वहुत होती है सो वैतरणी नदी कूं लातमार करि और शक्ति के जोर से कूद कर स्वर्ग में जाता हो ऐसै अर्थ करा जद राजा खुशी होतो भयो कारण ये तो मांस का लोभी और पुराणिक धन का लोभी जद दोनों को मन भावती भई जद राजा कहता भया अहो पुराणिक वुवा तुमने जैसा अर्थ हमकूं सुनाया तैसै तुमारे पुत्र ने हमकूं नहीं सुनाया जद पुराणिक कहता भया हे महाराज हमारा पुत्र तो पड़्या है पण हाल गुण्या नहीं। इतनो उनमें कसर रही जद यथावत अर्थ उनसे वण्या नहीं ऐसै कही जद राजा खुशी हो कें रुपैया रोज फिर शुरु कर दिया याते लोभ आगै निजहित परहित का विचार नहीं यदि लोभी गुरु कहो या कुगुरू कहो यामें भेद नहीं या जीव के कुगुरू समान शत्रु या जगत में नहीं और शत्रु तो या भव या परभव के दुख दाता है परन्तु ये कुगुरू आदिक भव भवांतर विषे दाता जाण कर लोभी गुरू को दूर ही से त्याजन करो सत संगनो कहो या सहेलो कहै या सुमति की संगत कहै याका संग होना जगत में दुर्लभ है।

सुर चक्री हर सम्पदा, सहज मिलै विध्र आय।
सत् संगत को पायवो, दुर्लभ जाणूं ताय ॥१

काल अनादि जीवनो, भुगते दुक्ख अपार।
चौरासी लख योनि में, भ्रमत फिरे संसार ॥२

कुग्रादिक कूं सेवते, निज हित नाहिं विचारि।
यातें निज हित कारणे, सत संगत मन धार ॥३

जामें आतम हित कह्यो, सोई मत हितकार।
पक्ष पात कूं त्याग के, देख करौ निरधार ॥४

दमड़ी छदाम की रकम कूं, परख परख कर लेत।
यातें धर्म की परख में, क्यों न करो अब चेत ॥५

मनुष्य जन्म बिन नहीं मिले, निज हित कारण सार।
सो कारण तुम सब मिल्यौ, अब मत चूक्यो धार ॥६

दुर्लभ ऐसौ सब मिलें, अब मत चूकौ दाव।
जग समुद्र में तिरण कूं, मनुष्य जन्म ये नाव ॥७

तातैं निज कल्याण की, जो रुचि होवै भ्रात।
तृष्णा क्रोध निवार के, धर समता विख्यात ॥८

भेद ज्ञान छैनि करि, कर निज पर को भेद।
काल लब्ध जो आ मिले, मिटे जगत का खेद ॥९

इसी भांति के योग की, सन्तति बढ़ अपार।
दुर्गत कैसे दुख टले, सुगत होय सुखकार ॥१०

अनुक्रम तें शिव पद लहौ, सुक्ख अनन्त अपार।
काल अनन्ते थिर रहो, यामें फेर न सार ॥११

निज हित परहित कारणे, कह्यौ कथन विस्तार।
भूल चूक जो होय तो, ताकूं लेव सुधार ॥१२

वचन पति अपने मन कूं वश करो तथा याके हितकारी
बात इनकूं सिखावो या मन सूं कहै या जगत में जो पुरुष

जहां गमन करे तहां तिनका हास्य होय ता पुरुष कूं निरन्तर दुक्ख की प्राप्ति रहै सुख न पावै तैसे ये तो नपुंसक तेरे जात विरोधी जो पुरुष तथा स्त्री लिंग सो तूं पुरुष लिंग तरफ जावै तो तूं नपुंसक सो तू हास्य कूं पावै तथा स्त्री तरफ जावे तो हू नपुंसक कूं दुक्ख हास्य ही करै याते ये दोनुं तरफ तेरी हास्य होवे तेरे कूं दुक्ख ही रहे याते अब तेरी हितकारी बात हम बतावें सो कर तेरी जात जो नपुंसक लिंगी जो ब्रह्म का व्याकरण में ब्रह्म होता है इनके पास जा सो तूं भी नपुंसक लिंगी और ब्रह्म भी नपुंसक लिंगी सो अपनी जात में मिल जा सो बहुत प्रशंसा तथा सुख कूं प्राप्त होगा या प्रकार मन रूपी अश्व ब्रह्म कूं मिलेगा जद चेतन सवार भी ब्रह्म सूं मिलेगा अनन्त सुख की प्राप्ति होगी सो मन कारण है चेतन कारज है सो कारण से कारज की सिद्धि कर लो यामें कुछ दुर्लभ नहीं सो अपना भाव सुधारणो यामें धन बल न कुटुम्यादि बल न राजा बल इनमें कुछ नहीं चाहिये फक्त द्रव्य काल क्षेत्र भाव की जोग बाई मिलाकर अपना निज आत्मा का हित करो और या जन्म मरण रूपी पारधी यासूं बचौ याते ऊपर कह्या हुआ श्लोक का भावार्थ से मन की शुद्धता करौ यहां कोई कहै तुमने ये अन्य मत के श्लोक कूं इतना बढ़ाकर अलंकार दिया अलंकृत काय कूं करै तुमारे जैन मत के ग्रन्थ के श्लोक धर कर आलंकृत क्यों न करौ ऐसी कहै वाकूं कहते हैं। हे भाई तुमने सांची कही हम निश्चय करिके जैनी हैं परन्तु जा वस्तु की चाह होय उसी जगह वो वस्तू देने से शोभा पावै याते अन्य मत के देव कहो या आप्त कहो इनके हैं ये आभूषण ते आलंकृत करे से शोभायमान होते हैं यातें हमारी कुछ तुच्छ बुद्धि माफक आलंकार कहे सो जैन मत के श्लोक धर करि अलकार नाहीं किया इस कारण जैनी आप्त का स्वरूप निराभरण तिल तुष

मात्र परिग्रह रहित उन्होंके आगम परमाण मानत हैं जद अलंकार का क्या कारण रह्या जिनका हेत निजन का स्वेत स्वभाव ही दिव्य रूप की महिमा जगत में हो रही है उनों का वा इनों के कहे आगम कूं आलंकार काये कूं होना जैसे इस जगत में शस्त्र धारण करै है सो काय वास्ते शत्रु होय तिनके भय वास्ते शस्त्र धारण करै है तीन लोक में जिनका शत्रु न रह्या तो कहो अब वे शस्त्र काय कूं धारण करें तैसे ही स्वेत स्वभाव दिव्य रूप की महिमा जगत में हो रही इनकूं आलंकार काय कूं होना सो न्याय है। देखो भरतरी शतक में कह्या—

लोभेश्चेद गुणेन कीं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकै।
सत्यं चैव तपसाच किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेनकिं॥

सौजन्यं यदिकिं गुणै सुमहिमा यद्धस्त किं मण्डनै।
सत्विद्या यदिकिं धनैर पय सो यद्यस्ति किं मृत्युना॥

जिस पुरुष कूं लोभ अति है उसकूं जगत में का कोई भी अवगुण सीखणा बाकी न रह्या स्वभाव ही करिके पिशुनता कहै चुगल दुष्टता याकूं जगत का कोई पाप करना बाकी न रह्या। सत्य वचन बोलने वाले कूं क्या तपस्या करणा है जिसके दिव्य पणे की महिमा जगत में हो रही उनकूं अलंकार काहे कूं होना जिसकूं सांची विद्या उसकूं क्या धन कमाना है जिस पुरुष कूं अपयश आया उसकूं मरण काये कूं होना जैन मत के ग्रन्थन में अलंकार कहने की समरथ नहीं। देखो उमा स्वामी ने सूत्र कहे याकी समन्त भद्र ने चौरासी हजार महा गन्ध हस्त भाष्य टीका करी जिसके आदि में समन्त भद्र आचार्य ने आप्त का स्तुति कारका करी याकू देवागमन स्तोत्र कहते हैं याकी अष्ट सती अकलङ्क देवन करी, उसकी विद्यानन्द स्वामी ने अष्ट

सहश्री वनाई सो या प्रकार कितनेक ग्रन्थ जिनका दर्शन करने से कल्याण होय महान विद्वान् ज्ञान का प्रवेश न होय सो हम अलंकृत कैसे करो अंधेरा में तो दीपक प्रवेश करि उद्योत करे सो अंधेरा में दीपक वतावने योग्य है परन्तु दिवाकर जो सूर्य थाकूं दीपक वतावने की कितनी मूर्खता है। यति सारांश अन्य मत के ग्रन्थ का सार गुण ग्रहण करके इस ग्रन्थ का नाम अन्य मत सार रक्खा। यहां कोई कहै इस वात का तुम कूं क्या कारण था उसकूं कहिये विना कमाई ये कोई के हाथ बहुत धन मिल गया जैसे क्रोड़पति दत्तक लेवे तो दत्तकूं तो सीधा धन मिल्या कहिये और फिर वो उसका उपभोग न लेवे तो उन सारखा मूरख अभागी कौन कहिये तैसे मेरे कूं मिल्या बहुत मन्थन का सार याते भया हर्ष सो प्रमोद भावों से सब जीवों कूं हर्ष होने की इच्छा इस भाव से ये ग्रन्थ प्रगट करने वास्ते छपाया। भारत में कहीं ऋषभदेव का नाम लेवे कूं उनकूं अड़सट तीरथ का पुण्य होय ऐसी एक नाम लेने की महिमा अन्य ग्रन्थ में कही तो हमारे तो इष्ट अब स्तुति वन्दना करे से कितना पुण्यवन्त होवै याकी महिमा सरस्वती कोट जिह्वा सूं न कर सके। परन्तु मै निज पर का कल्याण का वांच्छक सो ग्रन्थ के अन्त मंगल के कारण ऋषभदेव की स्तुति करूं हूं।

श्री जिन जगत परम गुरु, महिमा सुनी अपार।
तुम चरणन ढिंग आइयौ, अरज सुनौ करतार॥ १

अष्ट करम दुख दे विख्यात, याको कारण मूल मिथ्यात्।
कुआदिक सेवा बहु करें, भ्रमत फिरौ निज सुध नहिं पार॥ १

स्वांस एक में वार अठार, जामन मरण निगोद मझार।
पञ्च थांवर नारक पशु भयौ, दुख मंहि काल अनन्तौ गयौ॥२

नर सुर में भी सुख नहिं लहयौ, तृष्णा बस जो आगे कहयौ।
सो तो तुम सब जानत राय, मैं कहा रवि कूं दीप बताय ॥ ३

भाग उदय मेरौ कुछ भयौ, तुम चरणन को दर्शन लयौ।
मैं तो पाप कीनों चिरकाल, अर मैं चुखत छुड़ाये बाल ॥ ४

हिंसक जीव कीने प्रतिपाल, हिंसा करण में जैसै काल।
साधू जन को दीने दोष, पर विघन माने संतोष ॥५

सात विसन सेवत नहिं डरे, दुर्गत भ्रमण कारज करै।
कूड कपट में जैसै उतंग पर, स्त्री कमलन के भृंग ॥६

जगत में पाप करम ही जिते, सो तो मैं कीने ही तिते।
यामें मैं बहु सुगर चतुर, जो घट वीख तनौ भर पूर ॥७

कांलों कहूं अब कही न जाय, जंबूदीप को कागद थाय।
बन्सपति सब लेखन करैं, सागर सबी रष्णातें भरे ॥८

कर सहश्र सारदा तणां, न लिख सके मुझ औगुण घणां।
तीन जगत तुम जानन हार, मेरी करणी कछु न विचार ॥९

करोगे लेखा को कार, मेरो कबहूं न आवें पार।
विरद तुमारी देखो नाथ, येही लख दो निज पुर साथ ॥१०

जगत जीव तुम तारण हार, मैं कहां जीव नहिं त्रिपुरार।
प्रभु तुम अधम उधारण कहै, मैं का अधम तैं दूर रहै ॥११

पापी जीव तारे तुम राय, मैं कहा पाप दीने विसराय।
पशुवादिक कीने उद्धार, मैं का पशुन भयौ दातार ॥१२

अंजन निरंजन किये मेरी, वेर कहा धीरप लिये।
जगत जीव तुम सुख दुख लखे, मेरे देखन कहा नैना ढके ॥१३

भव्यन कूं करदे उद्धार, मेरी वेर पद्मासन धार।
जग जीव हित तुम धुन उच्चारि, मेरे बोधन कैसे मौनधारि ॥१४

कीने विहार भव्यन के काज, मेरी वेर क्यों थिर महाराज।
जगजीव अरज सुनत तुम जान, मेरी सुनन कहा मूंदे कान ॥१५

दयावंत तुम कूं कहे राज, मेरी कहा विसरे सिर ताज।
तुम जग मांत तुमी जग भ्रात, तुम विन कौन उद्धारे तात ॥१६

हृदय में चरण तुमारे धरैं, जोलो शिव रमणी नहिं भरे।
अब जो चरण छुड़ाये चहो, देऊ मुकत यू क्यों नहिं कहो ॥१७

प्रभु एक और सुनि करो काज, विना बुलायत आए राज।
कीर्ति तुमारी होय दास, तीन लोक में करन प्रकाश ॥१८

मुझकूं कही जावो निज पास, जो होय तुम निज धनकी आस।
ऐसी कही जद आए संत, अब कहा देर करो भगवंत ॥१९

विमुख होय पीछे किम जाय, जाऊ हास्य तुमारी थाय।
मरजी आवे निज सजा करौ, नहिं तो मुकत गढ क्यों नहिं धरौ ॥

प्रभु तुम वीतरागता लये, नमी वीन कूं संपत दये।
प्रभु तुम क्रोध तजो महाराज, नाश कैसे किये अरिराज ॥२१

मान शिखर तुमने तज दीनी, सिद्ध सिखरं कैसै तुम लीनी।
माया को कीनो परिहार, कैसे गुणन के भरे भंडार ॥२२

जद दीयौ लोभन को साथ, तीन जगत तुम कैसै नाथ।
धार सिला जग नारी तजी, मुक्तकंथा तुम कैसे भजी ॥२

चंचल लक्ष्मी कूं तज दीनी, केवल लक्ष्मी क्यों करि लीनि।
तुम लीला प्रभु अपरंपार, गण धर से नहिं पावै पार ॥२

तुमरी सेवा जे मन धरै, दे निज राज बराबर करैं।
ऐसै ही तुम दाता भले, तैसै ही सेवक आ मिलै ॥२

मैं कम क्यों जांचू महाराज, तुम हो तीन लोक के राज।
करम काट शिवपुर नहिं गहू, तौलौं चरण तुमारे रहूं ॥२

वेणीचंद की बीनती, कीनी निज पद काज।
ये वर मोकूं दीजिए, कर कृपा महाराज ॥२

॥ इति स्तवन सम्पूर्ण ॥

ये विनती बुधवान कूं, करी कहूं मनोहार।
मेरी कथा अब कहत हो, सो सुनजो मनधार ॥१

वेणीचंद मम नाम है, हुंबड़ मेरी जात।
पिता मलुक चंद जानिये, ठमावाई निज मात ॥२

जनम जवलागांव में, दक्खिन देश महान।
फलटण जहां वासो कियौ, अब सुनजो दे कान ॥३

तृष्णा घोड़ा कूं दिया, देशांतर की चाय।
पुन्य उदय जब आइयौ, इंद्रपुरी तब आय ॥४

स्वर्गपुरी सम जानिये, राजा पर्व में वहु गुणवान ।
हुलकर गादी पूर्व में, उदय भयो जो भानु ॥५

नाम तुकोजी जानिये, सव गुण के भंडार ।
प्रजापति पालन करैं, दुर्जन को संघार ॥६

न्याय नीति सो करत हैं, राजकाज मनलाय ।
पुन्य उदय ते जानिये, सत संवति सव पाय ॥७

वंधू काशीराव- जी, सो हैं वहु-गुणवान ।
प्रीति वंधु में वहुत हैं, कैसै करूं वखान ॥८

राज वंधु मम ऊपरे, कृपा करै मनलाय ।
दोनों ही पालन करैं, ज्यों वत्स पिलावे गाय ॥९

हान भई वेपार में, मेरे हस्ते जान ।
क्षमा करी वहु नीति सूं, पुत्र समान मन आन ॥१०

राज वंधु पुकार से, इन्द्रपुरी में जान ।
सत संगत परसाद तें, धर्म कर्म मन आन ॥११

धर्म योग मुझ वहु मिलो, ये जीव वहु उपकार ।
यातें मैं अव कहत हों, अंतरंग सुधार ॥१२

चंद्र सूर्य जोलो रहै, तौलौं रहौ दोऊ भाय ।
राज चिरंजीव सब रहौ, सुख अनंत ही पाय ॥१३

इस नगरी में जानिये, श्रावक जन गुनवान ।
सतक वसु घर वसत हैं, गोट चार में मान ॥१४

चुन्नीलाल गंगवाल हैं, नाथूराम के सुत।
भ्राता सम मुझ जानके, प्रीति करै अद्भूत ॥१५

पाटनी नाथूराम जी, सो बी मित्र मम जान।
चतुराई गुण आगलौ, सब ही करै बखान ॥१६

श्रावक जन सब करत हैं, धर्म काज मन लाय।
प्रीति करै मुझ ऊपरै, सज्जन सम मन भाय ॥१७

पर जाय धर्म से कहत हो, जैन उपासक जानिये।
गो वत्सा सम मान, ... ॥१८

द्रव्य धर्म से कहत हों, यामें जीव सिरदार।
जात जीव सब जानिये, धर्मी एक प्रकार ॥१९

सत्ता रूप सब एक है, संग्रह नय करि जान।
यामें भी मैं जीव हूं, तो भी भिन्न प्रमाण ॥२०

जात एक में कुल घना, कुल कुल भेद अपार।
जात पक्ष जिम जानिये, मम धर्मी गुण धार ॥२१

यातें षट् मत में भये, जैसा जो होनहार।
मम धर्मी अप जानके, कहूं प्रेम मन धार ॥२२

भिन्न भिन्न सब मत भये, जीव जात सब भिन्न।
जीव धर्म सब सम भये, यातें सुनों प्रवीण ॥२३

यातें मम धर्मी भये, जीव जात सब एक।
जान परस्पर कीजिये, दया छांड़ मत टेक ॥२४